ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग २]

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

आदरणीय श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमी

के

करकमलों

में

सादर

समर्पित

श्रद्धावनत
नेमिचन्द्र शास्त्री

दो शब्द

साहित्य ही मानवताका पोपक और उत्थापक है। जिस साहित्यमें यह गुण जितने अधिक परिमाणमें पाया जाता है, वह साहित्य उतना ही अधिक उपादेय होता है। जैन साहित्यमें आत्मशोधक तत्त्वोंकी प्रचुरता है, यह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही प्रकारके जीवनको उन्नत बनानेकी पूर्ण क्षमता रखता है। अतः जैन साहित्यको केवल साम्प्रदायिक कहना नितान्त भ्रम है। यदि किसी धर्मविशेपके अनु-यायियों-द्वारा रचे गये साहित्यको साम्प्रदायिक माना जाय तो फिर शाकुन्तल, उत्तररामचरित, रामचरितमानस और पद्मावत जैसी सार्वजनीन कृतियाँ भी साम्प्रदायिक सीमासे मुक्त नहीं की जा सकेंगी। अतः *विश्वजनीन साहित्यका मापदण्ड यही है कि जो साहित्य समान* रूपसे मानवको उद्बुद्ध कर सके, जिसमें मानवताको अनुप्राणित करनेकी पूर्ण क्षमता हो तथा जिसके द्वारा आनन्दानुभूति सम्भव हो सके। जैन साहित्यमें इन सार्वजनीन भावों और विचारोंकी कमी नहीं है। सत्य अखण्ड है, यह किसी धर्मविशेपके अनुयायियोंके द्वारा विभक्त नहीं किया जा सकता है। और यही कारण है कि हिन्दी साहित्यमें एक ही अखण्ड भावधारा प्रवाहित होती हुई दिखलायी पड़ती है। भेद केवल रूपमात्रका है। जिस प्रकार कूप, सरोवर, सरिता और समुद्रके जलमें जलरूपसे समानता है, अन्तर केवल आधार या उपाधिका है, उसी प्रकार साहि-त्यमें एक ही शाश्वत सत्य अनुस्यूत है, चाहे वह जैनों-द्वारा लिखा गया हो, चाहे बौद्धों-द्वारा अथवा वैदिकों-द्वारा। किसी धर्मविशेपके अनु-यायियों द्वारा रचित होनेसे साहित्यमें साम्प्रदायिकता नहीं आ सकती। साहित्यका प्राण सत्य सबके लिए एक है, वह अखण्ड है और शाश्वत।

सौन्दर्य भी सबके लिए समान ही होता है। एक सुन्दर वस्तुको देखकर सभी समान आह्लाद होता है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि सौन्दर्यानुभूतिके लिए सहृदय होनेकी आवश्यकता है। यद्यपि प्रकृतिभेदसे एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न प्रकारके गुण या दुर्गुण उत्पन्न करती है; फिर भी उसका सत्यरूप सबके लिए समान ही होता है। साहित्यमें भेद करनेके अर्थ हैं, मानवतामें भेद करना। अतएव हिन्दी जैन साहित्यका अध्ययन, अनुशीलन और विवेचन भी समग्र हिन्दी साहित्यके समान होना चाहिए। जब तक आलोचकोंकी दृष्टिसे यह वैषम्यका पर्दा ओझल नहीं होगा, तब तक साहित्यके क्षेत्रमे एक अखण्ड साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता।

प्रस्तुत हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलनमें मात्र साहित्यकी शृंखलाको जोड़नेका आयास किया है। यतः यह साहित्य अब तक आलोचकों द्वारा उपेक्षित रहा है। अब समय ऐसा प्रस्तुत है कि साहित्यके क्षेत्रमें किसी भी प्रकारका भेद करना मानवतामें भेद करना कहा जायगा। इस रचना-द्वारा मनीषियोंको हिन्दी जैन साहित्यके अध्ययनकी प्रेरणा मिलेगी तथा 'साहित्यकी शृंखलाकी टूटी कड़ियोंको जोड़नेमें पूरी सहायता मिलेगी। महाकवि बनारसीदास, भैया भगवतीदास, कवि भूधरदास, कवि दौलतराम, कवि वृन्दावनदास हिन्दी साहित्यके लिए गौरवकी वस्तु हैं। इन कवियोंने चिरन्तन सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना की है।

इस द्वितीय भागमें आधुनिक काव्य एवं प्राचीन और नूतन गद्य साहित्यपर परिशीलनात्मक प्रकाश डाला गया है। गद्यके क्षेत्रमें जैन साहित्यकार बहुत आगे बढ़े हुए हैं। श्री पं० दौलतरामजी ने खड़ी बोली के गद्यके विकासमें बड़ा सहयोग दिया है। इनका गद्य बहुत विकसित है। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दीमें जैन विद्वानोंने टीका और वचनिकाओं-द्वारा गद्यको व्यवस्थित रूप दिया है। हाँ, यह बात अवश्य है कि हिन्दी जैन साहित्यके निर्माणका क्षेत्र जयपुरके आस-पासकी भूमि होनेके कारण भाषापर ढूढ़ारीका प्रभाव है। आगरा और दिल्लीके निकट.

लिखे गये गद्यमें ब्रजभाषाके साथ खड़ी बोलीका रूप भी झाँकता हुआ दिखलायी पड़ता है। यदि निष्पक्ष रूपसे हिन्दी गद्य साहित्यका इतिहास लिखा जाय तो जैन लेखकोंकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। अभी तक लिखे गये इतिहासों और आलोचना-ग्रन्थोंमें जैन कवियों और वचनिका-कारोंकी अत्यन्त उपेक्षा की गयी है।

वर्तमान हिन्दी जैन काव्यधारामें अवगाहन करते समय मुझे सभी आधुनिक जैन कवियोंकी रचनाएँ नहीं मिल सकी हैं, अतः आधुनिक कृतियोंपर यथेष्ट रूपसे प्रकाश नहीं डाला गया होगा तथा इसकी भी संभावना है कि अनेक महानुभावोंकी रचनाएँ विचार करनेसे यों ही छूट गयी हों। भारतेन्दुकालीन कई ऐसे जैन कवि हैं, जिनकी रचनाएँ भाव और भाषाकी दृष्टिसे उपादेय हैं। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंमें ये रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। बहुत टटोलनेपर भी मुझे इस कालकी पर्याप्त सामग्री नहीं मिल सकी है।

प्राचीन गद्य साहित्यपर और अधिक विस्तारकी आवश्यकता है, पर साधनाभाव तथा इस विषयपर स्वतन्त्र एक रचना लिखनेका विचार होनेका कारण विस्तार नहीं दिया गया है। नवीन गद्य साहित्यमें निबन्धके क्षेत्रमें अनेक लेखक बन्धु हैं, जिन्होंने इस क्षेत्रका विस्तार करनेमें अपना अमूल्य योग दिया है। परन्तु ये निबन्ध इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, अतः उनका जिक्र करना छूट गया होगा। श्री महेन्द्र राजा, श्री प्रो० देवेन्द्रकुमार, प्रो० प्रेमसागर, श्री बाबूलाल जमादार, अध्यात्मरसिक ब्र० रत्नचन्द्रजी सहारनपुर, अनेक ग्रन्थोंके लेखक वर्णी श्री मनोहरलालजी, पं० सुमेरचन्द्र न्यायतीर्थ, श्री महेन्द्रकुमार साहित्यरत्न, पं० हीरालाल कौशल शास्त्री प्रभृति अनेक बन्धुओंके निबन्धोंका परिचय देना छूट गया है। ये नवयुवक हिन्दी जैन साहित्यकी उन्नतिमें सतत संलग्न हैं। इनमेंसे कई महानुभाव तो कहानीकार और कवि भी हैं।

यद्यपि मैंने अपनी तुच्छ शक्तिके अनुसार लेखकोंकी रचनाओंपर

निष्पक्ष भावसे ही विचार व्यक्त किये हैं, फिर भी संभव है कि मेरी अल्पज्ञताके कारण न्याय होनेमें कुछ कमी रह गयी हो।

उन सभी ग्रन्थकारोंके प्रति अपना आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी रचनाओंसे मैंने सहायता ली है। विशेषतः श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीका, जिनकी रचना 'हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास'से मुझे प्रेरणा मिली तथा परिशिष्टमें कवि और साहित्यकारोंका परिचय लिखनेके लिए सामग्री भी।

इस द्वितीय भागके कार्योंमें भी प्रथम भागके सभी सहायक-बन्धुओंसे सहायता मिली है, अतः मैं उन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

जैनसिद्धान्त भवन
श्री महावीर जयन्ती
१९५६

—नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

विषय-सूची

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग २]

आठवाँ अध्याय

वर्तमान काव्यधारा और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ

हिन्दी जैन साहित्यकी पीयूषधारा कल-कल निनाद करती हुई अपनी शीतलतासे जन-मनके संतापको आज भी दूर कर रही है। इस बीसवीं शताब्दीमें भी जैन साहित्यनिर्माता पुराने कथानकोंको लेकर ही आधुनिक शैली और आधुनिक भाषामें ही सृजन कर रहे हैं। भक्ति, त्याग, वीरनीति, शृंगार आदि विषयोंपर अनेक लेखकोंकी लेखनी अविराम रूपसे चल रही है। देश, काल और वातावरणका प्रभाव इस साहित्यपर भी पड़ा है। अतः पुरातन उपादानोंमें थोड़ा परिवर्तन कर नवीन काव्य-भवनोंका निर्माण किया जा रहा है।

महाकाव्योंमें वर्द्धमान इस युगका श्रेष्ठकाव्य है। इसके रचयिता यशस्वी कवि अनूप शर्मा एम. ए. हैं। इस महाकाव्यकी शैली संस्कृत काव्योंके अनुरूप है। संस्कृतनिष्ठ हिन्दीमें वंशस्थ, द्रुतविलम्बित और मालिनी वृत्तोंमें यह रचा गया है। इसमें नख-शिखवर्णन, प्रभात, संध्या, प्रदोष, रजनी, ऋतु, सूर्य, चन्द्र आदिका वर्णन प्राचीन काव्योंके अनुसार है।

वर्द्धमान

इस महाकाव्यका कथानक भगवान् महावीरका परम-पावन जीवन है। कविने स्वेच्छानुसार प्राचीन कथावस्तुमें हेरफेर भी किया है। दो-चार स्थलोंकी कथावस्तुमें जैनधर्मकी अनभिज्ञताके कारण वैदिक-धर्मको ला बैठाया है। भगवान्की बालक्रीड़ाके समय परीक्षार्थ आये हुए देवरूपी सर्पका दमन ठीक कृष्णके कालिय-दमन के समान कराया है। सर्पकी भयंकरता तथा उसके कारण प्रकृति-विक्षुब्धता भी लगभग वैसी ही है। कवि कहता है।

कथावस्तु

प्रचण्ड दावानलकी शिखा यथा,
प्रलम्ब है धूम नगाधिराज-सा।
अवश्य कोई वन-बीच दुःसहा,
महान् आपत्ति उपस्थिता हुई॥
—पृ० २६१

इसी प्रकार भगवान् महावीरकी केवलज्ञानोत्पत्तिके पश्चात् उनकी आत्माका कुबेर-द्वारा स्वर्गमें ले जाना; और वहाँसे आदि शक्तिको लेकर पुनः आत्माका लौट आना, और शरीरमें प्रवेश करना बिल्कुल विलक्षण कल्पना है। इसका जैन कथावस्तुसे बिल्कुल मेल नहीं बैठता है। क्योंकि जैनधर्म तो प्रत्येक आत्माको स्वतः अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यका भाण्डार मानता है। जबतक आत्मापर कर्मोंका पर्दा पड़ा रहता है तबतक उसकी ये शक्तियाँ आच्छन्न रहती हैं। कर्म-कालिमाके हटते ही आत्मा शुद्ध निकल आती है। उसकी सारी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और वह स्वयं भगवान् बन जाती है। कोई आत्मा तभीतक भिखारी है जबतक वह कषाय और वासनाके कारण स्वभावसे पराङ्मुख है। केवल-ज्ञान होनेपर आत्मा पूर्ण ज्ञानी हो जाती है। उसे कहींसे भी शक्ति लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

विवाहके प्रसंगको लेकर कविने श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओं-का सुन्दर समन्वय किया है। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार भगवान् महा-वीरने विवाह किया है और दिगम्बर मान्यता उन्हें अविवाहित रहना स्वीकार करती है। कविने बड़ी चतुराईके साथ स्वप्नमें भगवान्का विवाह कराकर उभय मान्यताओंमें सामञ्जस्य किया है।

भगवान् महावीरने दीक्षा ग्रहण कर दिगम्बर रूपमें विचरण किया यह दिगम्बर मान्यता है और श्वेताम्बर मान्यतामें जिनदीक्षा लेनेके उपरान्त भगवान्का देव दूष्य धारण करना माना जाता है। कविने इन मान्य-ताओंका भी सुन्दर सामंजस्य करनेका प्रयत्न किया है। कवि कहता है—

अहो अलंकार विहाय रत्न के,
अनूप रत्नत्रय भूपितांग हो।
तने हुए अम्बर अंग-अंग से,
दिगम्बराकार विकार शून्य हो॥
समीप ही जो परदेव दूष्य है,
नितान्त श्वेताम्बर सा बना रहा।
अग्रंथ निर्द्वन्द महान संयमी,
बने हुए हो निजधर्म के ध्वजी॥

वस्तु-वर्णनमें महाकाव्यकी दृष्टिसे घटना-विधान, दृश्ययोजना और परिस्थिति-निर्माण—ये तीन तत्त्व आते हैं। वर्द्धमानकी कथावस्तुमें प्रायः दृश्य-योजना तत्त्वका अभाव है। घटनाविधान और परिस्थिति-निर्माण इन दोनों तत्त्वोंकी बहुलता है। कविने इस प्रकारका कोई दृश्य आयोजित नहीं किया है जो मानवकी रागात्मिका हृत्तन्त्रीको सहज रूपमें झंकृत कर सके। घटनाओंका क्रम मन्थर गतिसे बढ़ता हुआ आगे चलता है जिससे पाठकके सामने घटनाका चित्र एक निश्चित क्रमके अनुसार ही प्रस्तुत होता है।

महाकाव्यकी आधिकारिक कथावस्तुके साथ प्रासंगिक कथावस्तुका रहना भी महाकाव्यकी सफलताके लिए आवश्यक अंग है। प्रासंगिक कथाएँ मूलकथामें तीव्रता उत्पन्न करती हैं।

वर्द्धमान काव्यमें अवान्तर कथा रूपमें चन्दनाचरित, कामदेवसुरेन्द्र-संवाद तथा कामदेव-द्वारा वर्द्धमानकी परीक्षा ऐसी मर्मस्पर्शी अवान्तर कथाएँ हैं, जिनसे जीवनके आनन्द और सौन्दर्यका आभास ही नहीं होता प्रत्युत सौन्दर्यका साक्षात्कार होने लगता है।

जगत् और जीवनके अनेक रूपों और व्यापारोंपर विमुग्ध होकर कविने अपनी विभूतिको चमत्कारपूर्ण ढंगसे आविर्भूत किया है। भावोंको

प्रभावोत्पादक बनाने और उनकी प्रेषणीयताकी वृद्धिके लिए समास, सन्धि और विशेषण पदोंका प्रयोग बहुलतासे किया है। रसविवर्द्धन, रस-परिपाक और रसास्वादन करानेकी क्षमता इस काव्य-की शैलीगत विशेषता है। यद्यपि कविने संस्कृतके समा-सान्त पदोंका प्रयोग खुलकर किया है, परन्तु उच्चारण संगति और ध्वनि अक्षुण्णरूपमें विद्यमान है। संस्कृतगर्भित पदोंके रहनेपर भी कृत्रिमता नहीं आने पायी है। यद्यपि आद्योपान्त काव्यमें संस्कृतके क्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग किया गया है तो भी पदलालित्य रहनेसे काव्यका माधुर्य विद्यमान है।

शैली और काव्य-चमत्कार

क्रियापदोंमें भी अधिकांश क्रियाएँ संस्कृतकी ज्योंकी त्यों रख दी गई हैं। जिससे जहाँ-तहाँ विरूपता-सी प्रतीत होती है।

शैलीके उपादानोंमें विभक्तियोंका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभक्तियों-का यथास्थान प्रयोग होनेसे चमत्कार उत्पन्न होता है। संस्कृतनिष्ठ शैली-मेंसे जानेके कारण—"सदर्प कादम्बिनि गर्जने लगी" जैसे विभक्तिहीन पद इस काव्यमें अनेक आये हैं, जिससे कठोरता और क्लिष्टता है।

इस महाकाव्यमें कविने अपनी कवयित्री प्रतिभा द्वारा त्रिशलाके शारीरिक सौन्दर्य, हाव-भाव और वेश-भूषा आदिके चित्रणमें रमणीयताकी सृष्टि की है। पाठक सौन्दर्यकी भावनामें मग्न हो अपनी सत्ताको भूल रसमग्न हो जाता है पर त्रिशलाका यह शृंगारिक वर्णन मनोविज्ञानकी दृष्टिसे अनुचित है। क्योंकि भगवान् महावीरके पूर्व नन्द्यवर्धनका जन्म हो चुका था अतः द्वितीय संतानके अवसरपर महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलाकी रंगरेलियाँ पाठकके हृदयपर प्रभाव नहीं छोड़तीं। इन पदोंमें कल्पनाकी उड़ान और भावसंचारकी तीव्रता हमारे सम्मुख एक भव्यचित्र प्रस्तुत करती है। निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय है—

विरंचिने अद्भुत युक्तिसे उसे,
सुधामयी शक्ति प्रदान की मुधा।

विलोचनोंमें विष दग्ध बाण की,
कटाक्ष में मृत्युमयी कृपाण की ॥
सरोज द्रोही रस शून्य देह है,
सुगन्धसे हीन शशांक ख्यात है।
न साम्य पाती त्रिशलामुखेन्दु का,
मलीमसा प्राकृत चन्द्रकी कला ॥

इस काव्यमें रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, व्याजोक्ति, श्लेष, अनुप्रास, भ्रांतिमान आदि अलंकारोंकी अद्‌भुत छटा प्रदर्शित की है।

निम्न पद्य दर्शनीय है—

सरोज सा वक्त्र सुनेत्र मीन से,
सीवार-से केस सुकंठ कम्बु-सा।
उरोज ज्यों कोक सुनाभि भौंर-सी,
तरंगिता थी त्रिशला-तरंगिणी ॥

—स० १ प० ८१

वर्तमान काव्य सिद्धार्थसे अत्यधिक अनुप्राणित है। महाराज सिद्धार्थ तथा शुद्धोदनकी रूप गुणोंकी साम्यता बहुत अंशोंमें एक है। सिद्धार्थमें

अन्य काव्यों का प्रतिबिम्ब

यशोधराके रूप, सौन्दर्य, उरोज, मुख आदिका जैसा वर्णन किया है वैसा ही वर्द्धमानमें त्रिशलाके मुख, नेत्र, उरोज आदिका भी। गौतम बुद्धकी कामघोषणाकी प्रतिच्छाया महाराज सिद्धार्थकी कामघोषणा है। उदाहरणार्थ देखिये—

सुकामिनी जो अब मानिनी रही,
मनोजकी है अपराधिनी वही।
चतुर्दिशा दामिनि व्याज व्योममें,
समा गयी काम-नृपाल-घोषणा ॥

—वर्द्ध० स० २ प० १७

न मानिनी जो अब मान त्यागती,
मनोज की है अपराधिनी वही।
पयोदमाला मिस विज्जुके यही,
प्रसारती काम-नृपाल-घोषणा ॥

—सि० पृ० १०८

संस्कृत काव्योंमें भट्टि, कुमारसम्भव और रघुवंशसे अनेक स्थलोंमें भावसाम्य है। वर्द्धमानका १० वाँ सर्ग उमरखय्यामसे अनेक अंशोंमें साम्य रखता है।

यह महाकाव्य भाव, भाषा, काव्य-चमत्कार आदि सभी दृष्टियोंसे प्रायः सफल है।

खण्डकाव्य

वर्तमान युगमें जैन कवियोंने खण्डकाव्यों-द्वारा जगत् और जीवनके विभिन्न आदर्श और यथार्थका समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। "खण्ड-काव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च" अर्थात् खण्डकाव्यमें जीवनके किसी पहलूकी झाँकी रहती है। अतः जैनकवियोंने पुरातन मर्मस्पर्शी कथानकोंका चयन कर रचना-कौशल, प्रबन्धपटुता और सहृदयता आदि गुणोंका समवाय किया है। जिससे ये काव्य पाठकोंकी सुषुप्त भावनाओंको सजग करनेका कार्य सहजमें सम्पन्न करते हैं। जीवनके किसी पक्षको अधिक महत्त्व देना और पाठककी उसके प्रति प्रेरणा उत्पन्न करना, जिससे पाठक उस भावसे अभिभूत होकर कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए प्रवृत्त हो जाय।

राजुल, विराग, वीरताकी कसौटी, बाहुबली, प्रतिफलन एवं अंजना-पवनंजय काव्य इस युगके प्रमुख खण्डकाव्य हैं। काव्यसिद्धान्तोंके आधारपर इन खण्डकाव्योंमेंसे कुछका विवेचन किया जायगा।

इस खण्डकाव्यका रचयिता नवयुवक कवि बालचन्द्र जैन एम० ए० है। कविने पुरातन आख्यानको लेकर जैन संस्कृतिको मानवमात्रके लिए जीवनादर्श बनानेका आयास किया है। भगवान् नेमिनाथकी आदर्श पत्नी—विवाह नहीं हुआ, पर नेमिनाथके साथ होनेवाला था; अतः संकल्पमात्रसे ही जिसने नेमिकुमार को आत्मसमर्पण कर दिया था साथ ही संसारसे विरक्त होकर जिसने आत्म साधना की उस राजुलदेवीके जीवनकी एक झाँकी इस काव्यमें दिखलायी गई है। यह काव्य दर्शन, स्मरण, विराग, विरह और उत्सर्ग इन पाँच सर्गोंमें विभक्त है।

राजुल[1]

काव्यके प्रथम सर्ग 'दर्शन'का प्रणयन कल्पनासे हुआ है, जिसने कथाके मर्मस्थलको तीव्रताप्रदान की है। कविने जूनागढ़के राजा उग्रसेन की कन्या राजुल और यादव-कुल-तिलक द्वारिकाधिपति समुद्रविजयके पुत्र नेमिकुमारका साक्षात्कार द्वारिका की वाटिकामें मदोन्मत्त जगमर्दन हाथीसे नेमि-द्वारा वसन्त विहारके लिए आयी हुई राजुलकी रक्षा करानेपर किया है। सक्षात्कारकी यह प्रथम घटिका ही प्रणय-कलिकाके रूपमें परिणत हो गई है और दोनोंकी आँखें परस्पर एक दूसरेको ढूँढ़ रही थीं। राजुलको वसन्त-विहारकर जूनागढ़ लौट आनेपर प्रेमकी अन्तर्वेदना स्मृतिके रूपमें फलीभूत होकर पीड़ा दे रही थी। इधर द्वारिकामें नेमिकुमारके कोमल हृदयमें राजुलकी मधुर स्मृति टीस उत्पन्न कर रही थी। दोनों ओर पूर्वराग इतना तीव्र हो उठा जिससे वे मिलनेके लिए अधीर थे। आगे चलकर यही पूर्वराग अरुण भास्कर हो विवाहके रूपमें उदित होना चाहता था; किन्तु नियतिका विधान इससे विपरीत था। द्वारिकासे बारात सजधजकर चली, मार्गमें राजुल-मिलनकी कल्पना नेमिकुमारको आत्मविभोर कर रही है। अचानक एक घटना घटित होती है, उन्हें मूक पशुओंका चीत्कार सुनायी पड़ता है

कथावस्तु

1. सन् १९४८, प्रकाशकः—साहित्य साधना समिति, काशी।

जिससे उनका ध्यान राजुलसे हटकर उस ओर आकृष्ट हो जाता है। मालीसे नेमिकुमार पशुओंकी करुणगाथा जानकर द्रवित हो जाते हैं। वासनाका भूत भाग जाता है और वे पशुशालामें जाकर विवाहमें अभ्यागतोंके भक्षणार्थ आये हुए पशुओंको बन्धन मुक्तकर स्वयं बन्धन-मुक्त होनेके लिए आत्मसाधनाके निमित्त गिरनार पर्वतकी ओर प्रस्थान कर देते हैं।

इधर नेमिकुमारके विरक्त होकर चले जानेसे राजुलकी वेदना बढ़ जाती है। वह सुकुमार कलिका इस भयंकर थपेड़ेको सहन करनेमें असमर्थ हो मूर्छित हो जाती है। नाना तरहसे उपचार करनेपर कुछ समय पश्चात् उसे होश आता है। माता-पिता आँखकी पुतलीकी चेतना लौटी हुई देखकर प्रसन्न हो समझाते हैं कि बेटी, अन्य देशके सुन्दर, स्वस्थ और सम्पन्न राजकुमारसे तुम्हारा विवाह कर देंगे; नेमिकुमार तपाराधनाके लिए जंगलमें गये तो जाने दो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, तुम अपना प्रणय-बन्धन अन्यत्र कर जीवन सार्थक करो। राजुलने रोकर उत्तर दिया—

"सम्भव अब यह तात कहाँ" राजुल रो बोली;
बने नेमि जब मेरे औ' मैं उनकी हो ली।
भूलूँ कैसे उन्हें, प्राण अपने भी भूलूँ,
खोजूँगी मैं उन्हें वनो गिरिमें भी डोलूँ॥
किया समर्पित हृदय आज तन भी मैं सौंपूँ;
जीवनका सर्वस्व और धन उनको सौंपूँ॥
रहे कहीं भी किन्तु सदा वे मेरे स्वामी;
मैं उनका अनुकरण करूँ बन पथ-अनुगामी॥

इस प्रकार राजुल भारतीय शीलके पुरातन आदर्शको अपनानेके निमित्त गिरनार पर्वतपर नेमिकुमारके पास जा आर्यिकाके व्रत ग्रहणकर तपश्चर्यामें लीन हो आत्म-साधना करती है।

समीक्षा

राजुलकाव्यकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ वाटिकामें नेमिकुमार और राजुलका साक्षात्कार तथा जगमर्दन हाथीसे नेमिकुमार-द्वारा राजुलकी रक्षा एवं राजुलका विरह और उसका उत्सर्ग कविने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर बड़े कौशलके साथ राजुलके आराध्यको विलगकर प्रेमकी भावनाको घनीभूत किया है। एक बार प्रेमिका और प्रेमी पुनः स्थायी प्रेमके बन्धनमें बँधनेके निकट पहुँचते हैं और यही प्रत्याशा राजुलको एक क्षणके लिए प्रकाश प्रदान करती है। परिस्थितिकी विषमताके कारण उसका आराध्य उसे छोड़ चल देता है, तो वह उत्पन्न हुए तीव्र भावोंका अप्राकृतिक संकोच एवं दमन न कर मुग्धा बन जाती है और "हाय" कहकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है।

विरहिणी राजुलकी इस अवस्थाको देखकर माता-पिता एवं दासियाँ कातर हो जाती हैं और युक्तियों-द्वारा निष्ठुर प्रेमीसे विमुख करनेका प्रयत्न करती हैं ; पर राजुलको अपने पवित्र दृढ़ संकल्पसे हटानेमें सर्वथा असमर्थ रहती हैं। कविने सखियोंको राजुलके मुखसे क्या ही सुन्दर उत्तर दिलाया है—

"वे मेरे फिर मिलें मुझे, खोजूँगी कण-कण में"

वियोगिनी राजुल अर्ध-विस्मृत अवस्थामें प्रलाप करती है। राजुलकी मनोदशा उत्तरोत्तर जटिल होती जाती है, वह आदर्श और कामनाके झूलेमें झूलती हुई दिखलाई पड़ती है—कभी-कभी वह आत्म-विस्मृत हो जाती है—इस समय उसके हृदयमें आदर्शजन्य गौरव और प्रेमजन्य उत्कंठाका द्वन्द ही शेष रहता है तथा ग्लानि और असमर्थताके कारण वह कह उठती है—

अब न रही हैं सुखद वृत्तियाँ, शेष बची हैं मधुर स्मृतियाँ।
उन्हें छिपा हृत्तलमें अपना जीवन जीना होगा॥

आगे चलकर राजुलका विरह वेदनाके रूपमें परिणत हो जाता है ; जिससे उसमें आदर्श गौरवको छोड़ स्वार्थकी गन्ध भी नहीं रहती। वह अपनेमें साहस बटोरकर स्वार्थ और कमजोरीपर विजय प्राप्त करती हुई कहती है—

तुमने कब तुझको पहिचाना।
देखा मुझको बाहिरसे ही मेरे अन्तरको कब जाना।
× × ×
नारी ऐसी क्या हीन हुई!
तन की कोमलता ही लेकर नरके सम्मुख क्या दीन हुई।

आगे चलकर राजुलका वह कार्य आत्मसाधनाके रूपमें परिवर्तित हो गया है। जीवनकी विभूति त्याग काव्यकी नायिका राजुल और नायक नेमिकुमारके चरितमें सम्यक् रूपेण विद्यमान है। जैन संस्कृतिके मूल आदर्श दुःखोंपर विजय प्राप्तकर आत्माकी छुपी हुई शक्तियोंको विकसित कर वरमाला बन जाना का इसमें निर्वाह किया गया है। भौतिक वातावरणको त्याग और आध्यात्मिकताके रूपमें परिवर्तित तथा वासनामय जीवनको विवेक और चरित्रके रूपमें परिवर्तित दिखलाया गया है।

भाव और भाषाकी दृष्टिसे यह काव्य साधारण प्रतीत होता है। लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ताका भाषामें पूर्णतया अभाव है। हाँ, भावोंकी खोज अवश्य गहरी है। एकाध स्थानपर अनुप्रासकी छटा रहनेसे भाषामें माधुर्य आ गया है—

कल-कल छल-छल सरिताके स्वर ; संकेत शब्द थे बोल रहे।
× × ×
आँखोंमें पहले तो छाये, धीरेसे उरमें लीन हुए।

प्रथम रचना होनेके कारण सभी सम्भाव्य त्रुटियाँ इसमें विद्यमान हैं। फिर भी इसमें उदात्त भावनाओंकी कमी नहीं है। भाव, भाषा आदि दृष्टियोंसे यह अच्छी रचना है।

विराग

यह एक भावात्मक [1]खंडकाव्य है। पुरातन महापुरुषोंका जीवन प्रतीक वर्त्तमान जीवनको अपने आलोकसे आलोकित कर सत्पथका अनुगामी बनाता है। कवि धन्यकुमार जैन "सुधेश" ने इसी सन्देशकी अभिव्यंजना की है।

विराग जीवनकी आदर्श गाथाकी चार पंक्तियोंपर अपनी प्रतिभा और सात्त्विक कल्पनाका रङ्ग चढ़ाकर ऐसा महत्त्व प्रदान करता है जो समस्त जीवनके चरित्रपर अपनी अमर आभा विकीर्ण करनेमें समर्थ है। इस काव्यमें भगवान् महावीरकी वे अटल विराग भावनाएँ प्रकट की गई हैं, जिनमें विश्वकी करुणा, सहानुभूति, प्रेम और निस्वार्थ त्यागका अमर सन्देश गूँजता है। वस्तुतः इस काव्यमें काव्यानन्दके साथ आत्मानन्दका भी मिश्रण हुआ है। लोकानुरागकी भावनाको क्रियात्मक मूर्तिमान रूप दिया गया है। धीरोदत्त नायकका सफल चित्रण इस काव्यमें हुआ है।

कथावस्तु संक्षिप्त है, यह पाँच सर्गोंमें विभक्त है। प्रातःकाल रवि-किरणें कुंडलपुरके प्रासाद-शिखरोंपर अठखेलियाँ करती हुई कुमार

कथानक

महावीरके शयनकक्षपर पहुँची। रश्मियोंका मधुर स्पर्श होते ही कुमारकी निद्रा भंग हुई। उनके हृदयमें संसारके प्रति विराग और प्रिय माता-पिताकी इच्छाओंके प्रति अनुरागका द्वन्द्व होने लगा। यह मानसिक संघर्ष चल ही रहा था कि कुमारके पिता आ पहुँचे। पिताका उद्देश्य कुमार महावीरको विवाहित जीवन व्यतीत करनेके लिए राजी कर लेना था। अतः उन्होंने पहले कुमारका मादक यौवन, फिर कोमलांगी राजकुमारियोंका आकर्षण, राज्यलक्ष्मी और अपनी तथा कुमारकी माताकी लौकिक सुखकी कामनाएँ उनके समक्ष प्रकट कीं। अटलप्रतिज्ञ महावीरका मन जब इस प्रलोभनों-

---

१. प्रकाशकः—भारतवर्षीय दि० जैन संघ, मथुरा।

की ओर आकृष्ट नहीं हुआ तो पिताने भावावेशमें आकर अपने पदका उल्लंघन करते हुए अनेक सरस और आदर्शकी बातें कहीं। जब पिता अपने वात्सल्य और स्वत्वसे पुत्रको विवाह करनेके लिए तैयार न कर सके तो वह भिक्षुक बन याचना करने लगे। विराग विजयी हुआ और पिताको निराश हो अपने भवनमें लौट जाना पड़ा। त्रिशलासे सिद्धार्थने सारी बातें कह दीं।

त्रिशला अनन्त विश्वास समेटे पुत्रके पास आयी। आते ही पुत्रके समक्ष विश्वकी विषमताका दृश्य उपस्थित किया और मातृ-हृदयकी उत्कट अभिलाषा, आशा और अरमानोंको निकालकर रख दिया। माताने अन्तिम अस्त्र अश्रुपतनका भी प्रयोग किया। रानीको अपने आँसुओंपर असीम गर्व था। पर कुमार महावीर हिमालयकी अडिग चट्टानकी भाँति अचल रहे। माँ! इच्छासागरका जल अथाह है, इसकी धारा रुक नहीं सकती। अनन्त इच्छाओंकी तृप्ति कभी नहीं हुई है, यही महावीरका सीधा-सा उत्तर था। नारीके समान विश्वके ये मूक प्राणी जिनके गलेपर दुधारा चल रही है, मेरे लिए प्रेमभाजन हैं। माँको कुमारके उत्तरने मौन कर दिया। पुत्रके तर्क और प्रमाणोंके समक्ष माँको चुप हो जाना पड़ा।

एक दिन योगीके समान कुमार महावीर जग-चिन्तनमें ध्यानस्थ थे, उसी समय पिताकी पुकार हुई। पिताने पुत्रके सम्मुख अपनी वृद्धावस्था-की असमर्थता प्रकट करते हुए राज्यके गुरुतर भारको सम्भालनेकी आज्ञा दी। पिताके इस अनुरोधमें करुणा भी मिश्रित थी; किन्तु महावीरका विराग ज्योंका त्यों रहा। उनकी आँखोंके समक्ष विश्वके रुदन और क्रन्दन मूर्तिमान होकर प्रस्तुत थे; अतः राज्यका वैभव उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सका।

करुणासागर कुमारने पशुओंका मूक क्रन्दन सुना, उन्हें दग्ध रुधिर-की धाराओंका दुर्गन्ध मिला, वलिके दृश्य नाचने लगे और राज्यभवन

काटने लगा। धीरे-धीरे महलसे उतरे और राज्य-वैभवको ठुकराकर चल पड़े उस पथकी ओर जहाँ विश्वकी करुणा संचित थी, जहाँ पहुँचकर मानव भगवान् बनता है। जिसके प्राप्त किये बिना मानवता उपलब्ध नहीं होती। समस्त वस्त्राभूषणोंको लक्ष्य-प्राप्तिमें बाधक समझ दिगम्बर हो गये। आत्मशोधनके लिए प्रयत्न करने लगे। पश्चात् जननायक बन भगवान् महावीरने सामाजिक जीवनका प्रवाह एक नयी दिशाकी ओर मोड़ा।

समीक्षा

साधारणतः यह अच्छा खण्डकाव्य है। कविने मातृवात्सल्यका स्वाभाविक निरूपण किया है। यद्यपि इस दृष्टिका यह प्रथम प्रयास है, अतः सम्भाव्य त्रुटियोंका रहना स्वाभाविक है, फिर-भी संवादोंमें कविको सफलता मिली है। कुछ स्थलों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि मातृहृदयको कविने निकालकर ही रख दिया है। माता अपनी ममताका विश्वासकर धड़कते हुए हृदय और अश्रुपूरित नेत्रोंसे पुत्र कुमारके पास जाते ही पूछती है—"तुम बहते, इस समय कौनसे रसमें"। माँका हृदय पुत्रपर विश्वास ही नहीं रखता है, परन्तु अज्ञात भविष्यकी आशंकाकर माँ सिहर उठती है और पुत्रसे पूछ बैठती है—

इन पशुओं को तो जलना, पर तुम भी व्यर्थ जलोगे।
है मरण भाग्यमें जिसके, क्या उसके लिए करोगे॥

× × × ×

फिर क्यों तुम इनकी चिन्ता, करते हो मेरे हीरे।
इस भाँति विरागी बनकर, मम हृदय डालते चीरे॥

जब कुमारको इतनेपर भी पिघलता हुआ नहीं देखती है तो माँके हृदयकी विकलता और पिपासा और वृद्धिंगत हो जाती है अतः उसके मुखसे निकल पड़ता है—

मत दुःखी करो तुम मुझको, दे उत्तर ऐसा कोरा।
मानो न मोह को मेरे, तुम अति ही कच्चा डोरा॥

वाणीमें ओज, नयनोंमें करुणाकी निर्झरिणी तथा प्राणोंमें क्रन्दन भरे हुए पशुओंकी हूकसे व्यथित महावीरके मुखसे निकली उक्तियाँ श्रोता एवं पाठकोंके हृदय-तारोंको हिला देनेमें समर्थ हैं। अपने तर्कसम्मत विचारोंको सत्यका चोगा पहनाकर करुणार्द्र महावीर कह उठते हैं—

ये एक ओर हैं इतने, औ अन्य ओर है नारी॥
अब तुम्हीं बताओ इनमें, से कौन प्रेम अधिकारी॥
आकृतियाँ इनकी सकरुण, दिखती हैं सोते-जगते।
तब ही तो रमणी से भी रमणीय मुझे ये लगते॥

कविने इसमें नारी-आदर्शको अक्षुण्ण रखनेका पूरा प्रयास किया है। नारी वहीं तक त्याज्य है, जहाँतक वह असत् और असंयमित जीवन व्यतीत करनेके लिए प्रेरित करती है। जब नारी सहयोगी बन जीवनको गतिशील बनानेमें सहायक होती, तब नारी वासनामयी रमणी नहीं रहती, किन्तु सच्चा साथी बन जाती है। जीवन-साधनामें शिथिलता उत्पन्न करनेवाली नारी आदर्श नारी नहीं है। अतः सीता, राजुल और राधाका आदर्श रखता हुआ कवि नारीके आदर्श रूपकी प्रतिष्ठा करता हुआ कहता है—

फिर नर के लिए कभी भी, नारी न बनी है बाधा।
बतलाती है यह हमको, सीता औ राजुल राधा॥
दुःख में भी करती सेवा, संकट में साहस भरती।
पति के हित में है जीती, पति के हित में है मरती॥

'विराग' का कवि नारीके सम्बन्धमें चिन्तित है। वह आज नारी परतन्त्रताको श्रेयस्कर नहीं मानता है। अतः चिन्ता व्यक्त करता हुआ कहता है—

बनती कठपुतली पतिकी, जिस दिन कर होते पीले।
पति इच्छा पर ही निर्भर, हो जाते स्वप्न रंगीले॥
केवल विलास सामग्री, ही मानी जाती ललना।
गृहिणी को घर में लाकर, वे समझा करते चेरी॥
× × ×
कब नारी अपने खोये, स्वत्वोंको प्राप्त करेगी।
कब वह निज जीवन पुस्तक, का नव अध्याय रचेगी॥

कुमार महावीर राजसिंहासनकी सत्तासे उत्पन्न दोषोंके प्रति विद्रोहात्मक चिन्तन करते हैं। इस चिन्तनमें कवि आजकी राजनीतिसे पूर्ण प्रभावित है। अतः युगका चित्र खींचता हुआ कवि कहता है—

पूँजीपति इनके आश्रित, रह सुखकी निद्रा सोते।
पर श्रमिक कृषक गण जीवन भर दुखकी गठरी ढोते॥
× × ×

समानता, करुणा, स्नेह और सहानुभूतिके अमर छींटोंसे यह काव्य ओत-प्रोत है। पापके प्रति घृणा और पापीके प्रति करुणा तथा उसके उद्धारकी सद्भावना इसमें पूर्णरूपसे विद्यमान है। कवि कहता है—

दुष्पाप अवश्य घृणित है, पर घृणित नहीं है पापी।
यदि सद्व्यवहार करो वह, बन सकता पुण्यप्रतापी॥

विरागकी शैली रोचक, तर्कयुक्त और ओजपूर्ण है। भाव छन्दोंमें बाँधे नहीं गये हैं, अपितु भावोंके प्रवाहमें छन्द बनते गये हैं। अतः कवितामें गत्यवरोध नहीं है। हाँ एकाध स्थलपर छन्दोभंग है, पर प्रवाहमें वह खटकता नहीं है। भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल है।

स्फुट कविताएँ

विचार-जगत्में होनेवाले आवर्तन और विवर्तन, प्रवर्तन और परिवर्तन के आधारपर इस बीसवीं शतीकी स्फुट जैन कविताओंका सम्यक् वर्गीकरण

करना असम्भव-सा है। इस युगकी स्फुट कविताओंको प्रधान रूपसे पुरातन प्रवृत्ति और नूतन प्रवृत्ति इन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है।

पुरातन

पुरातन-प्रवृत्तिके अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें लोक हृदयका विश्लेषण तो है, पर कलारानीका रूप सँवारा नहीं गया है। उसके अधरों में मुस्कान और आँखोंमें औदार्यकी ज्योतिकी क्षीण रेखा विद्यमान है। दार्शनिक पृष्ठभूमिकी विशेषताके कारण आचारात्मक नियमोंका विधि-निषेधात्मक निरूपण ही किया गया है। भाव, भाषा सभी प्राचीन हैं, शैली भी पुरातन है। इस प्रकारकी कविता रचनेवालोंमें इस युगके आद्य कवि आरा निवासी बाबू जगमोहनदास हैं। आपका 'धर्मरत्नोद्योत' नामक ग्रन्थ प्रकाशित है। इसकी कविता साधारण है, पर भाव उच्च हैं।

श्री बाबू जैनेन्द्रकिशोर आराने भजन-नवरत्न, श्रावकाचार दोहा, वचन-बत्तीसी आदि कविताएँ लिखी हैं। आप समस्यापूर्ति भी करते थे, आपकी इस प्रकारकी कविताओंपर रीति-युगकी स्पष्ट छाप है। नख-शिख वर्णनके कुछ पद्य भी आपके उपलब्ध हैं, ये पद्य सरस और श्रुतिमधुर हैं।

कविवर उदयलाल, ब्र० शीतलप्रसाद, हंसवा निवासी लक्ष्मीनारायण तथा लक्ष्मीप्रसाद वैद्यकी आचारात्मक कविताएँ भी अच्छी हैं। इन कविताओंमें रस, अलंकार और काव्यचमत्कारकी कमी रहनेपर भी अनुभूतिकी पर्याप्त मात्रा विद्यमान है।

श्री मास्टर नन्हूराम और झालरापाटन-निवासी श्री लक्ष्मीबाईकी कविताओंमें माधुर्य गुण अधिक है। आचारात्मक और नैतिक कर्त्तव्यका विश्लेषण इन कविताओंमें सुन्दर ढंगसे किया गया है। सप्तव्यसनकी बुराइयोंका प्रदर्शन कविता और सवैयोंमें सुन्दर हुआ है। दर्शन और आचारकी गूढ़ बातोंको कवियोंने सरस रूपसे व्यक्त किया है।

जैन गजटकी पुरानी फाइलोंमें अनेक ऐसी समस्यापूर्तियाँ हैं जिनमें कवियोंके नाम नहीं दिये गये हैं, परन्तु इन कविताओंसे कवियोंकी उस कालकी काव्यप्रवृत्तियों और कविताकी विशेषताओंका सहजमें ही परिचय प्राप्त हो जाता है।

नूतन प्रवृत्ति

नूतन-प्रवृत्तिके कवियोंकी स्फुट कविताओंका समुचित वर्गीकरण करना असम्भव-सा है। वर्तमान युगमें सहस्रोन्मुखी पहाड़ी झरनेके समान अनेकोन्मुखी जैन काव्य-सरिता प्रवाहित हो रही है। अतः समय-क्रमानुसार इस प्रवृत्तिके कवियोंको तीन उत्थानोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम उत्थान ई० सन् १९०० से ई० सन् १९२५ तक, द्वितीय उत्थान ई० सन् १९२६–१९४० तक और तृतीय उत्थान ई० सन् १९४१–१९५५ तक लिया जायगा।

प्रथम उत्थानकी स्फुट कविताओंको वृत्तात्मक, वर्णनात्मक, नैतिक या आचारात्मक, भावात्मक और गेयात्मक इन पाँच भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। ऐतिहासिक वृत्त या घटनाको आधार लेकर जिन कविताओंमें भावाभिव्यंजन हुआ है, वे वृत्तात्मकसंज्ञक हैं। प्राकृतिक दृश्य, स्थान, देशदशा, कोई धार्मिक या लौकिक दृश्यका निरूपण वर्णनात्मक; नीति, उपदेश, आचार या सिद्धान्त निरूपण आचारात्मक; शृंगार, प्रणय, उत्साह, करुणा, सहानुभूति, रोष, क्रान्ति आदि किसी भावनाका निरूपण भावात्मक और रसप्रधान मधुर एवं लययुक्त रचना गेयात्मक हैं।

वृत्तात्मक रचनाओंमें कवि गुणभद्र 'आगास'की प्रद्युम्नचरित्र, रामवनवास और कुमारी अनन्तमती रचनाएँ साधारण कोटिकी हैं। इनमें काव्यत्व अल्प और पौराणिकता अधिक है। कवि कल्याणकुमार 'शशि'का देवगढ़काव्य भी वृत्तात्मक है। कवि मूलचन्द्र 'वत्सल'का वीर पंचरत्न वृत्तात्मक साधारण काव्य है, इसमें प्रण-वीर लव-कुशकुमार, युद्धवीर

प्रद्युम्नकुमार, वीर यशोधर कुमार, कर्मवीर जम्बूकुमार एवं धर्मवीर अकलंकदेवका बालचरित्र अंकित किया गया है।

वर्णनात्मक कविताओंमें जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'की 'अजसम्बोधन', नाथूराम 'प्रेमी' की 'पिताकी परलोकयात्रापर', भगवन्त गणपति गोयलीय की 'सिद्धवरकूट', गुणभद्र 'आगास' की 'भिखारीका 'स्वप्न', सूर्यभानु 'डाँगी' की 'संसार', शोभाचन्द्र 'भारिल्ल' की 'अन्यत्व, अयोध्याप्रसाद गोयलीयकी 'जवानोंका जोश', बा० कामताप्रसादकी 'जीवन-झाँकी', लक्ष्मीचन्द्र एम० ए० की "मैं पतझरकी सूखी डाली", शान्तिस्वरूप 'कुसुम'की 'कलिकाके प्रति', लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त'की 'फूल', खूबचन्द 'पुष्कल'की 'भग्नमन्दिर', पन्नालाल 'वसन्त'की 'त्रिपुरी की झाँकी', वीरेन्द्रकुमार एम० ए० की 'वीर वन्दना', घासीराम 'चन्द्र' की 'फूलसे', राजकुमार साहित्याचार्यकी 'आह्वान', ताराचन्द 'मकरन्द' की 'ओस', चन्द्रप्रभा देवीकी 'रणभेरी', कमला देवीकी 'रोरी', कमलादेवी राष्ट्रभाषाकोविदकी 'हम हैं हरी-भरी फुलवारी' शीर्षक कविताका समावेश होता है। इनमें अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें वर्णनके साथ भावात्मकता भी पूर्णरूपसे विद्यमान है।

भावात्मक मुक्तक रचनाएँ वे ही मानी जा सकती हैं, जिनमें अनुभूति अत्यन्त मार्मिक हो। कवि सांसारिकतासे उठकर भाव-गगनमें विचरण करता दृष्टिगोचर हो। अन्तर्वृत्तियोंका उन्मीलन हो, पर बाह्यजगत्के सुधार-परिष्कारोंकी चर्चा न की गयी हो।

नैराश्य, भक्ति, प्रणय और सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना ही जिसका चरम लक्ष्य रहे और जिसकी आरम्भिक पंक्तिके श्रवणसे ही पाठकके हृदयमें सिहरन, प्रकम्पन और आलोडन-विलोडन होने लगे, वह श्रेष्ठ भावात्मक मुक्तक रचना कही जा सकती है। अतएव भाव-विह्वलता, विदग्धता और संकेतात्मकताका इस प्रकारकी कवितामें रहना परम आवश्यक है। आधुनिक जैन कवियोंमें श्रेष्ठ भावात्मक काव्य लिखनेवाले प्रायः नहीं

हैं। कुछ ऐसे कवि अवश्य हैं, जिनकी रचनाओंमें गूढ़ भाव अवश्य पाये जाते हैं। शोक, आनन्द, वैराग्य, कारुण्य आदि भावोंकी अभिव्यञ्जना रे, हाय, आह, आदि शब्दोंको प्रयुक्त कर की है।

इस कोटिमें मुख्तार सा० की 'मेरी भावना' भगवन्त गणपति गोयलीयकी 'नीच और अछूत', कवि चैनसुखदासकी 'जीवनपट', कवि सत्यभक्तकी 'झरना', कवि कल्याणकुमार 'शशि'की 'विश्रुतजीवन', कवि भगवत्स्वरूपकी 'सुख शान्ति चाहता है मानव', कवि लक्ष्मीचन्द्र एम० ए० की 'सजनी आँसू लोगी या हास', कवि बुखारिया 'तन्मय'की 'मैं एकाकी पथभ्रष्ट हुआ', अमृतलाल चंचलकी 'अमरपिपासा', पुष्कलकी 'जीवन दीपक', अक्षयकुमार गंगवालकी 'हलचल', मुनिश्री अमृतचन्द्र 'सुधा'की 'अन्तर' और 'बढ़े जा', सुमेरचन्द्र 'कौशल'की 'जीवन पहेली' और 'आत्म-निवेदन', बालचन्द्र विशारद की 'चित्रकारसे' और 'आँसूसे', श्रीचन्द्र एम० ए० की 'आत्मवेदन' एवं कवि 'दीपक' की 'झनकार' आदि कविताएँ प्रमुख हैं। कवि बुखारिया और पुष्कल भावात्मक रचनाओंके अच्छे रचयिता हैं।

आचारात्मक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहती हैं। इस कोटिकी कविताओंमें प्रायः काव्यत्वका अभाव है।

गेयात्मक रचनाओंमें मानवकी रागात्मिका वृत्तिको अधिकसे अधिक रूपमें जाग्रत करनेकी क्षमता, कल्पना-द्वारा भावोत्तेजनकी शक्ति और नाद-सौन्दर्य युक्त संगीतात्मकता अवश्य पायी जाती है। गेय काव्योंमें संगीतका रहना परम आवश्यक है। जिस काव्यमें संगीत नहीं, वह भाव-गाम्भीर्यके रहनेपर भी गेयात्मक नहीं हो सकता। वस्तुतः गेयकाव्योंमें अन्तर्जगत्का स्वाभाविक परिस्फुरण रहता है और रसोद्रेक करनेके लिए कवि स्वर और लयके नियमित आरोह-अवरोहसे एक अद्भुत संगीत उत्पन्न करता है, जिससे श्रोता या पाठक अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति करता है।

गेय काव्य लिखनेमें कवयित्री कुन्थुकुमारी, प्रेमलता कौमुदी, कमला-देवी, पुष्पलता देवी, कवि 'अनुज', 'पुष्पेन्दु', 'रतन', 'गंगवाल', 'वुखारिया', आदिको अच्छी सफलता मिली है। कवि रामनाथ पाठक 'प्रणयी'का 'तीर्थंकर' शीर्षक एक सोलह-सत्रह गीतोंका सुन्दर संकलन प्रकाशित हुआ है। ये सभी गीत गेय हैं। इनमें भावनाओंकी भी सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है।

नवाँ अध्याय

हिन्दी जैन गद्य साहित्यका क्रमिक विकास और विभिन्न प्रवृत्तियाँ

हिन्दी जैन गद्य साहित्य : पुरातन

(१४वीं शती से १९वीं शती तक)

जिसमें वाक्योंकी नाप-तौल, शब्द और वाक्योंका क्रम निश्चित न हो तथा जो प्रतिदिनकी बोल-चालकी भाषामें लिखा जाय, उसे गद्य कहते हैं। प्रतिदिनके व्यवहारकी वस्तु होनेके कारण पद्यकी अपेक्षा गद्यका अधिक महत्त्व है। परन्तु विश्वके समस्त साहित्यमें पद्यात्मक साहित्यका प्रचार सुदूर प्राचीनकालसे चला आ रहा है। मानव स्वभावतः संगीत-प्रिय होता है, अतएव उसने अपने भाव और विचारोंकी अभिव्यञ्जना भी संगीतात्मक पद्योंमें की है। यही कारण है कि गद्यात्मक साहित्यकी अपेक्षा पद्यात्मक साहित्य प्राचीन है। जैन लेखकोंने पद्यात्मक साहित्य तो रचा ही; पर गद्यात्मक साहित्य भी विपुल परिमाणमें लिखा। साधारण जनता गद्यमें अभिव्यञ्जित भावनाओंको आसानीसे ग्रहण कर सकती थी, अतएव उत्तरीय भारतमें अनेक गद्य रचनाएँ १४वीं शताब्दीके पहले भी लिखी गईं।

जैन हिन्दी साहित्यका निर्माण-केन्द्र प्रधानतः जयपुर, आगरा और दिल्ली रहा है। अतः जैन लेखकों-द्वारा लिखा गया गद्य राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनोंमें पाया जाता है। राजस्थानमें गद्य लेखनकी अखण्ड

परम्परा अपभ्रंशकालसे लेकर आजतक चली आ रही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि राजस्थानमें अनेक गद्य ग्रन्थ अभी भी अन्वेषकोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जैन लेखकोंने उपन्यास या नाटकके रूपमें प्राचीनकालमें गद्य नहीं लिखा। कुछ कथाएँ गद्यात्मक रूपमें अवश्य लिखी गईं। प्राचीन संस्कृत और प्राकृतके कथाग्रन्थोंके अनुवाद भी हूंढ़ारी भाषामें लिखे गये, जिससे सर्वसाधारण इन कथाओंको पढ़कर धर्म-अधर्मके फलको समझ सके। वस्तुतः जैन गद्यकारोंने अपने प्राचीन ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें अनुवाद कर गद्य साहित्यको पल्लवित किया है। अनेक कथाग्रन्थोंका तो भावानुवाद भी किया गया है, जिससे इन लेखकोंकी गद्य-विषयक मौलिक प्रतिभाका सहजमें परिज्ञान हो जाता है। अनेक तात्त्विक और आचारात्मक ग्रन्थोंकी टीकाएँ भी हिन्दी गद्यमें लिखी गयीं, जिनसे दुरूह ग्रन्थ सर्वसाधारणके लिए भी सुपाठ्य बने।

१७वीं शताब्दीके मध्यभागमें राजमल पाण्डेयने गद्यमें समयसारपर टीका लिखी। इस टीकाने क्लिष्ट और अगम्य तात्त्विक चर्चाको अत्यन्त सरल और सरस बना दिया। इसके गद्यकी भाषा ढूंढारी है, यह राजस्थानी भाषाका एक भेद है। कविवर बनारसीदासको नाटक समयसारके बनानेकी प्रेरणा इसी टीकासे प्राप्त हुई। इसकी भाषामें विषयको स्पष्ट करनेकी क्षमता है और जिस बातको यह कहना चाहते हैं, सीधे-सादे ढंगसे उसे कह देते हैं। लेखकका भाषापर पूरा अधिकार है, उसमें विश्लेषण और विवेचनकी पूरी शक्ति है। संस्कृतके कठिन शब्दोंको अपनी भाषामें उसने नहीं आने दिया है, शक्तिभर हिन्दीके पर्यायी शब्दों-द्वारा विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। भाषामें प्रवाह अपूर्व है, पाठक बहता हुआ विषयके कगारको प्राप्त कर लेता है। समासान्त प्रयोगोंका प्रायः अभाव है। परिचितसे सरल तत्सम शब्दोंका प्रयोग भाषामें माधुर्यके साथ भावाभिव्यक्तिकी क्षमताका परिचय दे रहा है। यद्यपि आजके युगमें यह

भाषा भी दुरूह मानी जाती है, पर विषयको हृदयंगम करनेमें इसका बड़ा महत्त्व है। उदाहरणके लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—

"यथा कोई वैद्य प्रत्यक्षपने विष कछु पीवै छै तो फुनि नहीं मरे छै और गुण जानै छै तिहिं तैं अनेक यातन जानै छै। तिहिं करि विपकी प्राणघातक शक्ति दूर कीनी छै। वही विष खाय तो अन्य जीव तत्काल मरै, तिहि विषसो वैद्य न मरै। इसी जानपनाको समर्थपनो छै। अथवा कोई शूद्र जीव मतवालों न होइ जिसो थो तिसो ही रहे।"

कविवर बनारसीदास हिन्दी भाषाके उच्चकोटिके कवि होनेके साथ गद्य-रचयिता भी हैं। आगरामें बहुत दिनोंतक रहनेके कारण इनके गद्य-की भाषा ब्रजभाषा है। इन्होंने परमार्थ-वचनिका और उपादान-निमित्तकी चिट्ठी गद्यमें लिखी है। इनकी गद्यशैली व्यवस्थित है, भाषाका रूप निखरा हुआ है और क्रियापद प्रायः विशुद्ध ब्रजभाषाके हैं। संस्कृतके कुछ क्रियापद भी इनकी भाषामें विद्यमान हैं। लिख्यते, कथ्यते, उच्यते जैसे क्रियापदोंका प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। संस्कृतके तत्सम शब्द विपुल परिमाणमें वर्तमान हैं।

बनारसीदासकी गद्यशैली सजीव और प्रभावपूर्ण है। शब्द सार्थक, प्रचलित और भावानुकूल प्रभाव उत्पन्न करनेकी क्षमता रखते हैं। यद्यपि विषयके अनुसार पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया गया है, पर इससे क्लिष्टता नहीं आयी है। वाक्योंका गठन स्वाभाविक है, दूरान्वय या उलझे हुए वाक्य नहीं है। लेखकने अनुच्छेदयोजना—एक ही प्रसंगसे सम्बद्ध एक विचारधाराको स्पष्ट करनेवाले वाक्योंका संगठन, बहुत ही सुन्दर—की है। भावोंको शृंखलाकी कड़ियोंकी तरह आबद्ध कर रखा है। ब्रजभाषाका इतना परिष्कृत रूप अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा। नमूना निम्न है—

"एक जीव द्रव्य जा भाँतिकी अवस्था लिये नानारूप परिनमें सो भाँति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। वाकी और भाँति। याही भाँति

अनन्तानन्त स्वरूप जीवद्रव्व अनन्तानन्त स्वरूप अवस्था लिये वर्तहिं। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य और स्यों मिलइ नाहीं। याही भाँति एक पुद्गल परमानू एक समय माहिं जा भाँतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमानू द्रव्यसौं मिलै नाहीं। तातैं पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी अन्य अन्यता जाननी।"

परमार्थवचनिकाकी भाषाकी अपेक्षा इनकी 'उपादान निमित्तकी चिट्ठी' की भाषा अधिक परिष्कृत है। यद्यपि ढूँढ़ारी भाषाका प्रभाव इनकी भाषा पर स्पष्ट लक्षित है, तो भी इस चिट्ठीकी भाषामें भाव-प्रवणता पर्याप्त है। वाक्योंके चयनमें भी लेखकने बड़ी चतुराईका प्रदर्शन किया है। नमूना निम्न है—

"प्रथमहि कोई पूछत है कि निमित्त कहा, उपादान कहा ताकौ व्यौरौ—निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताकौ व्यौरौ—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताकौ व्यौरौ—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेद कल्पना।"

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि बनारसीदासके गद्यमें भावोंके व्यक्त करनेकी पूर्ण क्षमता है। पाठक उनके विचारोंसे गद्य-द्वारा अभिज्ञ हो सकते हैं।

संवत् १७०० के आस-पास अखयराज श्रीमाल हुए। इन्होंने 'चतुर्दश गुणस्थान चर्चा' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ तथा कई स्तोत्रोंकी हिन्दी वचनिकाएँ लिखीं। लेखकने सैद्धान्तिक विषयोंको बड़े हृदय-ग्राह्य ढंगसे समझाया है। यद्यपि वाक्योंके संगठनमें त्रुटि है, पर शब्दचयन सार्थक है। तत्सम शब्दोंका प्रयोग बहुत कम किया है। दूरान्वय गद्यमें नहीं है। लेखकने व्यंजनावग्रहको समझाते हुए लिखा है—

जो अप्रगट अवग्रह होई सो व्यञ्जनावग्रह कहिये। अप्रगट जे पदार्थसे तत्काल जान्यां न जाई। जैसे कोरे वासन पर पानीकी बूँदें

दोइ-च्यारि पड़ै तो जानि न जाई, वासन आला न होइ। जब वारम्वार भाइये तब आला होई, तैसे स्पर्शादि इन्द्री ४ तिनके सनमंधि जे परमानु पनपै हैं ते तत्काल व्यञ्जनावग्रह करि नाहिं प्रगट होते।"

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि आला, वासन जैसे देशज शब्दोंका प्रयोग एवं सनमंधि जैसे अपभ्रंश शब्दोंका प्रयोग इनके गद्यमें बहुलतासे पाया जाता है। शब्दोंकी तोड़-मरोड़ भी यथास्थान विद्यमान है।

हिन्दी वचनिककारोंमें पाण्डे हेमराजका नाम अग्रगण्य है। इन्होंने १७वीं शतीके अन्तिम पादमें प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका तथा भक्तामर भाषा, गोम्मटसार भाषा और नयचक्रकी वचनिका ये पाँच रचनाएँ लिखी हैं। इनके गद्यकी भाषा व्यवस्थित और मधुर है। टीकाओंकी शैली पुरातन है तथा संस्कृत टीकाकारोंके अनुसार खण्डान्वय करते हुए लेखकके विषयका स्पष्टीकरण किया है। यद्यपि अनेक स्थलोंपर गद्यमें शिथिलता है, तो भी भावाभिव्यक्तिमें कमी नहीं आने पायी है। भाषामें पंडिताऊपन इतना अधिक है, जिससे गद्यका सारा सौन्दर्य, विकृत-सा हो गया है। इनके गद्यका नमूना निम्न है—

"किल निश्चय करि, अहमपि मैं जु हौं मानतुंग नाम आचार्य सो तं प्रथमं जिनेन्द्रं स्तोष्ये, सो जुहै प्रथम जिनेन्द्र श्रीआदिनाथ ताहि स्तोष्ये—स्तवुंगा। कहाकारि स्तोत्र करौंगो, जिनपादयुगं सम्यक् प्रणम्य—जिन जुहैं भगवान तिनके पाद युग दोई चरण कमल ताहि सम्यक् कहिये, भली-भाँति मन-वच कायाकरि प्रणम्य नमस्कार करिकैं। कैसो है भगवान्का चरण द्वय।...भक्तिवंत जुहैं अमर देवता, तिनके नम्रीभूत जु है मौलि मुकुट तिन विषैं जु है मणि, तिनकी जु प्रभा तिनका उद्योतक है। यद्यपि देवमुकुटनि उद्योत कोटि सूर्यवत है, तथापि भगवान्के चरण नखकी दीप्ति आगें, वे मुकुट प्रभारहित ही हैं।"

पाण्डे हेमराजने हौं, मौरि, जु है, सो जैसे ब्रजभाषाके शब्दोंका भी प्रयोग किया है। क्रियापद ब्रज और ढूँढारी दोनों ही भाषाओंसे ग्रहण

किये हैं। छोटे-छोटे समासोंका प्रयोग कर अभिव्यंजनाको शक्तिशाली बनानेका पूर्ण प्रयास किया गया है।

कविवर रूपचन्द पाण्डे महाकवि बनारसीदासके अभिन्न मित्र थे। इन्होंने बनारसीदासके नाटक समयसारपर हिन्दी गद्यमें टीका लिखी है। इनकी गद्य शैली बनारसीदासकी गद्य शैलीसे मिलती-जुलती है। वाक्य-गठनमें कुछ सफाई प्रतीत होती है। रूपचन्दने संस्कृतके तत्सम शब्दोंके साथ जतन, पहार, विजोग, वखान जैसे तद्भव शब्दोंका भी प्रयोग किया है। अरबी-फारसीके चलते हुए शब्द दाग, दुसमन, दंगा आदिको भी स्थान दिया है। भावाभिव्यञ्जनमें सफाई और सतर्कता है।

इनके वाक्य अधिकतर लम्बे होते हैं, परन्तु अन्वयमें क्लिष्टता नहीं है। सरलता और स्पष्टता इनके गद्यकी प्रधान विशेषता है। प्रचलित शब्दोंके प्रयोग-द्वारा भाषामें प्रवाह और प्रभाव दोनों ही को उत्पन्न करनेकी चेष्टा की गयी है। शुष्क विषयमें भी रोचकता उत्पन्न करनेका प्रयास स्तुत्य है। भाषा और शैली-सम्बन्धी अव्यवस्था और अस्थिरताके उस युगमें इस प्रकारके गद्यका लिखा जाना लेखककी प्रतिभा और दूर-दर्शिताका परिचायक है। इनके गद्यका नमूना निम्न है—

"जैसे कोई पुरुष पहारपर चढ़िकै नीची दृष्टि करै तब तलहटीको पुरुष तिस पहारीको छोटो-सो लागै, अरु तलहटी वारौ पुरुष तिहि पहार वारौको लखै देखै तो पहार वारौ छोटो-सो लागै। पीछे दोनों उतरिकै मिलैं तब दुहोंको भ्रम भागै। तैसे अभिमानी पुरुष ऊँची गरदन राखन-हारों और जीवकों लघु पदको दाग दै इतनै छोटै तुच्छ करि जानै।"

१८वीं शताब्दीके मध्य भागमें दीपचन्द कासलीवालका जन्म हुआ। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाके ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद न कर स्वतन्त्ररूपसे जैन हिन्दी गद्य साहित्यकी श्रीवृद्धि की। इनकी अनुभव प्रकाश, चिद्‌विलास, गुणस्थानभेद आदि धार्मिक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी गद्यशैली संयत है, वाचक शब्दोंके अतिरिक्त लक्षक शब्दोंका

प्रयोग भी इन्होंने किया है। इनकी भाषा ढूँढारी है। छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर अर्थ प्रकट करना इनकी वैयक्तिक विशेषता है। भाषामें तत्सम संस्कृत शब्दोंके साथ मारवाड़ी प्रयोग भी पाये जाते हैं। हाँ, अरबी-फारसीके शब्दोंका इनके गद्यमें अभाव है। इनके गद्यको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि इन्होंने जानबूझकर अरबी-फारसीके शब्दोंका बहिष्कार किया है; क्योंकि राजस्थानी भाषामें भी अरबी-फारसीके प्रचलित शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है। गद्य-शैलीकी स्वच्छता इनकी प्रशंसनीय है। गद्यका नमूना निम्न प्रकार है—

"प्रथम लय समाधि कहिये परणामताकी लीनता। निज वस्तु विषै परिणाम करतैं। राग दोष मोह मेटि दरसन ज्ञान अपना सरूप प्रतीतिमैं अनुभवै। जैसे देह में आपकी बुद्धि थी तैसे आत्मामैं बुद्धि धरी। वा बुद्धिस्वरूप मैं तैं न निकसैं, जब ताईं तब ताईं निज लय-समाधि कहिये। लय सबद भया निजमैं परिणामलीन अर्थ भया। सबद अर्थका ज्ञानपणां ज्ञान भया। तीन भेद लय समाधिके हैं।"

बसवानिवासी पं० दौलतरामने पुण्यास्रवकथाकोष, पद्मपुराण, आदिपुराण और वसुनन्दि श्रावकाचार इन चार ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें अनुवाद किया है। इनके गद्यको हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहासकार पं० रामचन्द्रशुक्लने अपरिमार्जित खड़ी बोली माना है। इन गद्य ग्रन्थोंकी भाषा इतनी सरल है, जिससे गुजराती और महाराष्ट्री भी इन ग्रन्थोंको बड़े चावसे पढ़ते हैं। गुजरात और महाराष्ट्रके जैन सम्प्रदायमें इन ग्रन्थोंने हिन्दी भाषाके प्रचारमें बड़ा योग दिया है।

यद्यपि गद्यपर ढूँढारीपनकी छाप है, फिर भी यह गद्य खड़ी बोलीके अधिक निकट है। भाषाकी सरलता, स्वच्छता और वाक्य गठन इनकी शैलीकी कमनीयता प्रकट करते हैं। साधारण बोलचालकी भाषाका प्रयोग इन्होंने खुलकर किया है। इनके गद्यमें प्रतिदिनके व्यवहारमें प्रयुक्त अरबी-फारसीके शब्द भी हैं, जिससे भाषाका रूप निखर गया है। यद्यपि

इनकी संख्या अल्प ही है, फिर भी इन्होंने गद्यको सशक्त और भाव व्यक्त करनेमें सक्षम बनाया है।

ध्वनि-योजना, शब्द-योजना, अनुच्छेद-योजना और प्रकरण-योजना का पं० दौलतरामने पूरा निर्वाह किया है। भावोंकी कटुता अथवा स्निग्धताके कारण अनुकूल ध्वनि-वर्णोंका संगठन करनेमें इन्होंने कोर-कसर नहीं की है। कोमल, ललित और मधुर भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए तदनुकूल ध्वनियोंका प्रयोग किया है। अनुवादमें यही इनकी मौलिकता है कि ये युद्ध, रति, श्रृङ्गार, प्रेम आदिके वर्णनमें अनुकूल ध्वनियोंका सन्निवेश कर सके हैं। शब्द इनके सार्थक और भावानुकूल हैं, एक भी निरर्थक शब्द नहीं मिलेगा। व्याकरणके नियमोंपर ध्यान रखा गया है, किन्तु व्रज, ढूँढारी और खड़ी बोलीका मिश्रितरूप रहनेके कारण व्याकरणके नियमोंका पूर्णरूपसे पालन नहीं किया गया है और यही कारण है कि क्रियापद विकृत और तोड़े-मरोड़े गये हैं। वाक्योंका गठन इस प्रकारसे किया गया है, जिससे गद्यमें अस्वाभाविकता और कृत्रिमता नहीं आने पायी है। वाक्य यथासम्भव छोटे-छोटे और एक सम्पूर्ण विचारके द्योतक हैं।

एक ही प्रसंगसे सम्बद्ध एक विचारधाराको स्पष्ट करनेके लिए अनुच्छेद योजना की जाती है। लेखकने घटनाकी एक श्रृङ्खलाकी कड़ियों-को परस्पर आबद्ध करनेकी पूरी चेष्टा की है। अनुच्छेदके अन्तमें विचार-की अग्रगतिका आभास भी मिल जाता है।

अनुवादक होनेपर भी पं० दौलतरामने प्रकरणोंका सम्बन्ध ऐसा सुन्दर आयोजित किया है, जिससे वे मौलिक रचनाकारके समकक्ष पहुँच जाते हैं। अनुवादमें श्लोकोंके भावको एक सूत्रमें पिरोकर कथाके प्रवाह-को गतिशीलता दी है। पद्मपुराणके अनुवादमें तो लेखक अत्यन्त सफल है। इनकी गद्यशैलीका नमूना निम्न है—

"भरत चक्रवर्ती पदकूँ प्राप्त भए, अर भरतके भाई सब ही मुनि-

व्रत धार परमपदको प्राप्त हुए, भरतने कुछ काल छैखण्डका राज्य किया, अयोध्या राजधानी, नवनिधि चौदह रत्न प्रत्येककी हजार-हजार देव सेवा करें, तीन कोटि गाय, एक कोटि हल, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारा कोटि घोड़े, बत्तीस हजार मुकुटबन्द राजा अर इतने ही देश महासम्पदाके भरे, छियानवे हजार रानी देवांगना समान, इत्यादि चक्रवर्तीके विभवका कहाँतक वर्णन करिये। पोदनापुरमें दूसरी माताका पुत्र बाहुबली सो भरतकी आज्ञा न मानते भए, कि हम भी ऋषभदेवके पुत्र हैं किसकी आज्ञा मानें, तब भरत बाहुबलीपर चढ़े, सेना युद्ध न ठहरा, दोऊ भाई परस्पर युद्ध करें यह ठहरा, तीन युद्ध थापे, १ दृष्टियुद्ध, २ जलयुद्ध अर ३ मल्लयुद्ध।"

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि खड़ी बोलीके गद्यके विकासमें इनकी गद्य शैलीका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुनि वैराग्यसारने संवत् १७५९ में 'आठ कर्मनी १०८ प्रकृति' नामक गद्य ग्रन्थकी रचना की थी। शैली और भाषा दोनोंपर अपभ्रंशका पूरा प्रभाव है। 'न' के स्थानपर 'ण', दूसरेके स्थानपर 'बीजउ' का प्रयोग तथा द्वित्व वर्ण विशिष्ट भाषा पायी जाती है।

१९ वीं शताब्दीके आरम्भमें कवि भूधरदासने 'चर्चासमाधान' नामक गद्य ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इसमें विभक्तियाँ ढूँढारी हैं, पर भाषा खड़ी बोलीके अत्यासन्न है। गद्यशैली स्वस्थ और भावाभिव्यक्तिमें सक्षम है। इसमें लेखकने धार्मिक शंकाओंका निराकरण कर सिद्धान्त निरूपण किया है। इनके गद्यका नमूना निम्न प्रकार है—

"उपदेश कार्य विषै तो आचार्य मुख्य है। पाठ पठनमें उपाध्याय मुख्य है। संयमके साध विषै साधुकी बड़ी शक्ति है। मौनावलम्बी पीर विरक्त हैं, यातैं साधुपद उत्कृष्ट है। समानपने साधु तीनोंको कहिये। विशेष विचार विषै साधुपदको ही जानना। याते आचार्य उपाध्यायको साधु कह्यो। साधूको आचार्य उपाध्याय न कहिये"।

संवत् १८२० में चैनसुखने शतश्लोकी टीका और इनसे पहले दीपचन्दने बालतन्त्र भाषा वचनिका लिखी। इन ग्रन्थोंका गद्य ढूँढारी भाषा का है और शैली भी इसी भाषाकी है। वाक्योंके गठनमें शिथिलता है।

उन्नीसवीं शतीके मध्यभागमें 'अंबउचरित' नामक भाषा ग्रन्थ अमरकल्याणने लिखा। इनके गद्यपर अपभ्रंश भाषाका स्पष्ट प्रभाव है, कहीं-कहीं तो वाक्यप्रणाली और शब्द योजना अपभ्रंशकी ही है।

किसी अज्ञात लेखकका 'जम्बू कथा' ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इसकी गद्य रचना पुरानी ढूँढारी भाषामें है। छोटे-छोटे वाक्योंमें विषयकी व्यंजना स्पष्ट रूपसे हुई है। शैलीमें जीवटपना है। संस्कृतके तत्सम शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है।

संवत् १८५८ में ज्ञानानन्दने श्रावकाचार लिखा। इनका गद्य बहुत ही व्यवस्थित और विकासोन्मुखी है। नमूना निम्न है—

"सर्व जगत्‌की सामग्री चैतन्य सुभाव विना जडत्व सुभावमें धरे फीकी, जैसे लून विना अलौनी रोटी फीकी। तीसों ऐसे ग्यानी पुरुष कौन है सो ज्ञानामृत कै छोड़ उपाधीक आकुलतासहित दुपने आचरै कदाचित न आचरै।"

उन्नीसवीं शताब्दीमें ही धर्मदासने इष्टोपदेश-टीका लिखी। इनका गद्य खड़ी बोलीका है। विभक्तियाँ पुरानी हिन्दीकी हैं, तथा उनपर राजस्थानी और ब्रजभाषाका पूरा प्रभाव है। भाषा साफ सुथरी और व्यवस्थित है। नमूना निम्न है—

"जैसे जोगका उपादान जोग है वा धतुराका उपादान धतुरा है आम्रका उपादान आम्र है अर्थात् धतुराके आम नहीं लागै अर आम्रके धतुरा नाहीं लागै, तैसेहीं आत्माके आत्माकी प्राप्ती सम्भव है। प्रश्न—प्राप्तकी प्राप्ती कोण दृष्टान्त करि सम्भवै सो कहो। उत्तर—जैसे कंठमें मोती माला प्राप्त है अर भरमतै भूलिकरि कहैके मेरी मोतीकी माला गुम गई—मेरी मोकूँ प्राप्ती कैसे होवै।"

१९ वीं शताब्दीमें ही स्वनामधन्य महापण्डित टोडरमलका जन्म हुआ। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा-द्वारा जैन सिद्धान्तके श्रेष्ठतम ग्रन्थ गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें अनुवाद किया। अनुवादके अतिरिक्त ढूँढ़ारी भाषामें मोक्षमार्गप्रकाशकी रचना की। यह मौलिक ग्रन्थ विषयकी दृष्टिसे तो महत्त्वपूर्ण है ही, पर भाषाकी दृष्टिसे भी इसका अधिक महत्त्व है। ढूँढारी भाषा होनेपर भी गद्यके प्रवाहमें कुछ कमी नहीं आने पायी है तथा ऊँचेसे ऊँचे भावोंकी अभिव्यञ्जना भी सुन्दर हुई है। भाव व्यक्त करनेमें भाषा सशक्त है, शैथिल्य बिल्कुल ही नहीं है। गद्यका नमूना निम्न प्रकार है—

"बहुरि मायाका उदय होतैं कोई पदार्थकों इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकर ताकी सिद्धि किया चाहैं; रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै, ठिगनेके अर्थि अपनी अनेक अवस्था करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावैं इत्यादि रूप छल करि अपना अभिप्राय सिद्ध किया चाहै या प्रकार मायाकी सिद्धिके अर्थि छल तौ करै अर इष्टसिद्ध होना भवितव्य आधीन है, बहुरि लोभका उदय होतैं पदार्थनिकौं इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहैं, वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनि-की तृष्णा होय, बहुरि स्त्री-पुत्रादि सचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि आपके वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थके कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकौ तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै या प्रकार लोभ करि इष्ट प्राप्तिकी इच्छा तौ होय अर इष्ट प्राप्ति होना भवितव्य आधीन है"।

१९ वीं शतीके तृतीयपादमें पं० जयचन्द्रने सर्वार्थसिद्धि वचनिका [१८६१], परीक्षामुख वचनिका [१८६३] द्रव्यसंग्रह वचनिका [१८६३], स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा [१८६६], आत्मख्याति समयसार [१८६४], देवागम स्तोत्र वचनिका [१८६६], अष्टपाहुड वचनिका

[१८६७], ज्ञानार्णव टीका [१८६८], भक्तामर चरित्र [१८७०], सामायिक पाठ और चन्द्रप्रभ काव्यके द्वितीय सर्गकी टीका, पत्र-परीक्षा-वचनिका आदि ग्रन्थ रचे। टीकाओंकी भाषा पुरानी ढूँढारी है; फिर भी विषयका स्पष्टीकरण अच्छी तरह हो जाता है। उदाहरणार्थ निम्न गद्यांश उद्धृत है—

"यहाँ कार्यके ग्रहणतैं तो कर्मका तथा अवयवीका अर अनित्यगुण तथा प्रध्वंसाभावका ग्रहण है। बहुरि कारणको कहते हैं, समवायी समवाय तथा प्रध्वंसके निमित्तका ग्रहण है। बहुरि गुणतैं नित्य गुणका ग्रहण है अर गुणी कहते हैं गुणके आश्रयरूप द्रव्यका ग्रहण है। बहुरि सामान्यके ग्रहणतैं पर, अपर जातिरूप समान परिणामका ग्रहण है। 'तथैव, तद्वत्' वचनतैं अर्थरूप विशेषनिका ग्रहण है। ऐसे वैशेषिकमती मानै है जो इन सबके भेद ही है, ये नाना ही हैं, अभेद नाहीं हैं। ऐसा एकान्तकरि मानै है। ताकूँ आचार्य कहैं हैं कि ऐसा माननेतैं दूषण आवै है"।

२० वीं शतीके प्रारम्भमें पं० सदासुखदास, पन्नालाल चौधरी, पं० भागचन्द्र, चंपाराम, जौहरीलाल शाह, फतेहलाल, शिवचन्द्र, शिवजीलाल आदि कई टीकाकार हुए। इन टीकाओंसे जैन हिन्दी साहित्यमें गद्यका प्रचलन तो हुआ, पर गद्यका प्रसार नहीं हो सका।

आधुनिक गद्य साहित्य
[२०वीं शती]

जैन लेखक आरम्भसे ही ऐसे भावोंको, जिनमें जीवनका सत्य, मानव-कल्याणकी प्रेरणा और सौन्दर्यकी अनुभूति निहित है, उपयोगी समझ स्थायी बनानेका यत्न करते आ रहे हैं। मानव भावनाओंकी अभिव्यक्तिका संग्रह नवीन रूपसे इस शताब्दीमें गद्यमें जितना किया गया है उतना पद्यमें नहीं। कारण स्पष्ट है कि आजका मानव तर्क और भावनाके साम-

ज्ञस्यमें ही विकासका मार्ग पाता है, अतः आधुनिक युगमें ऐसा साहित्य ही अधिक उपयोगी हो सकता है, जिसमें बुद्धिपक्षकी तार्किकता भी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान रहे। जीवनकी विवेचना तथा मानवकी विभिन्न समस्याओंका सर्वाङ्गीण और सूक्ष्म ऊहापोह गद्यके माध्यम द्वारा ही संभव है। इस बीसवीं शताब्दीमें विषयके अनुरूप गद्य और पद्यके प्रयोगका क्षेत्र निर्धारित हो चुका है। कथा-वर्णन, यात्रा-वर्णन, भावोंके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, समालोचना, प्राचीन गौरव-विवेचन, तथ्य-निरूपण आदिमें गद्य शैली अधिक सफल हुई है।

इस शताब्दीमें निर्मित जैन गद्य साहित्यके रत्न साहित्य कोषकी किसी भी रत्नराशिसे कम मूल्यवान और चमकीले नहीं हैं। यद्यपि इस शताब्दीके आरम्भमें जैन गद्य साहित्यका श्रीगणेश वचनिकाओं, निबन्ध और समालोचनाओंसे होता है तो भी कथासाहित्य और भावात्मक गद्य साहित्यकी कमी नहीं है। आरम्भके सभी निबन्ध धार्मिक, सांस्कृतिक और खण्डन-मण्डनात्मक ही हुआ करते थे। कुछ लेखकोंने प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें मौलिक स्वतंत्र अनुवाद भी किया है, पर इस अनुवादकी भाषा और शैली भी १८वीं और १९वीं शतीकी भाषा और शैलीसे प्रायः मिलती-जुलती है। पंडित सदासुखने रत्नकरण्डश्रावकाचारका भाष्य और तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य—अर्थ प्रकाशिकाकी रचना इस शतीके आरम्भमें की है। पन्नालाल चौधरीने वसुनन्दि-श्रावकाचार, जिनदत्त चरित्र, तत्त्वार्थसार, यशोधरचरित्र, पाण्डवपुराण, भविष्यदत्तचरित्र आदि ३५ ग्रन्थोंकी वचनिकाएँ लिखी हैं। मुनि आत्मारामने खण्डन-मण्डनात्मक साहित्यका प्रणयन हिन्दी गद्यमें किया है। आपकी भाषामें पंजाबीपना है। पाटन निवासी चम्पारामने गौतमपरीक्षा, वसुनन्दिश्रावकाचार, चर्चासागर आदि की वचनिकाएँ, जौहरीलाल शाहने सन् १९१५ में पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका की वचनिका, जयपुरनिवासी नाथूलाल दोषीने सुकुमालचरित्र, महीपालचरित्र आदि; पूनीवाले पन्नालालने विद्वज्जनबोधक और उत्तरपुराणकी

वचनिकाएँ ; जयपुरनिवासी पारसदासने ज्ञानसूर्योदय और सारचतुर्विंशतिकाकी वचनिकाएँ; मन्नालाल वैनाड़ाने सं० १९१३में प्रद्युम्न चरित्रकी वचनिका; शिवचन्द्रने नीतिवाक्यामृत, प्रश्नोत्तरीश्रावकाचार और तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिकाएँ एवं शिवजीलालने चर्चासंग्रह, बोधसार, दर्शनसार और अध्यात्मतरंगिणी आदि अनेक ग्रन्थोंकी वचनिकाएँ लिखी हैं। यहाँ नमूनेके लिए पंडित सदासुख, शिवजीलाल आदि दो-एक वचनिकाकारोंके गद्यको उद्धृत किया जाता है—

"बहुरि दयादान ऐसा जानना जो बुभुक्षित होय, दरिद्री होय, अन्धा होय, लूला होय, पाँगला होय, रोगी होय, अशक्त होय, वृद्ध होय, बालक होय, विधवा होय, तथा बावरा होय, अनाथ होय, विदेशी होय, अपने यूथतैं संगतैं बिछुड़ि आया होय, तथा बन्दीगृहमें रुक्या होय, वन्ध्या होय, दुष्टनिका आतापतैं भागि आया होय, लुट आया होय, जाका कुटुम्ब मर गया होय, भयवान होय ऐसा पुरुष होहू वा स्त्री होहू तथा बालक होहू वा कन्या तथा तिर्यंच होहू, इनकी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोग तथा वियोगादिकनिकरि दुःखित जानि करुणाभावतैं भोजन वस्त्रादिक दान देना सो करुणा दानमें हू उनका जाति कुल आचरणादिक जानि यथायोग्य दान करना।"

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, सदासुख वचनिका

वचनिकाओंकी भाषापर ढूँढारी भाषाका प्रभाव स्पष्ट रूपसे विद्यमान है। स्वतन्त्र रचनाओंमें मुनि आत्मारामकी रचनाएँ भाषाकी दृष्टिसे अधिक परिमार्जित हैं। यद्यपि इनकी भाषापर राजस्थानी और पंजाबी भाषाका प्रभाव है, तो भी भाषामें भावोंको अभिव्यक्त करनेकी पूर्ण क्षमता है।

"यह जो तुम्हारा कहना है सो प्यारी भार्या, वा मित्र मानेगा, परन्तु प्रेक्षावान् कोई भी नहीं मानेगा; क्योंकि इस तुमारे कहनेमें कोई भी प्रमाण नहीं; परन्तु जिसका उपादान कारण नहीं वो

कार्य कदेभी नहीं हो सक्ता। जैसे गधेका सींग, ऐसा प्रमाण तुमारे कहने कूँ बाँधनेवाला तो है, परन्तु साधनेवाला कोई भी नहीं, जेकर हठ करके स्वकपोल कल्पितही कूँ मानोगे तो परीक्षावालोंकी पंक्तिमें कदेभी नहीं गिने जाओगे"।

—जैनतत्त्वादर्श

जैनगद्य साहित्यका विकास उपन्यास, कथा-कहानी, नाटक, निबन्ध और भावात्मक गद्यके रूपमें इस शताब्दीमें निरन्तर होता जा रहा है। धार्मिक रचनाओंके सिवा कथात्मक साहित्यका प्रणयन भी अनेक लेखकों-ने किया है। प्राचीन कथाओंका हिन्दी गद्यमें अनुवाद तथा प्राचीन कथानकोंसे उपादान लेकर नवीन शैलीमें कथाओंका सृजन भी विपुल परिमाणमें किया गया है। जैन कथा साहित्यके सम्बन्धमें बताया गया है कि—"सभी जैन कहानियाँ धर्मोपदेशका अंग माननी चाहिए। जैन-धर्मोपदेशक धर्मोपदेशके लिए प्रधान माध्यम कहानीको रखता था।[1] इन कहानियोंमें मनुष्यके वर्तमान जीवकी यात्राओंका ही वर्णन नहीं रहता, मनुष्यकी आत्माकी जीवन-कथाका भी वर्णन मिलता है।[2] आत्माको शरीरसे विलग कैसे-कैसे जीवन यापन करना पड़ा, इसका भी विवरण इन कहानियोंमें रहता है। कर्मके सिद्धान्तमें जैसी आस्था और उसकी जैसी व्याख्या जैन कहानियोंमें मिलती है, उतनी दूसरे स्थानपर नहीं मिल सकती। कहानी अपने स्वाभाविक रूपको अक्षुण्ण रखती है, यही कारण है कि जैन कहानियोंमें बौद्ध जातकोंकी अपेक्षा लोकवार्ताका शुद्ध रूप मिलता है। अपने धार्मिक उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए जैन कथा-कार साधारण कहानीकी स्वाभाविक समाप्तिपर एक केवलीको अथवा सम्यग्दृष्टिको उपस्थित कर देता है, वह कहानीमें आये दुःख-सुखकी

१. देखिये—'हर्टल'का निबन्ध, 'आन दि लिटरेचर ऑव दि श्वेताम्बराज ऑव गुजरात'।

२. ए. एन. उपाध्ये, बृहत्कथाकोषकी भूमिका।

व्याख्या उनके पिछले जन्मके किसी कर्मके सहारे कर देता है। इसी विधानके कारण जैन कहानियोंका जातकोंसे मौलिक अन्तर हो जाता है। यद्यपि रूप-रेखामें ये कहानियाँ भी बौद्ध कहानियोंके समान हैं, तो भी मौलिक अन्तर यह हो जाता है कि जैन कहानियाँ वर्तमानको प्रमुखता देती हैं। भूतकालको वर्तमानके दुःख-सुखकी व्याख्या करने और कारण निर्देशके लिए ही लाया जाता है। बौद्ध जातकोंमें वर्तमान गौण है, भूतकाल—पूर्वजन्मकी कहानी प्रमुख होती है। जैन कहानियोंके इसी स्वभावके कारण उनमें कहानीके अन्दर कहानी मिलती है, जिसमें कहानी जटिल हो जाती है। हिन्दीमें जैन कहानियाँ लिखी गयीं हैं, किन्तु वे प्रकाशमें नहीं आ सकी हैं।"[1]

जैनकथा साहित्यकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पहले कथा मिलती है, पश्चात् धार्मिक या नैतिक ज्ञान; जैसे अंगूर खानेवालेको प्रथम रस और स्वाद मिलता है, पश्चात् बल—वीर्य। जो उपन्यास या कहानी विचार-बोझिल और नीरस होती है तथा जहाँ कथाकार पहले उपदेशक बन जाता है, वहाँ कलाकारको कथा कहनेमें कभी सफलता नहीं मिल सकती। जैन कहानियोंमें कथावस्तु सर्वप्रथम रहती है, पश्चात् धर्मोपदेश या नीति। इनमें समाज विकास और लोकप्रवृत्तिकी गहरी छाप विद्यमान है। वस्तुतः जैन कथाएँ नीतिबोधक, मर्मस्पर्शी और आजके युगके लिए नितान्त उपयोगी हैं। इनमें व्यापक लोकानुरंजन और लोकमंगलकी क्षमता है।

उपन्यास

इस शताब्दीमें कई जैन लेखकोंने पुरातन जैन कथानकोंको लेकर सरस और रमणीय उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासोंमें जनताकी आध्यात्मिक आवश्यकताओंका निरूपणकर उसके भावजगत्के धरातलको

---

१. ब्रजलोक साहित्यका अध्ययन।

ऊँचा उठानेका पूरा प्रयास विद्यमान है। वर्तमानमें जनताका जितना आर्थिक शोषण किया जा रहा है, उससे कहीं अधिक आध्यात्मिक शोषण। समाज निर्माणमें आर्थिक शोषण उतना बाधक नहीं, जितना आध्यात्मिक शोषण। आर्थिक शोषणसे समाजमें गरीबी उत्पन्न होती है, और गरीबीसे अशिक्षा, भावात्मक शून्यता, अस्वास्थ्य आदि दोष उत्पन्न होते हैं। परन्तु आध्यात्मिक ह्रास होनेसे जनताका भाव-जगत् ऊसर हो जाता है, जिससे उच्च सुखमय जीवनकी अभिलाषापर शंका और सन्देहोंका तुषारापात हुए बिना नहीं रह सकता। आत्मविश्वास और नैतिक बलके नष्ट हो जानेसे जीवन मरुस्थल बन जाता है और हृदयकी आकांक्षाओंकी सरिता, जिसमें उज्ज्वल भविष्यका श्वेत चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना डालता है, शुष्क पड़ जाती है। आत्मविश्वासके चले जानेपर जीवन उद्भ्रान्त और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है और जीवनमें आन्तरिक विशृंखलता भीतर प्रविष्ट हो जीवनको अस्त-व्यस्त बना देती है। जैन उपन्यासोंमें कथाके माध्यमसे इस आध्यात्मिक भूखको मिटानेका पूरा प्रयत्न किया गया है।

आत्मविश्वास किस प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है? नैतिक या आत्मिक उत्थान, जो कि जीवनको विषम परिस्थितियोंसे धक्का लगाकर आगे बढ़ाता है, की जीवनमें कितने परिमाणमें आवश्यकता है? यह जैन उपन्यासोंसे स्पष्ट है। जीवनकी विडम्बनाओंको दूरकर आध्यात्मिक क्षुधाको शान्त करना जैन उपन्यासोंका प्रधान लक्ष्य है।

जीवन और जगत्के व्यापक सम्बन्धोंकी समीक्षा जैन उपन्यासोंमें मार्मिक रूपसे की गयी है। कथानक इतना रोचक है कि पाठक वास्तविक संसारके असन्तोष और हाहाकारको भूलकर कल्पित संसारमें ही विचरण नहीं करता, किन्तु अपने जीवनके साथ नानाप्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगता है। ये क्रीड़ाएँ अनुभूतियोंके भेदसे कई प्रकारकी होती हैं। आशा, आकांक्षा, प्रेम, घृणा, करुणा, नैराश्य आदिका जितना सफल चित्रण जैन उपन्यासकारोंने किया, उतना अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा।

जैन उपन्यासोंकी सुगठित कथावस्तुमें घटनाएँ एक दूसरेसे इस प्रकार सम्बद्ध हैं, कि साधारणतः उन्हें अलग नहीं किया जा सकता और सभी अन्तिम परिणाम या उपसंहारकी ओर अग्रसर होती हैं। कथावस्तुके भिन्न-भिन्न अवयव इतने सुगठित हैं, जिससे इन उपन्यासोंकी रचना एक व्यापक विधानके अनुसार मानी जा सकती है। प्रवाह इतना स्वाभाविक है, जिससे कृत्रिमताका कहीं नाम-निशान भी नहीं है।

कथावस्तुके सुगठनके सिवा चरित्र-चित्रण भी जैन उपन्यासोंमें विश्लेषात्मक [एनेलिटिक] और कार्यकारण सापेक्ष या नाटकीय [ड्रामेटिक] दोनों ही रीतियोंसे किया गया है। चरित्र-चित्रणकी सबसे उत्कृष्ट कला यह है कि अपने पात्रोंको प्राणशक्तिसे सम्पन्नकर उन्हें जीवनकी रंगस्थलीमें सुख-दुःखसे आँखमिचौनी करनेको छोड़ दे। जीवनके घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष एवं हर्ष-विषाद लेखक-द्वारा बिना टीका-टिप्पण किये पात्रोंके चरित्रसे स्वतः व्यक्त हो जानेमें उपन्यासकी सफलता है। अधिकांश जैन लेखकोंके उपन्यास मानव चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे खरे उतरते हैं। जिज्ञासा और कौतूहलवृत्तिको शान्त करनेकी क्षमता भी जैन उपन्यासोंमें है।

कथोपकथन वास्तविक जीवनकी अनुरूपताके अनुसार है। जैन उपन्यासोंमें पात्रोंकी बात-चीत स्वाभाविक तथा प्रसंगानुकूल है। निरर्थक कथोपकथनोंका अभाव है। आदर्श कथोपकथन पात्रोंके भावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों और घटनाओंकी प्रभावान्वितिके साथ कार्य-प्रवाहको आगे बढ़ाता है। परिस्थितियोंके अनुसार पात्रोंके वार्तालापमें परिवर्तन कराकर सिद्धान्तों, आचार-व्यवहारोंका दिग्दर्शन भी कराया गया है।

जैन उपन्यासोंके आधार पुरातन कथानक हैं, जिनमें नर-नारी, उनके सांसारिक नाते-रिश्ते, उनके राग-द्वेष, क्रोध-करुणा, सुख-दुःख, जीवन-संघर्ष एवं उनकी जय-पराजयका निरूपण किया गया है। नैतिक तथ्य या आदर्शका निरूपण जैन उपन्यासोंमें प्रधानरूपसे विद्यमान है। जीवन-

का निरीक्षण, मनन, मानवकी प्रवृत्ति और मनोवेगोंकी सूक्ष्म परख, अनुभूत सत्यों और समस्याओंका सुन्दर समाहार इन उपन्यासोंमें अत्यल्प है। दुराचारके ऊपर सदाचारकी विजय जिस कौशलके साथ दिखलाई गई है, वह पाठकके हृदयमें नैतिक आदर्श उत्पन्न करनेमें पूर्ण समर्थ है।

यद्यपि जैन उपन्यास अभी भी शैशव अवस्थामें हैं; अनन्त हृदय-स्पर्शी मार्मिक कथाओंके रहते हुए भी इस ओर जैन लेखकोंने ध्यान नहीं दिया है; तो भी जीवनके सत्य और आनन्दकी अभिव्यञ्जना करने वाले कई उपन्यास हैं। जैन लेखकोंको अभी अपार कथासागरका मन्थन कर रत्न निकालनेका प्रयत्न करना शेष है। नीचे कुछ उपन्यासोंकी समीक्षा दी जाती है—

मनोवती

यह श्रीजैनेन्द्रकिशोर[1] आरा-द्वारा लिखित एक छोटा-सा उपन्यास है। आज हिन्दी साहित्यका अंक नित्य नये-नये उपन्यासोंसे भरता जा रहा है, इस कारण आधुनिक औपन्यासिककलाका स्तर पहले की अपेक्षा उन्नत है; पर 'मनोवती' उस कालका उपन्यास है, जब हिन्दी साहित्यमें उपन्यासोंका जन्म हो रहा था, इसी कारण इसमें आधुनिक औपन्यासिक तत्त्वोंका प्रायः अभाव है।

कथावस्तु

महारथ नामके एक सेठ हस्तिनापुरमें रहते थे। वह सौभाग्यशाली लक्ष्मीपुत्र थे, उनकी एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ मनोवती नामकी कन्या थी। वयस्क होनेपर पिताने उसकी शादी जौहरी हेमदत्तके पुत्र बुद्धिसेनसे कर दी, जो वल्लभपुर-निवासी थे। मनोवतीने गुरुसे नियम लिया था कि वह प्रतिदिन गजमुक्ताका पुंज भगवान्के सामने चढ़ाकर भोजन करेगी। ससुरालमें जाकर भी उसने अपने नियमानुसार मन्दिरमें गजमुक्ता चढ़ाकर ही भोजन ग्रहण किया। प्रातःकाल नगरकी मालिनने जब गजमोती देखे, तो बहुत प्रसन्न हुई और पुरस्कार पानेके लोभसे वल्लभपुर-नरेशकी

---

१. १४ मई सन् १९०९में आपकी मृत्यु हो गई।

छोटी रानीके पास मालामें गूँथ कर ले गयी। मालिनके इस व्यवहारसे बड़ी रानी रूठ गयी। नरेशने उन्हें गजमोतियोंका हार ला देनेका आश्वासन देकर मनाया। दूसरे दिन प्रातःकाल नगरके जौहरियोंको बुलाकर उन्होंने गजमोती लानेका आदेश दिया। लालचवश सभी जौहरियोंने गज-मुक्ता लानेमें असमर्थता प्रकट की। जौहरी हेमदत्तने राजसभामें तो गज-मुक्ता लानेसे इन्कार कर दिया, पर घर आकर सोचने लगा कि जब मेरे पुत्र बुद्धिसेनकी बहू घरमें आयेगी, तो सभी भेद खुल जायगा। राजा मेरी सारी सम्पत्ति लुटवा लेगा और मैं दरिद्री बन खाक छानूँगा। अतएव अपने छः पुत्रोंसे परामर्शकर वधू घरमें न आ सके, इसलिए बुद्धिसेनको निर्वासित कर दिया।

विवश बुद्धिसेन घरसे निकलकर अपने श्वशुरालय हस्तिनापुर आया और पत्नीके अनुरोधसे दोनों दम्पति सम्पत्ति अर्जन करनेकी इच्छासे निस्तब्ध रात्रिमें चुप-चाप घरसे निकल गये। धर्मपरायण पत्नीकी सहायता से बुद्धिसेनने रत्नपुर पहुँचकर वहाँके राजाको प्रसन्न किया। रत्नपुरके राजाने प्रसन्न होकर अपनी पुत्रीका विवाह बुद्धिसेनसे कर दिया और अपार सम्पत्ति दहेजमें दी। अपनी दोनों पत्नियोंके साथ सुखपूर्वक रहते हुए बुद्धिसेनने कई वर्ष व्यतीत किये। एक दिन धर्मनिष्ठ मनोवतीने बुद्धिसेन-को संसारकी दशासे परिचित किया और एक जिनालय निर्माण करनेकी प्रेरणा की। पत्नीकी प्रेरणा पाकर बुद्धिसेनने लगभग एक करोड़ रुपये खर्चकर एक भव्य मन्दिर बनवाया। इस समय बुद्धिसेनका व्यापार बहुत उन्नतिपर था, कई अरब रुपये उसके पास एकत्रित थे।

बुद्धिसेनके माता-पिता और भाई-भाभियों, जिन्होंने बुद्धिसेनको घरसे निकाल दिया था; जिनदेवके अपमानके कारण निर्धनी होकर आजी-विकाके लिए इधर-उधर भटकने लगे। सौभाग्य या दुर्भाग्यसे वे चौदह प्राणी बुद्धिसेनके भव्य मन्दिरमें काम करनेवाले मजदूरोंके साथ कार्य करने लगे। क्रोधावेशमें बुद्धिसेनने पहले तो उनसे मजदूरी करायी; किन्तु

कुछ दिनों बाद मनोवतीके कहनेसे उनका सम्मान किया। इसी बीच वल्लभपुर-नरेश द्वारा निमन्त्रित होनेपर सभी वहाँ चले गये।

यही इस उपन्यासकी कथावस्तु है। कथावस्तु पौराणिक होनेके कारण कोई नवीनता इसमें नहीं है। नारी-सौन्दर्य और सम्पत्तिका निरूपण प्राचीन प्रणालीपर हुआ है। कथानकमें लौकिक प्रेमके दिग्दर्शनके साथ अलौकिकताका भी समन्वय किया गया है, यही इसकी विशेषता है।

इस उपन्यासके प्रधानपात्र हैं—मनोवती और बुद्धिसेन। अन्य सब पात्र गौण हैं। मनोवती स्वयं इस उपन्यासकी नायिका है। इसका चित्रण

पात्र

एक आदर्श भारतीय ललनाके रूपमें हुआ है। धर्म और आदर्शमें इसकी अनन्य श्रद्धा है। अपनी प्रखर प्रतिभाके कारण यह आठ महीनेमें ही शिक्षामें पारंगत हो जाती है। इसकी धर्मपरायणताका ज्वलन्त उदाहरण तो हमें तब मिलता है, जब वह तीन दिन सतत उपवास करती रह जाती है, पर बिना गजमुक्ता चढ़ाये भोजन नहीं करती। नारी-सुलभ सहज संकोचकी भावना उसमें व्याप्त है। भारतीयता और पातिव्रतसे ओत-प्रोत यह नारी दुःखमें भी पतिका साथ नहीं छोड़ती। पति दूसरी शादी कर लेता है, पर पतिके सुखका ख्यालकर वह तनिक भी बुरा नहीं मानती। जैनधर्ममें अटल विश्वास रखते हुए वह सदा पतिको सद्‌गुणोंकी ओर प्रेरित करती है। लेखक मनोवतीके चरित्र-चित्रणमें बहुत अंशोंमें सफल हुआ है। मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातोंका विश्लेषण भी कर सका है।

बुद्धिसेनको इस उपन्यासका नायक कहा जा सकता है, किन्तु लेखक इसके चरित्र-विश्लेषणमें सफल नहीं हुआ है। आरम्भमें बुद्धिसेन सदाचारीके रूपमें आता है, पर पीछे "ममता पाइ काहि मद नाहीं" कहावतके अनुसार धन-मदके कारण वह क्रूर और कृतघ्नी हो जाता है। अपनी पहली पत्नी मनोवतीके उपकारोंको विस्मृत कर दूसरी शादी कर लेता है और अपने माता-पिता तथा बन्धुओंको अपार कष्ट देता है। एक

सदाचारी व्यक्तिका इस प्रकारका परिवर्तन क्रमशः होना चाहिये था, पर लेखकने इस परिवर्तनको त्वरित वेगसे दिखलाया है; जिससे कुछ अस्वाभाविकता आ गई है।

मनोवतीके चरित्र-विश्लेषणके समक्ष अन्य पात्रोंके चरित्र बिल्कुल दब गये हैं, जिससे औपन्यासिकताके विकासमें बाधा पहुँची है।

इस उपन्यासकी शैलीमें प्रभावोत्पादकताका अभाव है। मनोभावोंकी अभिव्यञ्जना करनेके लिए जिस सजीव और प्रवाहपूर्ण भाषाकी आवश्यकता होती है, उसका इसमें प्रयोग नहीं किया गया है। हाँ, कथोपकथनसे पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें तथा कथाके विकासमें पर्याप्त सहायता मिली है। जब महारथ अपनी पुत्री मनोवतीसे कहता है कि—"इस नियमका कदाचित् निर्वाह न हो; क्योंकि जबतक तू हमारे घरमें है, तबतक तो सब कुछ हो सकता है; परन्तु ससुराल जानेपर भारी अड़चन पड़ेगी।" उस समय निस्संकोच और निर्भीकता पूर्वक उत्तर देती है। पिताका इस प्रकार पुत्रीसे कहना और पुत्रीका संकोच न करना खटकता-सा है। अन्य स्थलोंमें कथोपकथन मर्यादायुक्त और स्वाभाविक हैं।

शैली और कथोपकथन

भाषा चलती-फिरती है। अनेक स्थलोंपर लिंगदोष भी विद्यमान है। जहाँ एक ओर तड़की, सुनहरी, चौघरे, जोति, खटा-पटास, दिखौआ आदि देशी शब्द पर्याप्त मात्रामें पाये जाते हैं, वहाँ दूसरी ओर अफताब, महताब, मुराद, फसाद, कर्तूत, खातिरदारी, हासिल, हताश आदि अरबी-फारसीके शब्दोंकी भी भरमार है। आरा निवासी होनेके कारण भोजपुरी का प्रभाव भी भाषापर है। फिर भी बोल-चालकी भाषा होनेके कारण शैलीमें सरलता आ गई है।

यद्यपि औपन्यासिक तत्त्वोंकी कसौटीपर यह खरा नहीं उतरता है, पर प्रयोगकालीन रचना होनेके कारण इसका महत्त्व है। हिन्दी उपन्यासों

की गति-विधिको अवगत करनेके लिए इसका महत्त्व 'चन्द्रकान्ता सन्तति' से कम नहीं है।

कमलिनी, सत्यवती, सुकुमाल, मनोरमा और शरतकुमारी ये पाँच उपन्यास श्री जैनेन्द्रकिशोरने और भी लिखे हैं ; पर ये उपलब्ध नहीं हैं। इन सभी उपन्यासोंमें धार्मिक और सदाचारकी महत्ता दिखलायी गयी है। प्रयोगकालीन रचनाएँ होनेसे कलाका पूरा विकास नहीं हो सका है।

इस उपन्यासके रचयिता मुनि श्री तिलकविजय हैं। आपका आध्यात्मिक क्षेत्रमें अपूर्व स्थान है। धर्मनिष्ठ होनेके कारण आपके

रत्नेन्दु

हृदयमें धर्मानुरागकी सरिता निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसी सरिणीमें प्रस्फुटित श्रद्धा, विनय, उपकारवृत्ति, धैर्य, क्षमता आदि गुणोंसे युक्त कमल अपनी भीनी-भीनी सुगन्धसे जन-जनके मनको आकृष्ट करते हैं। उपन्यासके क्षेत्रमें भी इनकी मस्त गन्ध पृथक् नहीं। वास्तवमें अध्यात्म विषयका शिक्षण उपन्यास-द्वारा सरस रूपमें दिया गया है। कडुवी कुनैनपर चीनीकी चासनीका परत लगा दिया गया है। इस उपन्यासमें औपन्यासिक तत्त्वोंकी प्रचुरता है। पाठक आदर्शकी नींवपर यथार्थका प्रासाद निर्मित करनेकी प्रेरणा ग्रहण करता है।

आजके युगमें उपन्यासकी सबसे बड़ी सफलता टेकनिकमें है। इस उपन्यासमें टेकनिकका निर्वाह अच्छी तरह किया गया है। आरम्भमें ही हम देखते हैं कि बीस-पचीस घुड़सवार चले जा रहे हैं, उनमें एक धीर-वीर रणधीर व्यक्ति है। उसके स्वभावादिसे परिचित होनेके साथ-साथ हमारा मन उससे वार्तालाप करनेको चल उठता है। इस युवककी, जिसका नाम रत्नेन्दु है, तत्परता जंगलमें शिकार खेलनेके समय प्रकट हो जाती है। उसके धैर्य और कार्यक्षमता पाठकोंको उमंग और स्फूर्ति प्रदान करते हैं। रत्नेन्दुकी वीरताका वर्णन उसके बिछुड़े साथी [illegible]-द्वारा कितने सुन्दर ढंगसे हुआ है—

"नहीं नहीं, यह बात कभी नहीं हो सकती, आपके विचारोंको हमारे हृदयमें बिल्कुल अवकाश नहीं मिल सकता। वे किसी हिंस्र जानवरके पंजेमें आ जायँ, यह बात सर्वथा असम्भव है। क्योंकि मुझे उनकी वीरता और कला-कुशलताका भली-भाँति परिचय है।"

इस प्रकार दो परिच्छेद समाप्त होनेतक पाठकोंकी जिज्ञासा वृत्ति ज्योंकी त्यों बनी रहती है। रत्नेन्दुका नाम पा जिज्ञासा कुछ शान्त होना चाहती है कि एक करुणक्रन्दन चौंका देता है। पाठक या श्रोताकी श्रोत्रेन्द्रियके साथ समस्त इन्द्रियाँ उधर दौड़ जाती हैं और अपनेको उस रहस्यमें खो पद्मनिका नाम पा आनन्दविभोर हो जाती हैं। रत्नेन्दु इस भीषण और हृदय-द्रावक स्वरमें अपना नाम सुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है, और थोड़ी ही देरमें स्वस्थ हो कष्टनिवारणार्थ उधरको ही चला जाता है। रत्नेदु अपनी तलवारसे कपालीके खूनी पंजेसे बालिकाको मुक्त करता है।

पद्मनि एक सघनवृक्षकी शीतल छायामें पहुँचकर अपना दुःख निवेदन करती है। नारीकी श्रद्धा, निष्कपटता, त्याग एवं सतीत्वका परिचय पद्मनिके वचनोंसे सहजमें मिल जाता है। पद्मलोचन सती है, महासती है, उसमें लज्जा है, स्नेह है, ममता है, मृदुता है और है कठोरता अधर्मके प्रति, अविद्याके फन्देमें पड़नेपर भी सचेष्ट रहती है। वह अग्निकी ज्वलन्त लपटों से प्यार करनेको तत्पर है, किन्तु अपने शीलको अक्षुण्ण बनाये रखना चाहती है। रत्नेन्दुके लिए वह आत्मसमर्पण पहले ही कर चुकी थी; अतः श्रद्धाविभोर हो वह कहती है—"ज्योतिषीने कहा, कुछ ही समय बाद रत्नेन्दु चन्द्रपुरकी गद्दीका मालिक होगा। वह रूप-लावण्यसे आपकी कन्याके योग्य वही वर है। उसी समयसे मैं उसे अपना सर्वस्व समझ बैठी और इस असाध्य संकटमें उनका नाम स्मरण किया। मैंने प्रतिज्ञा की है कि रत्नेन्दुके साथ विवाह करूँगी, अन्यथा आजन्म ब्रह्मचारिणी रहूँगी।"

इस मिलनके पश्चात् पुनः वियोग आरम्भ होता है। कपालीका पुत्र

पद्मनिका अपहरण करता है। सौभाग्यसे तपस्वियों-द्वारा उसका परित्राण होता है और वह अपने पिताके पास चली आती है। रत्नेन्दु उसे प्राप्त करनेके लिए भ्रमण करता है। इसी भ्रमणमें उसकी एक धर्मात्मा वृद्ध श्रावकसे भेंट होती है, जो अपने जीवनको मानवसे देव बनानेका इच्छुक है। उसकी अभिलाषा वनखंडके देवालयोंमें स्थित रत्नेन्दुसे टकराती है। रत्नेन्दु उस मरणासन्न श्रावकको णमोकार मन्त्र सुनाता है। मन्त्रके प्रभावसे श्रावक उत्तमगति पाता है।

रत्नेन्दु किसी कारणवश चम्पा नगरमें जाता है और वहींपर विधि-पूर्वक पद्मनिके साथ उसका पाणिग्रहण हो जाता है। कुछ दिनों तक वहाँ रहनेके उपरान्त माता-पिताकी याद आ जानेसे वह अपने देश लौट आता है और राज सम्पदाका उपभोग करने लगता है। इसी बीच सर्प विषसे आक्रान्त होकर रत्नेन्दु मूर्छित हो जाता है; पर श्मशानमें पूर्वोक्त श्रावक, जो कि देवगतिको प्राप्त हो गया था, आकर उसका विष हरण कर जीवन प्रदान करता है।

वसन्त ऋतुमें रत्नेन्दु ससैन्य उपवनमें विहार करने जाता है और लहलहाते हुए वृक्षको एकाएक सूखा देखकर संसारकी क्षणभंगुरता सोचने लगता है। उसका विवेक जाग्रत हो जाता है और चल पड़ता है आत्म-सिद्धिके लिए। थोड़ी ही देरमें रत्नेन्दु पाठकोंके समक्ष संन्यासीके भेषमें उपस्थित होता है और आत्मसाधनामें रत रहकर अपना कल्याण करता है।

यह उपन्यास जीवनके तथ्यकी अभिव्यञ्जना करता है। घटनाओंकी प्रधानता है। लेखकने पात्रोंके चरित्रके भीतर बैठकर झांका है, जिससे चरित्र मूर्तिमान हो उठे हैं। भाषा विषय, भाव, विचार, पात्र और परिस्थितिके अनुकूल परिवर्तित होती गयी है। यद्यपि भाषासम्बन्धी अनेक भूलें इसमें रह गयी हैं, तो भी भाषाका प्रवाह अक्षुण्ण है।

यह एक धार्मिक उपन्यास है[1]। इसके लेखक स्वनामधन्य पंडित गोपालदास वरैया हैं। कुशल कलाकारने इस उपन्यासमें धार्मिक सिद्धान्तों-

सुशीला

की व्यंजनाके लिए काल्पनिक चित्रोंको इतनी मधुरता और मनोमुग्धतासे खींचा है, जिससे पाठक गुणस्थान जैसे कठिन विषयोंको कथाके माध्यमद्वारा सहजमें अवगत कर लेता है।

इसका कथानक अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। घटनाएँ शृंखलाबद्ध नहीं हैं, किन्तु घटनाओंका आरम्भ और अन्त ऐसे कलापूर्ण ढंगसे होता है, जिससे पाठककी उत्सुकता बढ़ती जाती है। अन्तमें जीवन-के आरम्भ और अन्तकी शृंखला स्पष्ट हो जाती है, कलाका प्रारम्भ जीवनके मध्यकी आकर्षक घटनासे होता है।

विजयपुरके महाराज श्रीचन्द्रके सुपुत्र जयदेवकी योग्यतासे प्रसन्न होकर महाराज विक्रमसिंह अपनी रूपगुणयुक्ता सुशीला कन्याका पाणि-

कथावस्तु

ग्रहण उससे कर देते हैं। सुशीलाकी रूपसुधापर मँड़रानेवाला पापी उदयसिंह यह सहन न कर सका। कामोत्तेजित होकर उनके विनाशका षड्यन्त्र रचने लगा।

विवाहानन्तर दोनों विदा हुए। मार्गमें उदयसिंहने छुकछिपकर साथ पकड़ लिया, सामुद्रिक मार्गसे जानेकी सलाह हुई। सामुद्रिक वायुके शीतल झोंकेसे निद्रा आने लगी। उदयसिंह और बलवन्तसिंह दोनों क्रूर मित्रोंने मल्लाहसे खूब घुलमिलकर बातें कीं और धोखा देकर बीचमें ही नौका डुबा दी गयी। नावमें जयदेवका परममित्र भूपसिंह और सुशीलाकी दो-चार सखियाँ भी थीं।

अब क्या ? जयदेव एक तख्तेके सहारे डूबते-उतराते किनारे लगा। धीरे-धीरे कंचनपुर पहुँचा। उसकी दयनीय दशा देख रत्नचन्द्र नामक एक प्रसिद्ध जौहरीने आश्रय दिया। जयदेव रत्नपरीक्षामें निपुण था,

१. प्रकाशक, दि० जैन पुस्तकालय, सूरत।

अतएव रत्नचन्द्र उससे अत्यन्त प्रसन्न रहता था। रत्नचन्द्रकी पत्नी रामकुँवरि और पुत्र हीरालाल दोनों विषयासक्त और दुराचारी थे। रामकुँवरिने जयदेवको फँसानेके लिए नाना प्रकारसे मायाजाल फैलाया, पर सब व्यर्थ रहा। जयदेव सरल और सत्पुरुष था, अतएव पापसे भयभीत रहता था। रत्नचन्द्र एक दिन कार्यवश खेटपुर गया। पत्नीके चरित्रपर सन्देह होनेके कारण मार्गमेंसे ही लौट आया और आधी रात घर पहुँचा। यहाँ आकार रामकुँवरि और हीरालालके कुकृत्यको देखकर क्रोधसे उसकी आँखें आरक्त हो गईं; इच्छा हुई कि पापीको उचित सजा दी जाय, किन्तु तत्क्षण ही उसे विराग हो गया, वह कुछ न बोला। धीर गम्भीर रत्नचंद उदासीन हो चल पड़ा मुक्तिके पथपर।

प्रातःकाल जयदेव यह सब देख अवाक् रह गया। रत्नचन्दका लिखा पत्र प्राप्त हुआ, उसे पढ़कर उसके मुखसे निकला "हा! रत्नचन्द हमेशा के लिए चला गया।" कुछ दिनोंतक वह घरका भार सिमेटे रहा, किन्तु रामकुँवरि और हीरालालके दुश्चरित्रसे ऊबकर वह सम्पत्तिका भार एक विश्वासी व्यक्तिपर छोड़ अज्ञात दिशाकी ओर चल दिया।

इधर कुमारी सुशीलाकी बुरी दशा थी। वह सूर्यपुराके उद्यानके एक बंगलेमें मूर्छित पड़ी थी। उदयसिंहने उसे यहाँ छुपा दिया था। क्रूर उदयसिंहने सतीपर हाथ उठाना चाहा, किन्तु सुशीलाकी रौद्रमूर्ति और अद्भुत साहसको देखकर हक्का-बक्का रह गया। रेवती उसकी प्यारी सखी थी; उसने सुशीलाको मुक्त करनेके लिए नाना षड्यन्त्र किये पर सुशीलाका पता न चला।

जयदेव जब कंचनपुरसे लौट रहा था कि रास्तेमें भूपसिंहसे मुलाकात हो गयी। दोनों सुशीलाका पता लगानेके लिए व्यग्र थे। उदयसिंहकी ओरसे दोनोंको आशंका थी। भूपसिंहने झट पता लगा लिया कि उदयसिंहके बागके एक बंगलेमें सुशीला एकान्तवास कर रही है। मालिनके वेषमें जयदेव उसके निकट पहुँचा और दोनोंका परस्पर मिलन हो गया।

जयदेव, सुशीला और भूपसिंह पुनः विजयपुरकी तरफ रवाना हुए। चतुर्दिशामें आनन्द छा गया, दुःखी माता-पिताको सान्त्वना मिली।

हीरालालकी पत्नी सुभद्रा पतिभक्ता और सुशील थी, पर दुष्ट हीरालालने उसका यथोचित सम्मान नहीं किया। हीरालाल और रामकुँवरिकी बुरी दशा हुई, उनका काला मुख करके शहरमें घुमाया गया। सुभद्राका पुत्र सम्पत्तिका स्वामी बना।

विरागी रत्नचन्द्र दीक्षित होकर विमलकीर्त्ति मुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। अन्तमें श्रीचन्द्र, विक्रमसिंह और भूपसिंहके पिता रणवीरसिंहको भी वैराग्य हो गया। महारानी मदनवेगा और विद्यावती भी आर्यिका हो गयीं।

पात्र

इस उपन्यासमें पात्रोंकी संख्या अत्यधिक है; पर पुरुषपात्रोंमें जयदेव, रत्नचन्द्र, हीरालाल, भूपसिंह, उदयसिंह आदि और नारी-पात्रोंमें सुशीला, रामकुँवरि, सुभद्रा और रेवती प्रधान हैं। इन पात्रोंके चरित्र-विश्लेपणपर ही कथा स्तम्भ खड़ा किया गया है।

जयदेव उच्चकुलीन राजपुत्र है। विपत्तिमें सुमेरुके समान दृढ़ और सहनशील है। उत्तरदायित्वको निभानेमें दृढ़, निष्कपट और ब्रह्मचारी है। पत्नीके प्रति अनुरक्त है; जी-तोड़ श्रम करनेसे विमुख नहीं होता है।

रत्नचन्द्र अपने नगरका प्रसिद्ध जौहरी है। न्याय और कर्त्तव्यपरायण होनेसे ही नगरमें उसका अपूर्व सम्मान है। मनुष्य परखनेकी कलामें भी यह उतना ही कुशल है, जितना रत्न परखनेकी कलामें। आदर्श और सदाचारको यह जीवनके लिए आवश्यक तत्त्व मानता है। जब दुश्चरित्रका साक्षात्कार उसे हो जाता है, वह विरक्त हो दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

हीरालाल व्यसनी, व्यभिचारी और क्रूर प्रकृतिका है। अपनी सौतेली माँके साथ दुष्कर्म करते हुए इसे किसी भी तरहकी हिचकिचाहट

नहीं। पाप-पुण्यका महत्त्व इसकी दृष्टिमें नगण्य है। विचार और विवेकसे इसे छूआ-छूत नहीं है।

उदयसिंह एक साहूकारका पुत्र है, किन्तु वासनाने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। यह बलात्कारको बुरा नहीं मानता। लेखकने इन सभी पुरुष पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें औपन्यासिक कलाकी उपेक्षा उपदेशक या धर्म-शास्त्रज्ञ होनेका ही परिचय दिया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे किसी भी पात्रका चरित्र चित्रित नहीं हुआ है।

स्त्रीपात्रोंके चरित्रमें एक ओर सुशीला जैसी आदर्श रमणीका चारित्रिक विकास अंकित किया गया है, तो दूसरी ओर रामकुँअरि जैसी दुराचारिणी नारीका चरित्र। दोनों ही चरित्रोंका विश्लेषण यथार्थ रूपसे किया गया है तथा पाठकोंके समक्ष जीवनके दोनों ही पक्ष उपस्थित किये हैं।

यह उपन्यास एक ओर आदर्श जीवनकी झाँकी देकर नैतिक उत्थान का मार्ग प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर कुत्सित जीवनका नंगा चित्र खींचकर कुपथगामी होनेसे रोकनेकी शिक्षा देता है। सदाचारके प्रति आकर्षण और दुराचारके प्रति गर्हण उत्पन्न करनेमें यह रचना समर्थ है ; कलाकी दृष्टिसे भी यह उपन्यास सफल है। इसमें भावनाएँ सरस, स्वाभाविक और हृदयपर चोट करनेवाली हैं। कथाका प्रवाह पाठकके उत्साह और अभिलाषाको द्विगुणित करता है। समस्त जीवनके व्यापार शृंखलाबद्ध और चरित्र-निर्माणके अनुकूल हैं। सबसे बड़ी विशेषता इस उपन्यासकी यह है कि इसका कलेवर व्यर्थके हाव-भावोंसे नहीं भरा गया है; किन्तु जीवनके अन्तर्बाह्य पक्षोंका उद्घाटन बड़ी ख़ूबीसे किया गया है।

धार्मिक शिक्षाओंका बाहुल्य होनेपर भी कथाकी समरसतामें विरोध नहीं आने पाया है। आरम्भसे अन्ततक उत्सुकता गुण विद्यमान है। हाँ, धार्मिक सिद्धान्त रसानुभूतियोंमें बाधक अवश्य हैं।

इसकी शैली प्रौढ़ है। काव्यका सौन्दर्य झलकता है तथा भावनाओं-को घटनाओंके साथ साकार रूपमें दिखलाया गया है। प्राकृतिक चित्रणों द्वारा कहीं-कहीं भावोंको साकार बनानेकी अद्भुत चेष्टा की गयी है। इसमें अलंकारोंका आकर्षक प्रयोग, चित्रमय वर्णन, अभिनयात्मक कथोपकथन विद्यमान है जिससे प्रत्येक पाठकका पूरा अनुरंजन करता है। भाषा विशुद्ध और परिमार्जित है, मुहावरे और सूक्तियोंके प्रयोगने भाषाको और भी जीवट बना दिया है।

[1]मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम० ए०का यह श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें कुतूहलवृत्ति और रमणवृत्ति दोनोंकी परितुष्टिके लिए घटना-चमत्कार और भावानुभूतिका सुन्दर समन्वय किया गया है। इसमें पवनंजयके आत्मविकास और आत्मसिद्धिकी कथा है। 'अहं'के अन्धकारागारसे पुरुषको नारीने अपने त्याग, बलिदान, वात्सल्य और आत्मसमर्पणके प्रकाश-द्वारा मुक्त किया है।

कथानक

मुक्तिदूतका कथानक पौराणिक है। कुमार पवनंजय आदित्यपुरके महाराज प्रह्लादके एकमात्र पुत्र हैं। एक बार माता-पितासहित पवनंजय कैलाशकी यात्रासे लौटकर मार्गमें मानसरोवरके तट-पर ठहर गये। एक दिन मानसरोवरकी अपार जल-राशिमें क्रीड़ा करते हुए पवनंजयने पासके श्वेत महलकी अट्टालिकापर राजा महेन्द्रकी पुत्री अंजनाको देखा, उसकी कोमल आह सुनी और लौट आये प्रेमके मधुभारसे दबकर। उनकी व्यथा समझकर उनका अभिन्न मित्र प्रहस्त उन्हें अंजनाके राज्य-प्रासादपर विमान-द्वारा ले गया। वहाँ सखियोंमें हास-परिहास चल रहा था। अंजना पवनंजयके ध्यानमें ही निमग्न थी। उसकी अभिन्न सखी वसन्तमाला पवनंजयकी प्रशंसा कर रही थी। पवनंजयकी प्रशंसासे चिढ़कर मिश्रकेशी नामकी अंजनाकी

1. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

सखीने हेमपुरके युवराज विद्युत्प्रभकी प्रशंसा की। अंजना पवनंजयके ध्यानमें लीन होनेके कारण कुछ भी नहीं सुन सकी। ध्यान टूटनेपर हर्षके आवेशमें उसने अपनी सखियोंको नृत्य-गान करनेकी आज्ञा दी। अंजनाकी इस तन्मयता और भाव-विभोरताका अर्थ पवनंजयने यह लगाया कि यह विद्युत्प्रभसे प्रेम करती है, इसीसे उसका नाम सुनकर नृत्य-गानकी आज्ञा दे रही है। अपने नामका अपमान सहन न कर सकनेके कारण क्रोधित हो उल्टे पाँव वहाँसे वे दोनों चले आये और प्रातःकाल माता-पितासे बिना कुछ कहे ससैन्य प्रस्थान कर दिया।

अंजनाके पिता महेन्द्र पहले ही अंजनाकी शादी पवनञ्जयसे नियत कर चुके थे। अतः उनके कूच करनेसे वह अत्यन्त दुःखी हुए। महाराज प्रह्लादको जब यह समाचार मिला तो वह प्रहस्तको साथ लेकर पुत्रको लौटाने गये। प्रहस्तके द्वारा अधिक समझाये जानेपर पवनञ्जय वापस लौट आये। उन्होंने अंजनाके साथ विवाह भी कर लिया, पर आदित्यपुर लौटनेपर उसका परित्याग कर दिया। स्वयं ही पवनञ्जय अपने अहंभाव के कारण उन्मत्त रहने लगे। माता-पिता, प्रजा, प्रहस्त और अंजना सभी दुःखी थे, विवश थे। यद्यपि माता-पिताने पुत्रसे दूसरा विवाह करनेका भी आग्रह किया, पर उन्होंने अस्वीकृत कर दिया।

पातालद्वीपके अभिमानी राजा रावणने एकबार वरुणद्वीपके राजा वरुणपर आक्रमण किया और अपनी सहायताके लिए माण्डलिक राजा प्रह्लादको बुलाया। पिताको रोककर स्वयं पवनञ्जयने प्रस्थान किया। मार्गमें उन्हें मंगल-कलश लिये अंजना मिली, वे उसे धिक्कार कर चले गये। मार्गमें जब सैन्य-शिविर मानसरोवरके तटपर स्थिर हुआ तो एक चकवीको चकवेके वियोगमें तड़फते देख वह वेदनासे भर गये और अंजनाकी वेदना याद आ गयी। उसी समय प्रहस्तके साथ विमान-द्वारा अंजनाके महलमें गये और प्रातःकाल शिविरमें लौट आये। अंजना-द्वारा

प्रेरित हो उन्होंने अन्यायी रावणके विरुद्ध वरुणकी सहायता कर रावणको परास्त किया।

इधर आदित्यपुरमें गर्भवती अंजनाको कुलटा समझकर महारानी केतुमती—पवनञ्जयकी माँने उसको घरसे निकाल दिया। वहाँसे निराश्रय हो जानेपर सखी वसन्तमालाने महेन्द्रपुर जाकर अंजनाके लिए आश्रय देनेकी प्रार्थना की; पर वहाँ आश्रय न मिल सका। अतः वे दोनों वनमें चली गयीं। यहीं एक गुफामें अंजनाने एक यशस्वी पुत्ररत्नको जन्म दिया। एक दिन हनूरुह द्वीपके राजा प्रतिसूर्य जो अंजनाके मामा थे, उस बीहड़ वनमें आये और उसका परिचय प्राप्त कर अपने घर ले गये। वहीं उसके पुत्रका नाम हनूमान रखा गया।

विजयी होकर जब पवनञ्जय आदित्यपुर लौटे तो अंजनाका समाचार जानकर वह अत्यन्त दुखी हुए और चल पड़े उसकी खोजमें। जब अंजनाको यह समाचार मिला तो वह अधिक चिन्तित हुई। प्रतिसूर्य, प्रह्लाद आदि सभी पवनञ्जयको ढूँढ़ने चले। अन्तमें वे सब पवनञ्जयको ढूँढ़कर ले आये और अंजना-पवनञ्जयका मिलन हो गया। पवनञ्जयको मिला एक नन्हा बालक 'मुक्तिदूत-सा'।

यही मुक्तिदूतका कथानक है। यह कथानक पद्मपुराण, हनूमच्चरित आदि कई पुराणोंमें पाया जाता है। प्रतिभाशाली लेखकने इस पौराणिक कथानकमें अपनी कल्पनाका यथेष्ट समावेश किया है। यहाँ प्रधान-प्रधान कल्पनाओंपर प्रकाश डाला जायगा।

१—पद्मपुराणमें बतलाया गया है कि जब मिश्रकेशीने विद्युत्प्रभकी प्रशंसा की तो पवनञ्जयने क्रोधसे अभिभूत होकर अंजना और मिश्रकेशीका सिर काटना चाहा, किन्तु प्रहस्तके रोकनेपर वह शान्त हुए। मुक्तिदूतमें पवनञ्जयको इतना क्रोधाभिभूत न दिखलाकर नायकके चरित्रको महत्ता दी गयी है। हाँ, नायकका 'अहंभाव' अपनी निन्दा सुनकर अवश्य जाग्रत हो गया है।

२—पुराणके पवनञ्जय मानसरोवरसे प्रस्थान करनेपर पुनः पिताकी आज्ञासे लौटे, पर उपन्यास-लेखकने प्रहस्त मित्र-द्वारा उन्हें लौटवाया है।

३—वरुण और रावणके युद्ध-प्रसंगमें पुराणकारने वरुणको दोषी ठहराकर पवनञ्जय-द्वारा रावणको सहायता दिलायी है; पर मुक्तिदूतके लेखकने रावणको अपराधी बताकर पवनञ्जय-द्वारा वरुणको सहायता दिलायी है और रावणको परास्त कराया है।

४—केतुमती-द्वारा निर्वासित होकर महेन्द्रपुर पहुँच जानेपर अंजना और वसन्तमाला दोनोंका राजा महेन्द्रके पास जानेका पुराणमें उल्लेख किया गया है, परन्तु वीरेन्द्रजीने केवल वसन्तके जानेका ही उल्लेख किया है। इस कल्पना-द्वारा उन्होंने अंजनाके सहज मानकी रक्षा की है। अंजना-की खोजमें व्यस्त पवनञ्जय और प्रहस्तके वर्णनमें भी दोनोंके महेन्द्रपुर जानेका उल्लेख पुराणकारने किया है, पर मुक्तिदूतमें केवल प्रहस्तके जानेका कथन है।

५—कुमार पवनञ्जय जब अंजनाकी खोजमें गये, तब उनके साथ प्रिय हाथी अम्बरगोचरके भी रहनेका वर्णन पुराणमें मिलता है, पर मुक्तिदूतमें इसको स्थान नहीं दिया गया है।

इस प्रकार लेखकने कथाकी पौराणिकताकी सीमामें कल्पनाको मुक्त रखा है, जिससे कथावस्तुमें स्वभावतः सुन्दरता आ गयी है। किन्तु एक बात इसके कथानकमें बहुत खटकती है, और वह है कथानकका अधिक विस्तार। यही कारण है कि जहाँ-तहाँ कथावस्तुमें शिथिलता आ गयी है। आरम्भके प्रासाद-सौन्दर्य वर्णनमें तथा अंजनाके साज-सज्जाके वर्णनमें लेखकने रीतिकालका अनुसरण किया है। यदि यह वर्णन थोड़ा संक्षित होता तो उपन्यासकी सुन्दरता और निखर उठती। इन प्रसंगोंको छोड़ अन्य प्रसंगोंका वर्णन संक्षित, सरस तथा रमणीय है। इसी कारण सम्पूर्ण उपन्यासमें नवीनता, मधुरता और अनुपम कोमलता आ गयी है।

इस उपन्यासके प्रधान पात्र हैं—पवनञ्जय, अंजना, वसन्तमाला और प्रहस्त । गौण पात्र हैं—प्रह्लाद, केतुमती, महेन्द्र और प्रतिसूर्य आदि ।

पात्र

इनके चरित्र-चित्रणमें लेखकका रचना-कौशल चमक उठा है । नायक पवनञ्जयका चित्रण एक अहंभावसे भरे ऐसे पुरुषके रूपमें किया गया है जो नारीकी कमीका अनुभव तो करता है, पर अभिमानके कारण कुछ न कहकर भीतर ही भीतर जलता हुआ उन्मत्त-सा घूमता है । पवनञ्जय अंजनाके सौन्दर्यको देखकर मुग्ध तो हो जाते हैं किन्तु अंजना विद्युत्प्रभ-से प्रेम करती है इस आशंकाने उनके अहंभावको ठेस पहुँचाई और वह तब तक घुलते रहे जब तक उनके अन्तरकी मानवता उस अहंभावका बन्धन न तोड़ सकी । यह स्वच्छन्द वातावरणमें अकेले घूमनेके इच्छुक तथा स्वभावसे हठी हैं । अपने 'अहं' को आच्छादित करनेके लिए दर्शन-की व्याख्या, विश्व-विजयकी इच्छा तथा मुक्तिकी कामना करते हैं । 'अहं'के ध्वंसके साथ ही उनकी मानवता दीप्त हो उठती है । जब तक वह नारीकी महत्ताको समझनेमें असमर्थ रहते हैं, तब तक उनमें पूर्णता नहीं आ पाती । अहंके विनाश तथा मानवताके विकासके साथ ही वे नारीके वास्तविक स्वरूपसे परिचित हो जाते हैं, उनके चरित्रमें पूर्णता आ जाती है । रावण-वरुणके युद्ध-प्रसंगमें उनकी वीरताका साकाररूप दृष्टि-गोचर होता है । अंजनाका सामीप्य प्राप्तकर वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श मित्र एवं आदर्श पिता बन जाते हैं । पवनञ्जयको लेखकने हृदयसे भावुक, मस्तिष्कसे विचारक, स्वभावसे हठी और शरीरसे योद्धा चित्रित किया है ।

अंजना तो इस उपन्यासकी केन्द्रबिन्दु ही है । इसका चित्रण लेखकने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंगसे किया है । पातिव्रतका आदर्श अस्त्र ले सहज प्रतिभासे युक्त वह हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है । पति-द्वारा त्यक्त होनेका उसे शोक है, पर उसके हृदयमें धैर्यकी अजस्र धारा अनवरत प्रवाहित

होती रहती है। परित्यक्ता होकर भी वह अपने नियमोंमें शिथिलता नहीं आने देती है। बाईस वर्षों तक तिल-तिलकर जलने पर जब पवनञ्जय उसके महलमें पधारते हैं तो वह अगाध दयामयी अपना अंकद्वार उनके लिए प्रशस्त कर देती है। जब पवनञ्जय कहते हैं कि—"रानी! मेरे निर्वाणका पथ प्रकाशित करो"। तो वह प्रत्युत्तरमें कहती है—"मुक्तिका राह मैं क्या जानूँ, मैं तो नारी हूँ और सदा बन्धन ही देती आयी हूँ।" यहाँ पर नारी-हृदयका परिचय देनेमें लेखकने अपूर्व कौशलका परिचय दिया है।

अंजनाके चरित्र-चित्रणमें एकाध स्थलपर अस्वाभाविकता आ गयी है। गर्भभारसे दबी अंजनाका अरण्यमें किशोरी बालिकाके समान दौड़ना नितान्त अस्वाभाविक है। हाँ, अंजनाके धैर्य, सन्तोष, शालीनता आदि गुण प्रत्येक नारीके लिए अनुकरणीय हैं।

मित्ररूपमें प्रहस्त और वसन्तमालाका नाम उल्लेखनीय है। वसन्तमालाका त्याग अद्वितीय है, अपनी सखी अंजनाके साथ वह छायाकी तरह सर्वत्र दिखलायी पड़ती है। अंजनाके सुखमें सुखी और दुःखमें वह दुःखी है। अंजनाकी आकांक्षा, इच्छा उसकी आकांक्षा, इच्छा है। उसका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं है। सखीकी भलाईके लिए उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। इसी प्रकार प्रहस्तका त्याग भी अपूर्व है। लेखकने प्रधान पात्रोंके सिवा गौण पात्रोंमें राजा महेन्द्र, प्रह्लाद आदिके चरित्र-चित्रणमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

कथोपकथन

कथोपकथनकी दृष्टिसे इस उपन्यासका अत्यधिक महत्त्व है। पवनंजय और प्रहस्तके वार्तालाप कुछ लम्बे हैं, पर आगे चलकर भाषणोंमें संक्षिप्तताका पूरा खयाल रखा गया है। कथोपकथनों-द्वारा कथाकी धारा कितनी क्षिप्रगतिसे आगे बढ़ती है, यह निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट है—

"वह मोह था प्रहस्त, मनकी एक क्षण-भंगुर उमंग। निर्बलता-के अतिरेकमें निकलनेवाला हर वचन निश्चय नहीं हुआ करता। और मेरी हर उमंग मेरा बन्धन बनकर नहीं चल सकती। मोहकी रात्रि अब बीत चुकी है प्रहस्त। प्रमादकी वह मोहन-शय्या पवनंजय बहुत पीछे छोड़ आया है। कल जो पवनंजय था आज नहीं है। अनागतपर आरोहण करनेवाला विजेता, अतीतकी साँकलोंसे बँधकर नहीं चल सकता। जीवनका नाम है प्रगति। ध्रुव कुछ नहीं है प्रहस्त,—स्थिर कुछ नहीं है। सिद्धात्मा भी निज रूपमें निरन्तर परिणमनशील है। ध्रुव है केवल मोह—जड़ताका सुन्दर नाम—।"

"तो जाओ पवन, तुम्हारा मार्ग मेरी बुद्धिकी पहुँचनेके बाहर है। पर एक बात मेरी भी याद रखना—तुम स्त्रीसे भागकर जा रहे हो। तुम अपने ही आपसे पराभूत होकर आत्म-प्रतारणा कर रहे हो। घायलके प्रलापसे अधिक, तुम्हारे इस दर्शनका मूल्य नहीं। यह दुर्बल-की आत्म-वंचना है, विजेताका मुक्तिमार्ग नहीं है"।

शैली इस उपन्यासकी कथावस्तुको प्रकट करनेके लिए लेखकने दो प्रकार-की शैलियोंका प्रयोग किया है—बोझिल और सरल।

पवनंजय और अंजनाके प्रथम मिलनके पूर्वकी शैली बोझिल है। भाषा इतनी अधिक संस्कृतनिष्ठ है, जिससे गद्यकाव्य का-सा शब्दाडम्बर-सा प्रतीत होता है। पढ़ते-पढ़ते पाठक ऊब-सा जाता है और बीचमें ही अपने धैर्यको खो देता है। वाक्य लंबे होनेके कारण अन्वयमें क्लिष्टता है, जिससे उपन्यासमें भी दर्शनके तुल्य मनोयोग देना पड़ता है।

मिलनेके बादकी शैली सरल है, प्रवाहयुक्त है। अभिव्यक्ति सरल, स्पष्ट और मनोरंजक है। संस्कृतके तत्सम शब्दोंके साथ प्रचलित विदेशी शब्दोंका व्यवहार भाषामें प्रवाह और प्रभाव दोनों उत्पन्न करता है। मुक्तिदूतकी भाषा प्रसादकी भाषाके समान सरस, प्राञ्जल और प्रवाहयुक्त

है। हिन्दी उपन्यासोंमें प्रसादके पश्चात् इस प्रकारकी भाषा और शैली कम उपन्यासोंमें मिलेगी। वस्तुतः वीरेन्द्रजीका मुक्तिदूत भाषासौष्ठवके क्षेत्रमें एक नमूना है।

उद्देश्य

मुक्तिदूत जीवनकी व्याख्या है। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने प्रस्तावनामें इस उपन्यासका उद्देश्य प्रकट करते हुए लिखा है—"आजकी विकल मानवताके लिए मुक्तिदूत स्वयं मुक्तिदूत है।"

इसके पात्रोंको लेखकने प्रतीक रूपमें रखा है। अंजना प्रकृतिकी प्रतीक है, पवनञ्जय पुरुषका, उसका अहंभाव मायाका और हनूमान ब्रह्मका। आजका मनुष्य अपने अहं (माया) के कारण अपनेको बुद्धिमान तथा शक्तिशाली समझ अपने बुद्धिवादके बलपर विज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा प्रकृतिपर विजय पाना चाहता है, पर प्रकृति दुर्जेय है।

भौतिकवाद और विज्ञानवादके कारण हिंसा, द्वेषकी अग्नि भड़क रही है, युद्धके शोले जल रहे हैं। इसीसे हर व्यक्तिका मन अशान्त है, क्षुब्ध है, विकल है। पर अपने मिथ्याभिमानके कारण वह प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेके लिए नित्य नये-नये आविष्कार करनेमें संलग्न है। प्रकृति उसके इन कार्य-कलापोंसे शोकाकुल है तथा पुरुषकी अल्प शक्तिका उपहास करती हुई कहती है—"पुरुष (मनुष्य) सदा नारी (प्रकृति) के निकट बालक है। भटका हुआ बालक अवश्य एक दिन लौट आयेगा।"

होता भी ऐसा ही है। जब भौतिक संघर्षोंसे मनुष्य आकुल हो उठता है, तब प्रकृतिकी महत्तासे परिचित होता है और उसकी विराम-दायिनी गोदमें चला जाता है। मृदुलताकी अक्षयनिधि प्रकृति उसे अपने सुकोमल अंकमें भर लेती है। इसी समय मनुष्यके समक्ष मानवताका वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत होता है। मानवको प्रकृति-द्वारा प्रेरित कर तथा

अहिंसक बनाकर लेखकने बताया है कि तृतीय महायुद्धकी विभीषिका अहिंसा और संयमसे दूर की जा सकती है।

अन्यायका दमनकर मनुष्य पुनः प्रकृतिके समीप आता है और तब उसे हनूमानरूपी ब्रह्मकी प्राप्ति[1] होती है। हर्षातिरेकसे "प्रकृति पुरुषमें लीन हो गयी, पुरुष प्रकृतिमें व्यक्त हो उठा।" जिससे प्रकृतिकी सहज सहायतासे मनुष्यका साथ ब्रह्मसे सदा बना रहे। प्रकृति और पुरुषके मिलनकी शीतल अमियधाराने शीतलताका स्निग्ध प्रवाह प्रवाहित किया, जिससे चारों ओर शान्ति तथा सुखके शतदल विकसित हो उठे।

आजकी व्यस्त मानवतारूपी दानवताके लिए यही मूलमन्त्र है। जब मनुष्य विज्ञानके विनाशकारी आविष्कारोंका अंचल छोड़कर सृजनमयी प्रकृतिको पहचानेगा, तभी उसे भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपकी प्राप्ति होगी और विश्वमें मानवताकी चिर समृद्धि कर सकेगा।

इन दृष्टियोंसे पर्यवेक्षण करनेपर अवगत होता है कि यह उपन्यास उच्चकोटिका है। लेखकने मानवताका आदर्श त्याग, संयम और अहिंसा के समन्वयमें बतलाया है। औपन्यासिक तत्त्वोंकी दृष्टिसे भी दो-एक त्रुटियोंके सिवा अन्य बातोंमें श्रेष्ठ है। भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे यह उपन्यास बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

श्री नाथूराम 'प्रेमी' ने भी बंगलाके कतिपय उपन्यासोंका हिन्दी अनुवाद किया है। प्रेमीजी वह प्रतिभाशाली कलाकार हैं कि आपकी प्रतिभाका स्पर्श पाकर मिट्टी भी स्वर्ण बन जाती है।

मुनिराज श्री विद्याविजयने 'राणी-सुलसा' नामक एक उपन्यास लिखा है। इसमें सुलसाके उदात्त चरित्रका विश्लेषण कर लेखकने पाठकों के समक्ष एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है। भाषा और कलाकी दृष्टिसे इसमें पूर्ण सफलता लेखकको नहीं मिल सकी है।

---

१. ब्रह्मप्राप्तिका अर्थ आत्मशुद्धि है।

कथा-साहित्य

सभी जाति और धर्मोंके साहित्यमें सदासे कहानियोंकी प्रधानता रही है। इसका प्रधान कारण यह है कि मानव कथाओंमें अपनी ही भावना और चरित्रका विश्लेषण पाता है; इसलिए उनके प्रति उसका आकर्षित होना स्वाभाविक है। जैन साहित्यमें आजसे दो हजार वर्ष पहलेकी जीवनके आदर्शको व्यक्त करनेवाली कथाएँ वर्तमान हैं।

जैन आख्यानोंमें मानव-जीवनके प्रत्येक पहलूका स्पर्श किया गया है, जीवनके प्रत्येक रूपका सरस और विशद विवेचन है तथा सम्पूर्ण जीवनका चित्र विविध परिस्थिति-रंगोंसे अनुरञ्जित होकर अंकित है। कहीं इन कथाओंमें ऐहिक समस्याओंका समाधान किया गया है तो कहीं पारलौकिक समस्याओंका। अर्थनीति, राजनीति, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों, कला-कौशलके चित्र, उत्तुङ्गगिरि, अगाध नद-नदी आदि भूवृत्तोंका लेखा, अतीतके जल-स्थल मार्गोंके संकेत भी जैन कथाओंमें पूर्णतया विद्यमान हैं। ये कथाएँ जीवनको गतिशील, हृदयको उदार और विशुद्ध एवं बुद्धिको कल्याणके लिए उत्प्रेरित करती हैं। मानवको मनोरंजनके साथ जीवनोत्थानकी प्रेरणा इन कथाओंसे सहज रूपमें प्राप्त हो जाती है।

प्राचीन साहित्यमें आचारांग, उत्तराध्ययनांग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग, पद्मचरित्र, सुपार्श्वचरित्र, ज्ञातृधर्मकथाङ्ग आदि धर्म-ग्रन्थोंमें आयी हुई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। हिन्दी जैन साहित्यमें संस्कृत और प्राकृतकी कथाओंका अनेक लेखक और कवियोंने अनुवाद किया है। एकाध लेखकने पौराणिक कथाओंका आधार लेकर अपनी स्वतन्त्र कल्पनाके मिश्रण-द्वारा अद्भुत कथा-साहित्यका सृजन किया है। इन हिन्दी कथाओंकी शैली बड़ी ही प्राञ्जल, सुबोध और मुहावरेदार है। ललित लोकोक्तियाँ, दिव्यदृष्टान्त और सरस मुहावरोंका प्रयोग किसी भी पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए पर्याप्त है।

अधिकांश जैन कहानियाँ व्रतोंकी महत्ता दिखलाने और व्रतपालन करनेवालेके चरित्रको प्रकट करनेके लिए लिखी गयी हैं। सम्यक्त्वकौमुदी-भाषा, वरांगकुमार चरित्र, श्रीपालचरित्र, धन्यकुमार चरित्र आदि कथाएँ जीवनकी व्याख्यात्मक हैं। अनन्तव्रत कथा, आदित्यवार कथा, पंच-कल्याणकव्रत कथा, निशिभोजन त्यागव्रत कथा, शील कथा, दर्शन कथा, दान कथा, श्रुतपंचमीव्रत कथा, रोहिणीव्रत कथा, आकाश पञ्चमी कथा, आदि कथाएँ एक विशेष दृष्टिकोणको लेकर लिखी गयी हैं।

सम्यक्त्व कौमुदी धार्मिक तथा मनोरंजक कथाओंका संग्रह है। इसमें मथुराका सेठ अर्हद्दास अपने सम्यक्त्वलाभकी कथा अपनी आठ पत्नियोंको सुनाता है। कुन्दलताको छोड़कर शेष सभी स्त्रियाँ उसके कथनपर विश्वास करती हैं। सेठकी अन्य सात स्त्रियाँ भी अपने-अपने सम्यक्त्वलाभकी बात सुनाती हैं। कुन्दलता इनका भी विश्वास नहीं करती है। इस नगर-का राजा उदितोदय, मन्त्री सुबुद्धि और सुपर्णखुर चोर भी छुपकर इन कथाओंको सुनते हैं। उन्हें इन घटनाओंपर विश्वास होता जाता है। राजा कुन्दलताके विश्वास न करनेसे क्षुब्ध है। अन्तमें कुन्दलता भी इन कथाओंसे प्रभावित हो जाती है। सेठ अर्हद्दास, राजा, मन्त्री, सेठकी स्त्रियाँ, रानी, मन्त्रिपत्नी सबके सब जैनदीक्षा ले लेते हैं। कुन्दलता भी इनके साथ दीक्षित हो जाती है। तपस्याके प्रभावसे कोई निर्वाण प्राप्त करता है, तो कोई स्वर्ग।

मुख्य कथाके भीतर एक सुयोधन राजाकी कथा भी आयी है और उसीके अन्दर अन्य सात मनोरंजक और गम्भीर संकेतपूर्ण कहानियाँ समाविष्ट हैं।

जैन हिन्दी कथा साहित्य दो रूपोंमें उपलब्ध है—अनूदित और पौराणिक आधार पर मौलिक रूपमें रचित।

अनूदित कथा साहित्य विशाल है। प्रायः समस्त जैन कथाएँ प्राचीन

और अर्वाचीन हिन्दी गद्यमें अनूदित की जा चुकी हैं। आराधना कथा-कोश, बृहत्कथाकोश, सप्तव्यसन चरित्र और पुण्यास्रवकथाकोशके अनुवाद कथा साहित्यकी दृष्टिसे उल्लेख योग्य हैं। उपर्युक्त ग्रन्थोंमें एक साथ अनेक कथाओंका संकलन किया गया है और ये सभी कथाएँ जीवनके मर्मको स्पर्श करती हैं। यद्यपि इन कथाओंमें आजका रंग और टीप-टाप नहीं है तो भी जीवनके तारोंको झंकृत करनेकी क्षमता इनमें पूर्ण रूपसे विद्यमान है।

आराधनाकथा कोश[1]

यह कई भागोंमें प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक उदयलाल काशलीवाल हैं। प्रथम भागमें २४ कथाएँ, द्वितीय भागमें ३८ कथाएँ, तृतीय भागमें ३२ कथाएँ और चतुर्थ भागमें २७ कथाएँ हैं। अनुवाद स्वतन्त्ररूपसे किया गया है। अनुवादकी भाषा सरल है। कथाएँ सभी रोचक हैं, अहिंसा संस्कृतिकी महत्ता व्यक्त करती हैं तथा पुण्य-पापके फलको जनताके समक्ष रखती हैं। यदि इन कथाओंको आजकी शैलीमें जनताके समक्ष रखा-जाय, तो निश्चय ही जैन साहित्यके वास्तविक गौरवको जनसाधारण हृदयंगम कर सकेगा।

बृहत्कथाकोश[2]

इसके दो भाग अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं, कुल कथाएँ चार भागोंमें प्रकाशित की जा रही हैं। प्रथम भागमें ५५ कथाएँ और द्वितीय भागमें १७ कथाएँ हैं। इसके अनुवादक प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य हैं। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है, भाषा सरल और सुसम्बद्ध है। अनुवादकने मूल भावोंको अक्षुण्ण रखते हुए भी रोचकताको नष्ट नहीं होने दिया है।

---

१. प्रकाशक—जैनमित्र कार्यालय हीराबाग, बम्बई।

२. प्रकाशक—भा० दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा।

जैन आगमकी पुरानी कथाओंको हिन्दी भाषामें सरल ढंगसे श्री डा० जगदीशचन्द्र जैनने लिखा है। इस संग्रहमें कुल ६४ कहानियाँ हैं, जो तीन भागोंमें विभक्त हैं—लौकिक, ऐतिहासिक और धार्मिक। पहले भाग में ३४, दूसरेमें १७ और तीसरेमें १३ कहानियाँ हैं। लौकिक कथाओंमें उन लोक-प्रचलित कथाओंका संकलन हैं, जो प्राचीन भारतमें बिना सम्प्रदाय और वर्ग भेद-के जनसाधारणमें प्रचलित थीं। इस वर्गकी कथाओंमें कई कहानियाँ सरस, रोचक और मर्मस्पर्शी हैं। कल्पना-शक्ति और घटना-चमत्कार इन कथाओंमें पूरा विद्यमान है। अतः कलाकी दृष्टिसे भी इन कहानियोंका महत्त्व है।

[1]दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानियोंमें भगवान् महावीरके समकालीन अनेक राजा-रानियोंकी कहानियाँ दी गयी हैं। इनमें जीवनमें घटित होनेवाले व्यापारोंके सहारे राजा-रानियोंके चरित्रोंका विश्लेषण किया गया है। यद्यपि जीवन-सम्बन्धी गम्भीर विवेचनाएँ, जो नाना व्यापारोंमें प्रकट होकर जीवनकी गुत्थियों पर प्रकाश डालती हैं, इनमें नहीं हैं, तो भी कथानककी सरसता पाठकको रसमग्न कर ही लेती है।

धार्मिक विभागकी कहानियाँ धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे लिखी गई हैं। इन कहानियोंसे स्पष्ट है कि अनेक चोर और डाकू भी भगवान् महावीरके धर्ममें दीक्षित हुए थे। तृष्णा, लोभ, क्रोध, मान, माया आदि विकार मानवके उत्थानमें बाधक हैं। व्यक्ति या समाजका वास्तविक हित सदाचार, संयम, समभाव, त्याग आदिसे ही संभव है। इस संकलनकी कहानियों पर प्रकाश डालते हुए भूमिकामें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है—"संग्रहीत कहानियाँ बड़ी सरस हैं। डा० जैनने इन कहानियोंको बड़े सहज ढंगसे लिखा है। इसलिए ये बहुत सहजपाठ्य हो गई

१. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

हैं। इन कहानियोंमें कहानीपनकी मात्रा इतनी अधिक है कि हजारों वर्षसे, न जाने कहनेवालोंने इन्हें कितने ढंगसे और कितनी प्रकारकी भाषामें कहा है फिरभी इनका रसबोध-ज्योंका त्यों बना है। साधारणतः लोगोंका विश्वास है कि जैन साहित्य बहुत नीरस है। इन कहानियोंको चुनकर डॉ० जैनने यह दिखा दिया है कि जैनाचार्य भी अपने गहन तत्त्वविचारोंको सरस करके कहनेमें अपने ब्राह्मण और बौद्ध साथियोंसे किसी प्रकार पीछे नहीं रहे हैं। सही बात तो यह है कि जैन पंडितोंने अनेक कथा और प्रबन्धकी पुस्तकें बड़ी सहज भाषामें लिखी हैं।"

इस संग्रहकी कहानियाँ सरस और रोचक हैं। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने पुरातन कहानियोंको ज्योंका त्यों लिखा है, कहानी कलाकी दृष्टिसे चमत्कारपूर्ण दृश्य योजना और कथोपकथनको प्रभावक बनानेकी चेष्टा नहीं की है। अतएव संग्रह भी एक प्रकारसे अनुवाद मात्र है।

पुरातन कथानकोंको लेकर श्री बाबू कृष्णलाल वर्माने स्वतन्त्ररूपसे कुछ कथाएँ लिखी हैं। इन कथाओंमें कहानी-कला विद्यमान है। इनमें वस्तु, पात्र और दृश्य (Background or Atmosphere) ये तीनों मुख्य अङ्ग संतुलित रूपमें हैं। सरलता, मनोरंजकता और हृदयस्पर्शिता आदि गुणोंका समावेश भी यथेष्ट रूपमें किया गया है। नीचे आपकी कतिपय कथाओंका विवेचन किया जाता है।

यह कहानी बड़ी ही मर्मस्पर्शी है। इसमें एक ओर मोहाभिभूत प्राणियोंके अत्याचार उमड़-घुमड़कर अपनी पराकाष्ठा दिखलाते हुए दृष्टि-

खनककुमार[1]

गोचर होते हैं, तो दूसरी ओर सहनशीलता और क्षमाकी अपरिमित शक्ति। आज, जब कि आचार और धर्म एक खिलवाड़ और ढकोसला समझे जा रहे हैं, यह कहानी अत्यन्त उपादेय है।

---

१. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

सेवती नामक नगरके राजा कनककेतुकी प्रिया मनसुन्दरीने एक प्रतिभाशाली, वीर पुत्रको जन्म दिया। यह बालक बचपनसे ही भावुक सदाचारी और बुद्धिमान् था। दो-तीन वर्षकी अवस्थासे ही माता-पिताके साथ पूजा-भक्तिमें शामिल होता था।

कथानक

युवा होनेपर संसारके विषय-भोगोंसे खनककुमारको विरक्ति हो गयी। माताके वात्सल्य और पिताके आग्रहने बहुत दिनोंतक उन्हें घरमें रोक रखा, पर एक दिन वह सब कुछ छोड़ दिगम्बर दीक्षा ले आत्म-कल्याणमें लग गये। जब खनककुमार एकाकी विचरण करते हुए अपनी बहन देवबालाकी ससुराल पहुँचे तो भाईको इस वेषमें देखकर बहनकी ममता फूट पड़ी। भयंकर कड़कड़ाते जाड़ेमें नग्न रहनेकी कल्पना मात्रसे ही उसको कष्ट हुआ। वह सोचने लगी—हाय! मेरे भाईको कितना कष्ट है, यह राजपुत्र होकर इस प्रकारके दुःखोंको कैसे सहन करेगा?

चिन्तित रहनेके कारण ही देवबालाका मन सांसारिक भोगोंसे उदासीन रहने लगा। जब इसके पतिको भार्याकी उदासीनताका कारण मुनि प्रतीत हुआ तो उसने जल्लादों-द्वारा मुनिकी खाल निकलवा ली। मुनि खनककुमारने इस अवसरपर अपनी दृढ़ता, क्षमा और अहिंसा-शक्तिका अपूर्व परिचय दिया है। उनकी अद्भुत सहनशीलताके कारण उन्हें कैवल्यकी प्राप्ति हुई।

इस कथामें करुण-रसका परिपाक इतना सुन्दर हुआ कि पाषाण-हृदय भी इसे पढ़कर आंसू गिराये बिना नहीं रह सकता है। यद्यपि प्रवाहमें शिथिलता है, कथोपकथन भी जीवट नहीं है। मुख्यकथाके सहारे अवान्तर कथानक भी घुसेड़ दिये गये हैं, जिससे शैलीमें सजीवता नहीं आने पायी है। वाक्यगठन अच्छा हुआ है। छोटे-छोटे अर्थपूर्ण वाक्यों-का प्रयोगकर वर्माजीने कथाके माध्यम-द्वारा धर्मोंकी व्याख्या भी जहाँ-तहाँ

कर दी है। यद्यपि इस प्रयासमें कहीं-कहीं उन्हें कथाकारके पदका उल्लंघन करना पड़ा है, फिर भी कथाकी गतिमें रुकावट नहीं आने पायी है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह कथा सुन्दर है। खनककुमारका चारित्रिक विकास आरम्भसे ही दिखलाया गया है।

महासती सीता[1]

इसमें वर्माजीने नवीन भावकी योजना की है। पौराणिक आख्यानको कल्पना-द्वारा चटपटा बनाकर सुस्वादु कर दिया है। महासती सीताके उज्ज्वल चरित्रकी झाँकी-द्वारा प्रत्येक पाठक अपने हृदयको पवित्र कर सकता है।

कथानक

मिथिला नगरीकी रानी विदेहाके गर्भसे युगल सन्तान—एक साथ दो बालक उत्पन्न हुए। सूप और थालीकी एक ही साथ झनकार हुई। अन्तःपुरमें और बाहर आनन्द मनाया जाने लगा। बाल सूर्य और चन्द्रके समान उनके तेजको देखकर राजा-रानीके आनन्दका ठिकाना न रहा। पर क्षणभर पहले जहाँ आनन्दकी लहरें उत्पन्न हो रही थीं, वहीं हृदय-वेधी हाहाकार सुनाई पड़ने लगा। आँखोंके तारे पुत्रको कोई बड़ी चतुराईसे चुराकर ले गया। अनुसन्धान करनेपर भी बालकका पता न लग सका।

कन्याका नाम सीता रखा गया। जनक, युवती होनेपर सीताकी अप्रतिम रूप-राशिको देखकर उसके तुल्य वर प्राप्त करनेके लिए चिन्तित थे। जनकने योग्य वरकी तलाश करनेके लिए सैकड़ों राजकुमारोंको देखा, पर सीताके योग्य एक भी नहीं जँचा।

वरवर देशके म्लेच्छराजाके उपद्रवोंका दमन करनेके लिए जनक महाराजने अपनी सहायताके लिए अयोध्यानृपति महाराज दशरथको बुलाया। जब अयोध्यासे सेना जनककी सहायताके लिए प्रस्थान करने लगी तो रामने आग्रहपूर्वक महाराजसे सेनाके साथ जानेकी अनुमति ले ली। मिथिला पहुँचकर रामने म्लेच्छ राजाओंपर आक्रमण किया और

1. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

उन्हें अपने वश कर लिया। रामके इस कार्यसे जनक बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें सीताके योग्य वर समझ उन्हींके साथ सीताका विवाह करनेका निश्चय कर लिया।

जब नारदने सीताके रूपकी प्रशंसा सुनी तो वह उसको देखनेके लिए मिथिला आये। नारद उस समय इतने आतुर थे कि राजाके पास न जाकर सीधे अन्तःपुरमें सीताके पास चले गये। सीता अपने कमरेमें अकेली ही थी, अतः वह उनके अद्भुत रूपको देखकर डर गयी तथा चिल्लाने लगी। अन्तःपुरके नौकरोंने नारदकी दुर्दशा की, जिससे अपमानित नारदने सीतासे प्रतिशोध लेनेकी भावनासे उसका एक सुन्दर चित्र खींचा और उसे चन्द्रगति विद्याधरके लड़के भामण्डलको भेंट किया। भामण्डल उस चित्रको देखते ही मुग्ध हो गया। मदनज्वरके कारण वह खाना-पीना भी भूल गया। पुत्रकी इस दशाको देखकर विद्याधरने नारदको अपने पास बुलाया और चित्रांकित कन्याका पता पूछा। नारदके कथनानुसार उस विद्याधरने विद्याके प्रभावसे महाराज जनकको रातमें सोते हुए अपने यहाँ बुला लिया। जब जनक जागे तो अपनेको एक अपरिचित स्थानमें पाकर पूछने लगे कि मैं कहाँ आ गया हूँ? चन्द्रपति विद्याधरने उससे सीताका विवाह भामण्डलके साथ कर देनेको कहा। महाराज जनकने बड़ी दृढ़तासे विद्याधरको उत्तर दिया। अन्तमें विद्याधरने 'वज्रावर्त' और 'अर्णवावर्त' नामक दो धनुष जनकको दिये और कहा कि सीता का स्वयंवर करो, जो स्वयंवरमें इन दोनों धनुषोंमेंसे एक धनुषको तोड़ देगा; उसीके साथ सीताका विवाह होगा। जनक किसी प्रकार विद्याधरकी शर्त मंजूर कर मिथिला आ गये और सीताका स्वयंवर रचा। रामने स्वयंवरमें धनुष तोड़ा और उन्हींके साथ सीताका विवाह हो गया।

विवाहके उपरान्त कुछ ही दिनोंके बाद कैकेयीका वरदान माँगना और राजाका वनप्रयाण आता है। वनमें अनेक कारण-कलापोंके मिलने-

पर सीताका हरण हो जाता है। लंकामें सीताको अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। हनूमान-द्वारा सीताका समाचार पाकर रामचन्द्र सुग्रीवकी सहायतासे रावणपर आक्रमण करते हैं और लंकाका विजयकर सीताको ले आते हैं। अयोध्यामें आनेपर सीतापर दोषारोपण किया जाता है, फलतः राम सीताको घरसे निर्वासित कर देते हैं। वज्रजंघके यहाँ सीता लवण और अंकुशको जन्म देती है; इन दोनोंका रामसे युद्ध होता है। परिचय हो जानेपर सीताकी अग्नि-परीक्षा ली जाती है। सतीके दिव्य तेजसे अग्नि जल बन जाती है और वह संसारकी स्वार्थपरता देखकर विरक्त हो जैनदीक्षा ले लेती है और तपस्या कर स्वर्ग पाती है।

इस कथामें कथोपकथन प्रभावशाली बन पड़े हैं। लेखकने चरित्र-चित्रणमें भी अपूर्व सफलता प्राप्त की है। संवाद कथाकी गतिको कितना प्रवाहमय बनाते हैं यह निम्न उद्धरणसे स्पष्ट है। नारद मनही मन बड़बड़ाते हुए कहते हैं—"हुँ! यह दुर्दशा यह अत्याचार! नारदसे ऐसा व्यवहार! ठीक है। व्याघ्रियोंको देख लूँगा। सीता! सीता! तुझे धन यौवनका गर्व है, उस गर्वके कारण तूने नारदका अपमान किया है। अच्छा है! नारद अपमानका बदला लेना जानता है। नारद थोड़े ही दिनोंमें तुझे इसका फल चखायेगा और ऐसा फल चखायेगा कि जिससे कारण तू जन्मभरतक हृदय-वेदनासे जलती रहेगी।" इस प्रकार इस कहानीमें कथातत्त्वोंका यथेष्ट समावेश किया गया है।

इस रचनामें उत्सुकता गुण पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है। लेखक वर्माजीने पौराणिक आख्यानमें भी कल्पनाका यथेष्ट सम्मिश्रण किया है।

सुरसुन्दरी[1] सुरसुन्दरी एक राजाकी कन्या है और अमरकुमार एक सेठका पुत्र। दोनों एक साथ अध्ययन करते हैं, दोनोंमें परस्पर आकर्षण उत्पन्न होता है और वे दोनों प्रेमपाशमें बँध जाते हैं। एक दिन कुमारी अपने पल्लेमें सात कौड़ियाँ बाँधकर ले जाती है

१. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

और अमरकुमार खोलकर मिठाई मँगाकर बाँट देता है। राजकुमारी कुमारके इस कृत्यसे क्रोधित होती है और कहती है कि सात कौड़ीमें राज्य प्राप्त किया जा सकता है।

दोनोंका विवाह हो जाता है। अमरकुमार व्यापार करने जाता है, साथमें सुरसुन्दरी भी। सिंहल द्वीपके वनमें जहाज रोककर दोनों गये। सुन्दरी अमरके घुटनोंपर सिर रखकर सो गयी। अमरको सुन्दरीके पूर्वके कटुवचन और अपना अपमान याद आया; अतः वह उसके सिरके नीचे पत्थर लगाकर वहीं सोता छोड़ चल दिया।

जब सुन्दरीकी निद्रा भंग हुई तो उसने अपने अंचलमें सात कौड़ियाँ बँधी पायीं; साथ ही एक पत्र, जिसमें लिखा था कि सात कौड़ियोंसे राज्य लेकर रानी बनो। सुन्दरीका क्षोभ जाता रहा और क्षत्रियत्व जाग्रत हो गया। उसकी आत्मा बोल उठी—"छिः सुरसुन्दरी, नारी होकर तेरे यह भाव! पुरुषका धर्म कठोरता है, नारीका धर्म कमनीयता और कोमलता। पुरुषका कार्य निर्दयता है तो स्त्रीका कार्य धर्म-दया"। इसके पश्चात् वह निश्चय करती है कि मैं क्षत्रिय सन्तान हूँ, इस प्रतारणाका बदला अवश्य लूँगी।

रात्रिके समय उस पहाड़की गुफासे कठोर ध्वनि करता हुआ एक राक्षस निकला। सुन्दरीके दिव्य तेजसे भयभीत हो वह उसे पुत्रीवत् मानने लगा। कुछ समय उपरान्त वहाँ एक सेठ आता है और वह उसे ले जाता है। उसकी दृष्टिमें पाप समा जाता है, जिससे वह उसे एक वेश्याके हाथ बेच देता है, सुन्दरी किसी प्रकार वहाँसे छुटकारा पाकर समुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें पहुँचती है और फिर सेठके नाविकों-द्वारा त्राण पाती है। वहाँ भी उसी विपत्तिको प्राप्त होती है, किन्तु एक दासी-द्वारा रक्षण पा अपना छुटकारा खोजती है। इसी बीच मुनिराजका दर्शन कर अपने पतिसे मिलनेका समय पूछती है। सुन्दरीको अनेक दुराचारियोंके फन्देमें फँसना पड़ा, अनेकोंने उसके शीलको लूटनेकी कोशिश की, पर वह अपने

व्रतपर दृढ़ रही। उसकी दृढ़ताके कारण उसकी विपत्तियाँ काफूर होती गयीं।

अन्तमें अपना नाम विमलवाहन रखकर उन्हीं सात कौड़ियों-द्वारा व्यापार करती है। एक चोरका पता लगानेपर राजकुमारीके साथ विवाह और आधा राज्य भी प्राप्त कर लेती है। अमरकुमार भी व्यापारके लिए उसी नगरीमें आता है और बारह वर्षके पश्चात् दोनोंका पुनः मिलन हो जाता है। मानिनी नारीकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है, और पुरुषका अहं-भाव नत हो जाता है।

इस कृतिमें लेखकने नारी-तेज, उसकी महत्ता, धैर्य, साहस और क्षमताका पूर्ण परिचय दिया है। संकल्प और व्रतपर दृढ़ नारीके समक्ष अत्याचारियोंके अत्याचार शान्त हो जाते हैं। पुरुष कितना अविश्वसनीय हो सकता है, यह सुर-सुन्दरीके निम्न कथनसे स्पष्ट है—

"विश्वासघातक, दुराचारी, धर्माधर्मविचारहीन, प्रतिज्ञाका भंग करनेवाले अथवा गऊके समान स्त्रीको शेरकी तरह अपना भक्षण समझनेवाले पुरुषोंसे जितना दूर रहा जाय, उतना ही अच्छा है।"

इस रचनाकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक हिन्दी है, उर्दू और फारसीके प्रचलित शब्दोंका भी प्रयोग किया गया है। भाषामें स्निग्धता, कोमलता और माधुर्य तीनों गुण विद्यमान हैं। शैली सरस है, साथ ही संगठित, प्रवाहपूर्ण और सरल है। रोचकता और सजीवता इस कथामें सर्वत्र विद्यमान है। कोई भी पाठक पढ़ना आरम्भ करनेपर, इसे समाप्त किये बिना विश्वास नहीं ले सकता है। प्रवाहकी तीव्रतामें पड़कर वह एक किनारे पहुँच ही जाता है।

सती दमयन्ती

इस कथामें सती दमयन्तीके शील, पातिव्रत और गुणोंकी महत्ता बतलायी गयी है। आदर्शकी अवहेलना आजके लेखक भले ही करते रहें, पर वास्तविकता यह है कि आदर्शके बिना मानव-जीवन प्रगतिशील नहीं बन सकता है।

नल परिस्थितिवश या पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मानुसार द्यूतक्रीड़ामें रत हो जाता है और स्त्री सहित सब कुछ हार जाता है। राज-पाट छोड़कर नल वनको चल देता है और दमयन्ती पातिव्रत धर्मके अनुसार उसका अनुसरण करती है। कूबड़ उसकी भर्त्सना करता है, किन्तु सतीत्वकी विजय होती है। नल वनमें दमयन्तीको सोती हुई छोड़ देता है और स्वयं चला जाता है। निद्रा भंग होनेपर वह अपने अंचलमें लिखे लेखको पढ़ती है और उसीके अनुसार मार्गपर चल पड़ती है। मार्गमें अनेक अघटित घटनाएँ घटित होती हैं, जिनके द्वारा उसका नारीत्व निखरता जाता है। अन्तमें चन्द्रयशा मौसीके यहाँसे पिताके घर पहुँच जाती है और इधर इसी नगरीमें नल आता है। सूर्यपाक बनाता है, दमयन्ती अपने पतिको पहचान लेती है और बारह वर्षके पश्चात् दोनोंका मिलन होता है। नल दमयन्तीको अपनी यक्ष सम्बन्धी कथा सुनाता है।

भाषा, शैली और कथा-विस्तारकी दृष्टिसे इसमें नवीनता होनेपर भी कुछ ऐसी अलौकिक घटनाएँ हैं, जो आजके युगमें अविश्वसनीय मालूम पड़ेंगी। उदाहरणार्थ सतीके तेजसे शुष्क सरोवरका जल परिपूर्ण होना, क़ैदीकी बेड़ियाँ टूटना और डाकुओंका भाग जाना आदि। चरित्र-चित्रणमें इस कृतिमें लेखकने पौराणिकताको पूर्ण रूपसे अपनाया है, यही कारण है कि दमयन्तीका चरित्र अलौकिक और अमानवीय बन गया है। भाषा सरल और मुहावरेदार है, रोचकता और उत्सुकता आद्योपान्त विद्यमान है।

इस पौराणिक कथाके लेखक भागमल शर्मा हैं। इसमें पुण्य-पापका फल दिखलाया गया है। मनुष्य परिस्थितियों और वातावरणके अनुसार

रूपसुन्दरी[1]

किस प्रकार नीचसे नीच और उच्चसे उच्च कार्य कर सकता है। प्रतिकूल परिस्थिति और वातावरणके रहनेपर जो व्यक्ति जघन्य कृत्य करता हुआ देखा जाता है, वही अनुकूल

१. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अम्बाला शहर।

वातावरण और परिस्थितियोंके होनेपर उत्तम कार्य करता है। इस कथाका प्रधान पात्र देवदत्त और नायिका रूपसुन्दरी है।

रूपसुन्दरी कृषक भार्या है और देवदत्त धूर्त साधु-कुमार । दोनोंका स्नेह हो जाता है। रूपसुन्दरी कामान्ध हो अपना सतीत्व खो देना चाहती है, पर एक मुनिराजके दर्शनसे उसे आत्मबोध प्राप्त हो जाता है। धूर्त देवदत्त उसके पतिका मायावी भेष धर कर आता है और वास्तविक पतिसे झगड़ा करने लगता है। रूपसुन्दरी एक ही रूपके दो पुरुषोंको देखकर सशंकित हो जाती है और अपना न्याय करानेके लिए न्यायालयकी शरण लेती है। अभयकुमार यथार्थ न्याय करता है और सतीके दिव्य तेजसे प्रजा नाच उठती है। कपटी देवदत्तको अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप होता है और रूपसुन्दरीके चरणोंमें गिर क्षमा याचना करता है। चारों ओर सतीकी जय-जय ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

चारित्रिक विकासकी दृष्टिसे वह कथा सुन्दर है। मनुष्य कमजोरियोंका पुतला है, कोई भी नर-नारी किसी भी क्षण किस रूपमें परिवर्तित हो सकता है, इसका कुछ भी ठीक नहीं है। द्वन्द्वात्मक चारित्र मानव जीवनकी विशेष निधि है। लेखकने कथोपकथनोंको प्रभावोत्पादक बनानेका पूरा प्रयत्न किया है।

'मुझे तेरे मधुप्रेमका एकवार स्वाद मिले तो ?'

"हूँ ! ऐसे अभद्र शब्द, खबरदार, फिर मुँहसे न निकालना। तेरे जैसे नीच मनुष्योंको तो मेरा दर्शन भी न होगा।"

नारी-पात्रोंका आदर्श चरित्र प्रस्तुत करनेमें श्री पं० मूलचन्द्र 'वत्सल'का नाम भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आपने पुराने जैन कथानकोंको लेकर नवीन ढंगसे अनेक सतियों और देवियोंके चरित्रोंको प्रस्तुत किया है। यद्यपि शैली परिमार्जित है, तो भी पूर्णतया आधुनिक टेकनिकका निर्वाह किसी भी कथामें नहीं हो सका है। 'सती-रत्न'[1]में कुमारी

१. प्रकाशक—साहित्य रत्नालय, बिजनौर।

ब्राह्मी और सुन्दरी, चन्दनाकुमारी और ब्रह्मचारिणी अनन्तमती, ये तीन कथाएँ दी गयी हैं। इन कथाओंमें अनेक स्थानोंपर लेखक उपदेशके रूपमें पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत होता है। कथाओंमें मूलतत्त्वोंका सन्निवेश करनेका प्रयास किया गया है; पर सफलता नहीं मिल सकी है।

पौराणिक आख्यानोंको लेकर मौलिक कहानियाँ लिखनेवालोंमें सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, यशपाल जैन, भगवत्स्वरूप 'भगवत्', अक्षयकुमार जैन, बालचन्द्र जैन एम० ए०, और रतलाल 'वंसल' आदि हैं। महिला लेखिकाओंमें चन्द्रमुखी देवी, चन्द्रप्रभा देवी, शरवती देवी और पुष्पादेवीकी कहानियाँ अच्छी होती हैं। दिगम्बरजैनके कथाङ्कमें कई नवीन लेखकोंकी भी कथाएँ छपी हैं। जैन महिलादर्शने भी सन् १९४६ में प्राचीन महिला कथाङ्क प्रकाशित किया था। इस अंककी कहानियोंमें श्रीमती चन्द्रप्रभा देवीकी 'नीली' शीर्षक कहानी कहानी-कलाकी दृष्टिसे अच्छी है। आरम्भ और अन्त दोनों ही सुन्दर हुए हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार लब्धप्रतिष्ठ कलाकार हैं। आपने सार्वजनिक सैकड़ों कथाएँ लिखी हैं। आपकी रचनाओंमें शुद्ध साहित्यिक गुणोंके अतिरिक्त विचारों और दार्शनिकताका गाम्भीर्य भी विद्यमान है। भावुक कथाकार होनेके कारण, जैनेन्द्रजीके विचारोंमें भी भावुकताका होना स्वाभाविक है। आपकी कथाओंमें कलाके दोनों तत्त्व—चित्रोंका एक समूह और उन्हें अनुप्राणित करनेवाला भावोंका स्पष्ट स्पन्दन विद्यमान हैं। भावों और चित्रोंका जैसा सुन्दर समन्वय जैनेन्द्रजीकी कलामें है, अन्यत्र कठिनाईसे मिल सकेगा।

आपकी 'बाहुबली' और 'विद्युच्चर' ये दो कथाएँ जैनसाहित्यकी अमूल्य निधि हैं। 'बाहुबली' कथामें बाहुबलीके चरित्रका विश्लेषण बहुत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूपसे हुआ है। इसमें उस समयकी परम्परा और सामाजिक विश्वासोंकी स्पष्ट झाँकी विद्यमान है। कथानकके कलेवरमें पात्रोंका परिचय अभिनयात्मक रूपसे प्राप्त हो जाता है। पात्रोंकी आपस-

की बात-चीत और भाव-भंगिमाके समन्वयने कथोपकथनको इतना प्रभावक बना दिया है, जिससे कोई भी पाठक कलाकारके उद्देश्यको हृदयंगम कर सकता है। कहानीमें इतनी रोचकता और सरसता है, कि आरम्भ कर देनेपर समाप्त किये बिना जी नहीं मानता।

विद्युचर हस्तिनापुरके राजा संबरके ज्येष्ठ पुत्र थे। कुमार विद्युच्चरकी शिक्षा-दीक्षा राजकुमारोंकी भाँति हुई। समस्त विद्याओंमें प्रवीण हो जानेके उपरान्त कुमारने निश्चय किया कि वह चोर बनेगा। कुमारने चोरीके मार्गमें आगे कहीं ममता और मोह बाधक न हों, इससे पहले पिताके यहाँ ही चोरी करना आवश्यक समझा। शुभ काम घरसे ही शुरू हों, Charity begins at home अर्थात् पहली चोरीका लक्ष्य अपने घरका ही राजमहल और अपने पिताका ही राजकोप न हो तो क्या हो।

विद्युच्चरने एक असाधारण चोरके समान अपने पिताके ही राजकोपसे एक सहस्र दीनार चुराये। चोरी असाधारण थी—परिमाणमें, साहसिकतामें और कौशलमें भी। जब महीनों परिश्रम करनेपर भी चोरका पता न लग सका तो कुमारने स्वयं ही जाकर पितासे चोरीकी बात कह दी। पहले तो पिताको विश्वास न हुआ, किन्तु कुमारने बार-बार उसी बातको दुहराया और चोरीका व्यवसाय करनेका अपना निश्चय प्रकट किया तो पिताकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। क्षोभके कारण उनके मुखसे अधिक न निकल सका, केवल यही कहा कि यह तुच्छ और घृणित कार्य तुम्हारे करनेके योग्य नहीं। पिताके द्वारा अनेक प्रकारसे समझाये जानेपर भी कुमारने कुछ नहीं सुना और वह चोरीके पेशेमें प्रवीण हो गया। चारों ओर उसका आतङ्क व्याप्त था, धनिकोंके प्राण ही सूखते थे। निरर्थक हिंसाका प्रयोग करना विद्युच्चरको इष्ट नहीं था। वह एक डाकुओंके दलका मुखिया था।

कुछ समयके उपरान्त वह राजगृही नगरीमें गया और वहाँ वसन्त-

तिलका नामकी वारवनिताके यहाँ ठहरा। कई महीनोंके उपरान्त एक दिन इसी नगरीमें स्वामी जम्बूकुमारके स्वागतकी तैयारीमें सारा नगर अलंकृत किया जा रहा था। जब विद्युच्चरने महाराज श्रेणिकके साथ जम्बूकुमारको देखा और उनका यथार्थ परिचय प्राप्त हुआ, तो उसके मनमें भी अपने कार्योंके प्रति विचिकित्सा उत्पन्न हुई। फलतः परिग्रहको समस्त दुःखोंका कारण ज्ञातकर वह भी विरक्त हो गया। कालान्तरमें उसने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की और अपना आत्म-कल्याण किया।

इस कथाका सर्वस्व कथोपकथन है। कलाकारने कथाकी गतिको किस प्रकार बढ़ाया है, यह निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट है।

"पिताजी, हेयोपादेय हो भी तो आपके कर्त्तव्य और अपने मार्गमें उस दृष्टिसे कुछ अन्तर नहीं जान पड़ता। आपको क्या इतनी एकान्त निश्चिन्तता, इतना विपुल सुख, सम्पत्ति, सम्मान और अधिकार-ऐश्वर्यका इतना ढेर, क्या दूसरेके भागको बिना छीने बन सकता है? आप क्या समझते हैं, आप कुछ दूसरेका अपहरण नहीं करते? आपका 'राजापन' क्या और सबके 'प्रजापन' पर ही स्थापित नहीं हैं? आपकी प्रभुता औरोंकी गुलामीपर ही नहीं खड़ी? आपकी सम्पन्नता औरोंकी ग़रीबीपर सुख दुखपर, आपका विलास उनकी रोटीकी चीखपर, कोष उनके टैक्स पर, और आपका सबकुछ क्या उनके सबकुछको कुचलकर, उसपर ही नहीं खड़ा लहलहा रहा? फिर मैं उसपर चलता हूँ तो क्या हर्ज है? हाँ, अन्तर है तो इतना है कि आपके क्षेत्रका विस्तार सीमित है, पर मेरे कार्यके लिए क्षेत्रकी कोई सीमा नहीं; और मेरे कार्यके शिकार कुछ छटें लोग होते हैं, जब कि आपका राजत्व छोटे-बड़े, हीन-सम्पन्न, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बुड्ढे सबको एक-सा पीसता है। इसीलिए मुझे अपना मार्ग ज्यादा ठीक मालूम होता है।"

"कुमार, बहस न करो। कुकर्ममें ऐसी हठ भयावह है। राजा समाजतन्त्रके सुरक्षण और स्थायित्वके लिए आवश्यक है, चोर उस

तन्त्रके लिए शाप है, घुन है, जो उसमेंसे ही असावधानतासे उठता है और उसी तन्त्रको खाने लगता है।"

"राजा उस तन्त्रके लिए आवश्यक है! क्यों आवश्यक है? इस-लिए कि राजाओं-द्वारा परिपालित परिपुष्ट विद्वानोंकी किताबोंका ज्ञान यही बतलाता है?—नहीं तो बताइए, क्यों आवश्यक है? क्या राजाका महल न रहे तो सब मर जाँय, उसका मुकुट टूटे तो सब टूट जाँय, और सिंहासन न रहे तो क्या कुछ रहे ही नहीं? बताइये फिर क्यों आवश्यक है?"

जैनेन्द्रजीने इस कथामें जनतन्त्रके तत्त्वोंका भी यथेष्ट समावेश किया है। कहानी-कलाकी दृष्टिसे यह पूर्ण सफल कथा है।

श्री बालचन्द्र जैन एम० ए०ने पौराणिक उपाख्यानोंको लेकर नवीन शैलीमें कहानियाँ लिखी हैं। प्रस्तुत संकलनमें कई कहानियाँ हैं। इस संकलनकी सबसे पहली कहानी आत्म-समर्पण है। इसमें नारी-प्रतिष्ठाका मूर्तिमान चित्र है।

आत्म-समर्पण

राजुलके वचनोंसे नारी-प्रभुत्व साकार हो जाता है—"नारीकी क्रियाएँ दम्भ नहीं होतीं स्वामिन्! वह सच्चे हृदयसे काम करती है। विलास में पली नारी संयम और साधनाकी महत्ता अच्छी तरह समझती है।" पुरुषके हृदयमें नारीके प्रति अविश्वास कितना प्रगाढ़ है, यह नेमि कुमारके शब्दोंसे प्रत्यक्ष हो जाता है—"नारी"। नेमिकुमारने आश्चर्यसे उसकी ओर देखा—"क्या तुम सच कह रही हो।"

"साम्राज्यका मूल्य" कहानीमें भौतिक खण्डहरके वक्षस्थलको चीर आध्यात्मिकताका प्रासाद निर्मित किया है। षट्खण्डाधिपति भरतका अहंकार बाहुबलीके त्यागके समक्ष चूर-चूर हो जाता है। उनके निम्न शब्दोंसे उनके दम्भके प्रति ग्लानिका भाव स्पष्ट लक्षित होता है—"मैं तो उनके आपका प्रतिनिधि बनकर प्रजाकी सेवा कर रहा हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है, मैं अकिंचन हूँ।"

'दम्भका अन्त' कहानीमें मानव परिस्थितियोंका सुन्दर चित्रण हुआ है। मनुष्य किस परिस्थितिमें पड़कर अपने हृदयको छुपानेका प्रयत्न करता है, यह कृष्णके जीवनसे स्पष्ट हो जाता है। कथोपकथन तो इस कहानीका बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। सारी कथाकी गतिशीलताको मनोरम और मर्मस्पर्शी बनानेके लिए संवादोंको लेखकने जीवट बनानेमें किसी भी प्रकारकी कमी नहीं की है। "मैंने लोक-व्यवहारकी अपेक्षा ऐसा कहा था भगवन्"! त्रैलोक्य-स्वामीसे कृष्णका जाल प्रच्छन्न न था। नेमिकुमार बोले—"वाणी-हृदयका प्रतिरूप नहीं है, कृष्ण," "तुम्हारी वाणी और विचारोंमें असंगति है"। अहंकारवश मानव नैसर्गिक विधानोंपर विजय प्राप्त करनेको कटिबद्ध हो जाता है, अतः द्वीपायन कहता है—"मैं इतनी दूर भागूँगा कि द्वारिकाका मुँह भी न देखना पड़े और न व्यर्थ ही इतनी हिंसाका पाप भोगना पड़े"। अभिमानके मिथ्याजलधिमें तैरनेवाला कृष्ण अपनेको चतुर नाविकसे कम नहीं समझता; किन्तु जब कर्मोंके तूफानमें पड़ उसकी अहंनिद्रा भंग हो जाती है, तब उसका हृदय स्वयं कह उठता है—"तुम निर्दोष हो जरत् ! भगवान्‌ने सत्य ही कहा था, मेरे दम्भका अन्त हुआ"।

रक्षाबन्धन मर्मस्पर्शी है। इसमें करुणा, त्याग और सहनशीलताकी उद्भावना सुन्दर हुई है। मुनियोंपर भीषण उपसर्ग आ जानेसे समस्त नगर करुणाका प्रतिबिम्ब-सा प्रतीत होता है—"जनता मुनियोंके उपसर्गसे त्रस्त है, नृप वचनबद्ध अपनेको असमर्थ जान महलोंमें छुपा है" कहानीकारने मुनि विष्णु कुमारके वचनों-द्वारा त्याग और संयमका लक्ष्य प्रकट करते हुए कहलाया है—"दिगम्बर मुनि सांसारिक भोग और विभव के लिए अपने शरीरको नहीं तपाते। उन्हें तो आत्म-सिद्धि चाहिए, वही एक अभिलाषा, वही एक शिक्षा"। राजा दम्भ और पाखण्डोंको ढकोसला बतलाते हुए कहता है—"राजाको कोई धर्म नहीं होता मन्त्री

महोदय। प्रजाका धर्म ही राजाका धर्म है। मेरा भी वही धर्म है, जो प्रजाका है। मैं हर धर्म और जातिका संरक्षक हूँ"। रक्षाबन्धन पर्वका प्रचलन भी मुनिरक्षाके कारण हुआ है, यह कथा इस बातकी पुष्टि करती है।

'गुरु दक्षिणा' यह कहानी लेखकके हृदयका प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है। इसमें मृदुल और कर्कश कर्त्तव्योंके मध्य नारी हृदयका स्नेह प्रवाहित है। पर्वतका भीषण दम्भ और नारदका यथार्थ तर्क नारी हृदयको विचलित कर देते हैं; करुणा और वात्सल्यकी सरिता उसे बहा ले जाती है वास्तविक क्षेत्रके उस पार; जहाँ वसुका भौतिक शरीर बिना पतवारकी भाँति डगमग हो रहा है। मन्त्रीके वचनसे वसु चौंक पड़ा—"निर्णय" वह बोला। इस कहानीका स्तम्भ है सत्य और वचन पालनका दृढ़ निश्चय। पर्वतका पक्ष ठीक है, मैं निर्णय देता हूँ"।

'निर्दोष' यह कहानी मानवकी वासनाओं और कमजोरियोंपर पूरा प्रकाश डालती है। कामुक व्यक्तिकी विचारशक्तिका किस प्रकार लोप हो जाता है और दृढ़ संकल्पी व्यक्ति संसारके सारे प्रलोभनोंको किस प्रकार ठुकरा देता है, यह इससे स्पष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। नारी-हृदय कितना संकुचित और दम्भी हो सकता है, यह रानीके वचनोंसे प्रत्यक्ष है "महाराजको सूचना दो, यह नीच मुझसे बलात्कार करना चाहता था"। पापी जब अपनी गलतीको समझ लेता है, तो उसका पाप नहीं रहता, बल्कि कमजोरी माना जाता है। दम्भ और पाखण्डमें ही पापका निवास है। पश्चात्तापकी उष्णतासे पाप जल जाता है, पानी या द्रव-पदार्थ हो नालीसे बह जाता है। रानी भी कह उठती है—"मुझ पापिनीको क्षमा करो सुदर्शन"। पुरुषके हृदयकी उदारता भी यहीं व्यक्त होती है, और सुदर्शन कहता है—"माँ मैं निर्दोष हूँ"।

आत्माकी शक्तिमें बताया गया है कि आत्मशक्ति संसारकी समस्त शक्तियोंकी अपेक्षा अद्वितीय है। जब इस शक्तिका विकास हो जाता है;

तब भय, निराशा और घबड़ाहटका नामोनिशान भी नहीं रहता। "मनुष्यत्व देवत्वसे उच्च है महाराज"। वचनमें अपरिमित आत्मशक्ति निहित है। यही कारण है कि उनके मस्तकके नम्र होते ही शिवलिङ्ग सैकड़ों टुकड़ोंमें विभक्त हो जाता है और वहाँ एक अलौकिक प्रकाशपुञ्ज आविर्भूत होता है। शिवलिङ्गके स्थानपर चन्द्रप्रभ तीर्थंकरका बिम्ब प्रकट होते ही राजा गर्वहीन हो जाता है और कह उठता है—"मैं आपका शिष्य हूँ महाराज"।

'बलिदान' कथा मानव कर्त्तव्यसे ओत-प्रोत है। धर्मप्रेमी, दृढ़प्रतिज्ञ अकलंक अपने अनुजके साथ बौद्धगुरुके समक्ष उपस्थित होते हैं और बुद्धि-चातुर्यद्वारा पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त करते हैं। भेद प्रकट हो जानेपर दोनों बन्दी बना लिये जाते हैं। बन्दीगृहमें निष्कलंक कहता है— "हमारा निश्चय दृढ़ है।" आगे कहता है—"पुरुषार्थ उससे प्रबल होगा भैया।" मैं शक्तिपर विश्वास करता हूँ। आत्मबलिदानकी गाथा इसी एक वाक्यपर आश्रित है—"भैया शीघ्रता करो वे आ पहुँचे। जिनधर्मकी रक्षा तुम्हारे हाथ है।" तलवारोंके बीच निष्कलंक 'नमो सिद्धाणं' कहकर शान्त हो जाता है। वह स्वयं मिटकर धर्मके प्रचार और प्रसारके लिए अपने आग्रहको सुरक्षित रखता है।

'सत्यकी ओर' कहानीमें त्याग और विवेक-शक्ति द्वारा सन्देहका प्रासाद ढहता हुआ चित्रित किया गया है। "मैं सच कहता हूँ महाराज, चोर मेरी दृष्टिसे घुस नहीं सकता। मेरी शिक्षा असमर्थ नहीं हो सकती।" सत्यकी अनुभूति हो जानेपर विद्युच्चर कहता है—"हाँ, श्रीमान् कुख्यात विद्युच्चर मैं ही हूँ"......"मुझे राज्यकी आवश्यकता नहीं महाराज, मुझे इससे घृणा है।"

'मोह-निवारण' इस कहानीमें आत्मिक शक्तिकी सर्वोपरिता व्यक्त की गयी है। कर्म-शक्तिको भी यह शक्ति अपने अधिकारमें रखती है। समदर्शी भगवान् महावीरका उपदेश सभी प्राणी श्रवण करते थे, इस बातको प्रकट

करता हुआ लेखक कहता है—"श्रमण महावीर भगवान्‌की सभामें सभी प्राणियोंको समानाधिकार रहता है। देव और अदेव, मनुष्य और पशु-पक्षी, सब ऊँच और नीचके भेदको भूलकर समान आसनपर बैठते हैं, परस्पर विरोधी प्राणी अपने वैरको भूलकर स्नेहार्द्र हो जाते हैं। विश्वबन्धुत्व का सच्चा आदर्श वहीं देखा जाता है। जब विवेक जाग्रत हो जाता है तो मोहका अन्त होते विलम्ब नहीं होता—"मुझे कुछ न चाहिए कुमार, तुमने मुझे आज सच्चा रूप दिखाया है, तुम मेरे गुरु हो। आज मैं विजयी हुआ कुमार मुझे प्रायश्चित्त दो।"

'अंजन निरंजन हो गया' कहानी में बताया गया है कि विषय-वासनाओंसे झुलसा प्राणी ज्ञानकी नन्हीं आभा पाते ही चमक जाता है। इस अमृतकी फुहरी बून्दें उसे अमर बना देती हैं। श्यामा गणिकाके मोहपाशमें आबद्ध अंजन अपनी आत्मशक्तिपर स्वयं चकित हो जाता है—"चारों ओर प्रकाश छा गया। अंजनको अपनी सफलताका ज्ञान हुआ, पर सफलताके पश्चात् वीरोंको हर्ष नहीं होता। उन्हें उपेक्षा होने लगती है।"

'सौन्दर्यकी परख' में भौतिक सौन्दर्य क्षणभंगुर है, मिथ्या प्रतीतिके कारण इस सौन्दर्यके मोहपाशमें बँधकर व्यक्ति नानाप्रकारके कष्ट सहन करता है। जब भौतिक सौन्दर्यका नशा उतर जाता है तो यथार्थ अनुभव होने लगता है—"आपने यथार्थ कहा महाशय, प्रत्येक वस्तु क्षणिक है। यह विभव, यह शासन, यह शरीर और यह यौवन किसी न किसी क्षण नष्ट होंगे हो। मैं आपका कृतज्ञ हूँ, आपने मेरी भूली आत्मा को सत्पथके दर्शन कराये।"

'वसन्तसेना' कथामें बताया गया है कि जिन्हें हम संसारमें पतित और नीच समझते हैं, उनमें भी सचाई होती है। वे भी ईमानदार, दृढ़-प्रतिज्ञ और कर्त्तव्यपरायण बन सकते हैं। वसन्तसेना वेश्यापुत्री होकर भी पातिव्रतके आदर्शका पूर्ण पालन करती है। प्रेमी चारुदत्तके अकिंचन

हो जानेपर भी वसन्तसेना कहती है—"मेरा धन तुम्हारा है चारु। मैं आपकी दासी हूँ, मुझे अन्य न समझिये नाथ।" जब वसन्तसेनाकी माँ निर्धन चारुदत्तको ठुकराना चाहती है तो वह खीझ उठती है—"कितनी निष्ठुर हो माँ, जिसने तुम्हें छप्पनकोटि दीनारें दीं, उसे ही निर्धन कहती हो।" पुनः चारुदत्तसे प्रार्थना करती है—"मुझे स्वीकार करो नाथ, मैं आपकी गृहिणी बनूँगी।"

'परिवर्तन' कहानी में प्रकट किया गया है कि खूँखार पुरुष नारीके मधुर सहयोगको पाकर ही मनुष्य बनता है। सम्राट् श्रेणिक अभिमानमें आकर मुनिके गलेमें मृत सर्प डाल देता है, घर आनेपर अपने इस कार्यकी आत्मप्रशंसा करता हुआ अपनी पत्नी चेलनासे मुनिनिन्दा करता है। सम्राज्ञी मधुर और विनीत वचनोंमें समझाती हुई सम्राट्के हृदयको परिवर्तित कर देती है। "चार दिन नहीं नाथ, चार महीने बीत जानेपर भी साधु उपसर्ग उपस्थित होनेपर डिगते नहीं।" वचन सुनते ही श्रेणिकका मिथ्याभिमान चूर-चूर हो जाता है।

इस संग्रहकी कहानियाँ अच्छी हैं। पौराणिक आख्यानोंमें लेखकने नयी जान डाल दी है।

प्लॉट, चरित्र और दृश्यावली (Back ground) की अपेक्षासे इस संग्रहकी कहानियोंमें लेखक बहुत अंशोंमें सफल हुआ है किन्तु स्थितिको प्रोत्साहन देने और कहानियोंको तीव्रतम स्थितिमें पहुँचानेमें लेखक असफल रहा है। और उत्सुकता गुण भी पूर्ण रूपसे इन कहानियोंमें नहीं आ सका है। कल्पना और भावका सम्मोहक सामंजस्य करनेका प्रयास लेखकने किया है, पर पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है।

इस बीसवीं शतीकी जैन कहानियोंमें श्री स्व० भगवत् स्वरूप 'भगवत्' की कहानियाँ अधिक सफल हैं। उनकी कुछ कथाएँ तो निश्चय बेजोड़ हैं। रसभरी, उस दिन, मानवी नामके कहानी संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

इस संकलनमें छः कहानियाँ हैं—नारीत्व, अतीतके पृष्ठोंसे, जीवन पुस्तकका अन्तिम पृष्ठ, मातृत्व, चिरजीवी और अनुगामिनी। इनका

मानवी

आधार क्रमशः पद्मपुराण, सम्यक्त्वकौमुदी, निशिभोजन कथा, श्रेणिक चरित्र, पुण्यास्रवकथाकोष और पद्मपुराणका कथानक है। इस संग्रहकी कथाएँ नारी जीवनमें उत्साह, करुण, प्रेम, सतीत्व और सात्त्विक भावोंकी अभिव्यञ्जना करनेमें पूर्ण सक्षम हैं।

'नारीत्व' कहानीमें नारीके उत्साह और सतीत्वका अपूर्व माहात्म्य दिखलाया गया है। इसमें सबला नारीका महान् परिचय है। अयोध्या-नरेश मधूककी महारानीकी वीरताकी स्वर्णिम झलक, कर्त्तव्य और साहस, पतिव्रता नारीका तेज एवं सतीका यश बड़े ही सुन्दर ढंगसे चित्रित हैं। एक ओर नरेश मधूकका दिग्विजयके लिए गमन और दूसरी ओर दुष्ट राजाओंका आक्रमण। ऐसी विकट स्थितिमें महारानीने नारीत्व और कर्त्तव्यके पलड़ेको परखा। देशके प्रतिनिधित्वके लिए कर्त्तव्यको महान् समझ रानी स्वयं रणांगणमें उपस्थित हो जाती है और शत्रुके दाँत खट्टे कर यह बतला देती है कि जो नारीको अबला समझते हैं, वे गलत रास्ते-पर हैं, नारीके रणचण्डी बन जानेपर उसका मुकाबिला कोई नहीं कर सकता है।

मधूकको यह सब न रुचा। एक कोमलाङ्गी नारीका यह साहस! नारीत्वका यह अपमान! महारानी प्रासादके बाहर कर दी गयी। महा-राजको दाहरोग हुआ, सैकड़ों उपचार किये गये, पर कोई लाभ नहीं। अन्तमें वे सती महारानीकी अंजुलीके छींटोंसे रोगमुक्त हुए। नारीके दिव्य तेजके समक्ष अभिमानी पुरुषको झुकना पड़ा, उसे उसकी महत्ताका अनुभव हुआ।

'अतीतके पृष्ठोंसे' शीर्षक कहानीमें नारी-हृदयकी कोमलता, सरलता, कटुता और कठोरताका उचित फल दिखलाया गया है। जिनदत्ताके

उदार और धार्मिक हृदयके प्रकाशमें देवीका खड्ग कुंठित हो जाता और सिर झुकाकर उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। अन्तमें ईर्ष्यालु और घातक हृदय माँकी लाड़ली पुत्री 'कनकश्री'का वध उसी खड्गसे हो जाता है। सत्य सर्वदा विजयी होता है, मिथ्या प्रचार करनेपर भी सत्य छुपता नहीं, सहस्रों आवरण डालनेपर भी सूर्यकी खर रश्मियोंके समान वह प्रकट हो ही जाता है। पाप पानीमें किये गये मलक्षेपणके समान ऊपर उतराये बिना नहीं रहता। अतः कनकश्रीकी ईर्ष्यालु माँका पाप प्रकट हो जाता है और वह दण्ड पाती है। इस कथामें हृदयको स्पर्श करनेकी क्षमता है; घटना-चमत्कार इतना विलक्षण है, जिससे पाठक रसमग्न हुए बिना नहीं रह सकता।

'जीवन पुस्तकका अन्तिम पृष्ठ' कहानीमें रात्रिभोजन-त्यागका विशद माहात्म्य अंकित किया गया है। एक निम्नश्रेणीके वंशमें उत्पन्न बाला व्रत और नियमोंका पालनकर सदाचारसे जीवन व्यतीत करती है। वह कुटुम्बियों-द्वारा नाना प्रकारसे सताये जानेपर भी अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ती। व्रतका सत्परिणाम उसे जन्म-जन्मान्तरोंतक भोगना पड़ता है। मानव जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेके लिए संयम और त्यागकी अत्यन्त आवश्यकता है।

'मातृत्व'में मातृहृदयका सच्चा परिचय दिया गया है, पर वसुदत्ता भी माँके सदृश वात्सल्य करती है। पुत्रके ऊपर प्रेमकी दृष्टि समान होते हुए भी, दोनोंके प्रेममें आकाश-पातालका अन्तर है। जब एक ओर पुत्र और दूसरी ओर अतुल वैभवका प्रश्न उपस्थित होता है, तब असल माता-का हृदय वैभवको ठुकराकर पुत्रको अपना लेता है। माताके निःस्वार्थ हृदयका इतना ज्वलन्त उदाहरण सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

'चिरजीवी' सती गौरवकी अभिव्यंजना करनेवाली कथा है। प्रभा-वती अपने सतीत्वकी रक्षाके लिए अनेक संकट सहन करती है। दुष्टों-द्वारा अपहरण होनेपर भी वह अपने दिव्य तेजको प्रकटकर अपनी शक्तिका

परिचय देती है। उसके तेजसे देवोंके विमान रुक जाते हैं, वे उस सतीको अपने धर्मसे अटल समझ उसकी सब तरहसे सहायता करते हैं तथा उसे संकटमुक्त कर देते हैं। विश्ववन्द्य नारीके इस कर्मका प्रभाव सभीपर पड़ता है, सभी उसका यशोगान करने लगते हैं।

'अनुगामिनी' में नारी पुरुषकी अनुगामिनी होकर अपना उज्ज्वल आदर्श रखती है, उसे भोगकी अभिलाषा नहीं है। जब वज्रबाहुकी तीव्र विषय-वासनाकी कड़ियाँ मुनिराजके दर्शन मात्रसे टूटकर गिर पड़ती हैं और उसके अन्तरमें विरागकी उज्ज्वल आभा चमक उठती है, तब वह अपनी प्रिय पत्नी और वैभवको त्याग योगी हो जाता है। अपने पतिको इस प्रकार विरक्त होते देखकर रानी मनोरमा भी अपने पति और भाईका अनुसरण करती है। सांसारिक प्रलोभन और बन्धनोंको छिन्न-भिन्न कर देती है।

'मानवी' संकलनमें भाषा, भाव, कथोपकथन और चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे लेखकको पर्याप्त सफलता मिली है। पुराने कथानकोंको सजाने और सँवारनेमें कलाकारकी कला निखर गयी है। सभी कहानियोंका आरम्भ उत्सुकतापूर्ण रीतिसे हुआ है। कहानियोंमें रहस्यका निर्वाह भी उत्सुकता जाग्रत करनेमें सक्षम है। विशेषतः तीव्रतम स्थिति (Climax) ज्यों-ज्यों निकट आती है, कहानीमें एक अपूर्व वेगका संचार होता है, जिससे प्रत्येक पाठककी उत्सुकता बढ़ती जाती है। यही है भगवत्की कला, उन्होंने परिणाम सोचनेका भार पाठकोंके ऊपर छोड़ दिया है। श्री भगवत्की अन्य फुटकर कहानियोंमें 'अहिंसा परमो धर्मः', 'उस दिन', 'शिकारी' और 'भ्रातृत्व' आदि कहानियाँ सुन्दर हैं। 'उस दिन' कहानीमें कला पूर्णरूपसे विद्यमान है। कथाका आरम्भ कितने कलापूर्ण ढंगसे हुआ है—

"स्वच्छ आकाश ! शरीरको सुखद धूप। नगरसे दूर रम्य-प्राकृतिक, पथिकोंके पदचिन्होंसे बननेवाला—गैरकानूनी मार्ग : पगडण्डी। इधर-

उधर धान्य-उत्पादक, हरे-भरे तथा अंकुरित खेत ! जहाँ-तहाँ अनवरत परिश्रमके आदी ; विश्वके अन्नदाता—कृषक !...कार्यमें संलग्न और सरस तथा मुक्त छन्दकी तानें अलापनेमें व्यस्त ! सघन वृक्षोंकी छायामें विश्राम लेनेवाले सुन्दर मधुभाषी पक्षियोंके जोड़े ! श्रवण-प्रिय मधु-स्वरसे निनादित वायुमण्डल !...और समीरकी प्राकृतिक आनन्द-दायक झंकृति...।"

"महा-मानव धन्यकुमार चला जा रहा था, उसी पगडण्डीपर। प्रकृतिकी रूप-भंगिमाको निरखता, प्रसन्न और मुदित होता हुआ ! क्षण-प्रतिक्षण जिज्ञासाएँ बढ़ती चलतीं ! हृदय चाहता—'विश्वकी समस्त ज्ञातव्यताएँ उसमें समा जायँ ! सभी कला-कौशल उससे प्रेम करने लगें।'...नया ख़ून जो ठहरा ! सुख और दुलारकी गोदमें पोषण पानेवाला।"

'भ्रातृत्व' कथामें भगवत्‌जीने मरुभूति और विश्वभूतिके पौराणिक कथानकमें एक नवीन जान डाल दी है। प्रतिशोधकी बलवती भावनाका चित्रण इस कथामें हुआ है। कलाकारने पात्रोंका चरित्र चित्रित करनेमें अभिनयात्मक शैलीका प्रयोग किया है, जिससे कथाओंमें जीवटता आ गयी है। तर्कपूर्ण और तथ्य विवेचनात्मक शैलीका प्रयोग रहनेपर भी सरसता कथाओंकी ज्योंकी त्यों है। चलती-फिरती भाषाके प्रयोगने कहा-नियोंको सरल व बुद्धिग्राह्य बना दिया है।

'ज्ञानोदय'में श्री प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यकी चार-पाँच कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। श्रमण प्रभाचन्द्र, जटिल मुनि और बहुरूपिया कहानी अच्छी हैं। यद्यपि 'श्रमण प्रभाचन्द्र'में बीच-बीचमें संस्कृतके श्लोक उद्‌धृत कर कथाके प्रवाहको अवरुद्ध कर दिया है, तो भी उद्देश्यकी दृष्टिसे कहानी अच्छी है। इस कथाका उद्देश्य वर्णव्यवस्थाका खोखलापन दिखलाकर समता और स्वातन्त्र्यका सन्देश देना है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह कहानी सदोष है। टेकनिकका अभाव है।

'जटिल मुनि' कहानीका आरम्भ अच्छा हुआ है, पर अन्त कलात्मक नहीं हुआ है। तीव्रतम स्थिति (Climax) का भी अभाव है, फिर भी कहानीमें मार्मिकता है। कथाकारने कहानी आरम्भ करते हुए लिखा है—"मुनिवर, आज बड़ा अनर्थ हो गया। पुरोहित चन्द्रशर्माने चौलुक्याधिपतिको शाप दिया है कि दस मुहूर्त्तमें वह सिंहासनके साथ पातालमें धँस जायँगे। दुर्वासाकी तरह वक्र भ्रुकुटी लाल नेत्र और सर्पकी तरह फुँफकारते हुए जब चन्द्रने शाप दिया तो एक बार तो चौलुक्याधिपति हतप्रभ हो गये। मैं उन्हें सान्त्वना तो दे आया हूँ। पर वह आन्दोलित है। मुनिवर चौलुक्याधिपतिकी रक्षा कीजिये।" राजमन्त्रीने घबड़ाहटसे कहा। कहानीमें उत्सुकता गुणका निर्वाह अन्ततक नहीं हो सका है। एक सबसे बड़ा दोष इन कहानियोंमें प्रवाह-शैथिल्य भी पाया जाता है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें घटनाओंके इतिवृत्त रूपके सिवाय अन्य कथातत्त्व नहीं आ सके हैं।

गहरे पानी पैठ

इस संकलनमें श्री अयोध्याप्रसाद 'गोयलीय'की ११८ कहानियाँ, किंवदन्तियाँ, संस्मरण और आख्यान तथा चुटकुले हैं। श्री गोयलीयने जीवन-सागर और वाङ्मयको मथकर इन रत्नोंको निकाला है। ये सब कथाएँ तीन खण्डोंमें विभक्त हैं—

१. बड़े जनोंके आशीर्वादसे (५५)

२. इतिहास और जो पढ़ा (४७)

३. हियेकी आँखोंसे जो देखा (१६)

इन कथाओंमें लेखककी कलाका अनेक स्थलोंपर परिचय मिलता है। आकर्षक वर्णनशैली और टकसाली मुहावरेदार भाषा हृदय और मनको पूरा प्रभावित करती हैं। इनमें वास्तविकताके साथ ही भावको अधिकाधिक महत्त्व दिया गया है। वस्तुतः श्री गोयलीयने जीवनके अनुभवोंको लेकर मनोरंजक आख्यान लिखे हैं। साधारण लोग जिन बातोंकी उपेक्षा

करते हैं, आपने उन्हींको कलात्मक शैलीमें लिखा है। अतः सभी कथाएँ जीवनके उच्च व्यापारोंके साथ सम्बन्ध रखती हैं।

यद्यपि कथानक, पात्र, घटना, द्रव्यप्रयोग और भाव ये पाँच कहानीके मुख्य अंग इन आख्यानोंमें समाविष्ट नहीं हो सके हैं, तो भी कहानियाँ सजीव हैं। जिस चीजका हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ता है, वह इनमें विद्यमान है। वर्णनात्मक उत्कंठा (Narrative Curiosity) इन सभी कथाओंमें है।

भाषा इन कथाओंमें कथाके प्रवाहको किस प्रकार आगे बढ़ाती है, यह निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट है।

"तुम्हारे जैसे दातार तो बहुत मिल जायेंगे, पर मेरे जैसे त्यागी विरले ही होंगे, जो एक लाखको ठोकर मारकर कुछ अपनी ओरसे मिलाकर चल देते हैं।" —त्यागी पृ० २४

"सूर्यके सन्ध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें व्यस्त थी। जुगनू सरोंपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे, कुमरीने सरुके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे गुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और वैशाखनन्दन अपने मँजे हुए कंठसे श्यामकल्याण आलापकर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उल्लूकखाँ वल्द बूमखाँ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगीदड़ किशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समाँ बाँध रहे थे।"

ईर्ष्याका परिणाम विनोदात्मक शैलीमें कितनी सरलतासे लेखकने व्यक्त किया है। यह छोटा-सा आख्यान हृदयपर एक अमिट रेखा खींच देता है।

"भोजनके समय एकके आगे घास और दूसरेके आगे भुस रख दिया गया। पण्डितोंने देखा तो आगबबूला हो गये। सेठ जी ! हमारा यह अपमान !"

"महाराज ! आप ही लोगोंने तो एक दूसरेको गधा और बैल बतलाया है।"

'क्या सोचें' कथामें लेखकने बड़े ही कौशलसे सांसारिक विषयोंके चिन्तनसे विरत होनेका संकेत किया है। जिस बातको वह कहना चाहता है, उसे उसने कितनी सरलतापूर्वक कलात्मक ढंगसे व्यक्त किया है।

"एक ध्यानाभ्यासी शिष्य ध्यानमें मग्न थे। और दाल-बाटी आदि बनाकर आस्वादन करनेका चिन्तन कर रहे थे कि अचानक उसके मुखसे सीकारे की-सी आवाज निकल पड़ी।" पासमें बैठे हुए गुरुदेवने पूछा—"वत्स क्या हुआ ?"

शिष्य—"गुरुदेव, मैंने आज ध्यानमें दाल-बाटी बनानेका उपक्रम किया था और मिर्च तेज हो जानेसे आस्वादन करनेमें सीकारेकी आवाज निकल पड़ी और मेरा ध्यान टूट गया। मैं यह न जान सका कि यह सब उपक्रम कल्पना मात्र है। आप ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे इससे भी ज़्यादा ध्यान-मग्न हो सकूँ।"

गुरुदेव मुस्कराकर बोले-"वत्स ! ध्यानका विषय आत्मचिन्तन है, दाल-बाटी नहीं। उससे ध्यान सार्थक और आत्मकल्याण संभव है। व्यर्थकी वस्तुओंको त्यागकर हितकारी चीज़ोंको ही अपने अन्दर स्थान दो।"

'हियेकी आँखोंसे' गोयलीयने जिन रत्नोंको खोजा है, उनकी चमक अद्भुत है। अधिकांश रचनाएँ मार्मिक और प्रभावशाली हैं। भाषा और शैलीकी सरलता गोयलीयकी अपनी विशेषता है। उर्दू और हिन्दीका ऐसा सुन्दर समन्वय अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा। यही कारण है कि

एक साधारण शिक्षित पाठक भी इन कहानियोंका रसास्वादन कर सकता है। अभिव्यञ्जना इतने चुभते हुए ढंगसे हुई है, जिससे आख्यानोंका उद्देश्य ग्रहण करनेमें हृदयको तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता। मिश्रीकी डली मुँहमें डालते ही धीरे-धीरे घुलने लगती है और मिठास अपने आप भीतर तक पहुँच जाती है। "इज्जत बड़ी या रुपया" कहानीकी निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

चचा हँस कर बोले—"भई जितनी बात लिखनेकी थी, वह तो लिख ही दी थी। मेरा ख्याल था तुम समझ जाओगे कि कोई-न-कोई बात ज़रूर है। वर्ना दो आनेके पुराने अँगोछेके लिए दो पैसेका कार्ड कौन खराब करता? और रुपयोंका जिक्र जान-बूझ कर इसलिए नहीं किया कि अगर कोई उठा ले गया होगा तो भी तुम अपने पाससे दे जाओगे। अपनी इस असावधानीके लिए तुम्हें परेशानीमें डालना मुझे इष्ट न था।"

जैन सन्देशमें श्री ठाकुरके नामसे प्रकाशित कथाएँ, जिनके रचयिता श्री पं० बलभद्रजी न्यायतीर्थ हैं, सुन्दर हैं। इन कथाओंमें कथासाहित्यके तत्त्वोंके साथ जीवनकी उदात्त भावनाओंका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। शैली प्रवाहपूर्ण है, भाषा परिमार्जित और सुसंस्कृत है। किन्तु आरम्भिक प्रयास होनेके कारण कथानक, संवाद और चरित्र-चित्रणमें कलाके विकासकी कुछ कमी है।

जैन कथा साहित्यमें अनुपम रत्नोंके रहनेपर भी, अभी इस क्षेत्रमें पर्याप्त विकासकी आवश्यकता है। यदि जैन कथाएँ आजकी शैलीमें लिखी जायें तो इन कथाओंसे मानवका निश्चयसे नैतिक उत्थान हो सकता है। आज तिजोड़ियोंमें बन्द इन रत्नोंको साहित्य-संसारके समक्ष रखनेकी ओर लेखकोंको अवश्य ध्यान देना होगा। केवल ये रत्न जैन समाजकी निधि नहीं हैं, प्रत्युत इन पर मानव मात्रका स्वत्व है।

नाटक

अतीतकी किसी असाधारण और मार्मिक घटनाको लेकर उसका अनुकरण करनेकी प्रवृति मानवमात्रमें पायी जाती है। इसी प्रवृत्तिका फल नाटकोंका सृजन होना है। जैन लेखक भी प्राचीन कालसे अपने प्राचीन नाटकोंका अनुवाद तथा समयानुसार पुराने कथानकोंको लेकर नवीन नाटक लिखते आ रहे हैं। इस शताब्दीके प्रारम्भमें श्री जैनेन्द्र-किशोर आरा निवासीका नाम नाटककारकी दृष्टिसे आदरके साथ लिया जा सकता है। आपने अपने जीवनमें लगभग १ दर्जनसे अधिक नाटक लिखे हैं। यद्यपि इन नाटकोंकी भाषाशैली प्राचीन है, तो भी इन नाटकों-के द्वारा जैन हिन्दी साहित्यकी पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई है। "सोमा सती" और "कृपणदास" ये दो प्रहसन भी आपके द्वारा रचित हैं। आरामें आपके प्रयत्नसे एक जैन नाटकमण्डली भी स्थापित थी। यह मण्डली आपके रचित रूपकोंका अभिनय करती थी। विदूषकका पार्ट आप स्वयं करते थे। बहुत दिनों तक इस मण्डलीने अच्छा कार्य किया, पर आपकी मृत्यु हो जानेके पश्चात् इसका कार्य रुक गया।

श्री जैनेन्द्रकिशोरके सभी नाटक प्रायः पद्यबद्ध हैं। उर्दूका प्रभाव पद्योंपर अत्यधिक है। "कलिकौतुक"के मंगलाचरणके पद्य सुन्दर हैं। आपके ये नाटक अप्रकाशित हैं और आरानिवासी श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके पास सुरक्षित हैं।

मनोरमा सुन्दरी, अंजना सुन्दरी, चीर द्रौपदी, प्रद्युम्न चरित और श्रीपालचरित्र नाटक साधारणतया अच्छे हैं। पौराणिक उपाख्यानोंको लेखकने अपनी कल्पना-द्वारा पर्याप्त सरस और हृदय-ग्राह्य बनानेका प्रयास किया है। टेकनिककी दृष्टिसे यद्यपि इन नाटकोंमें लेखकको पूरी सफलता नहीं मिल सकी है, तो भी इनका सम्बन्ध रंगमंचसे है। कथा-विकासमें नाटकोचित उतार-चढ़ाव विद्यमान है। वह लेखककी कला-

विज्ञताका परिचायक है। इनके सभी नाटकोंका आधार सांस्कृतिक चेतना है। जैन संस्कृतिके प्रति लेखककी गहन आस्था है। इसलिए उसने उन्हीं मार्मिक आख्यानोंको अपनाया है, जो जैन संस्कृतिकी महत्ता प्रकट कर सकते हैं।

प्रहसनोंमें "कृपणदास" और "रामरस" अच्छे प्रहसन हैं। "रामरस" जीवनके उत्थान-पतनकी विवेचना करनेवाला है। कुसंगति मनुष्यका सर्वनाश किस प्रकार करती है यह इस प्रहसनसे स्पष्ट है।

रूपकात्मक नाटक लिखनेकी प्रथाका जैन साहित्य-निर्माताओंने अधिक अनुसरण किया है। संस्कृत-साहित्यमें कई नाटक इस शैलीके लिखे गये हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोहके कारण मानव निरन्तर अशान्त होता रहता है। अतः अहिंसा, दया, क्षमा, संयम और विवेककी जीवनोत्थानके लिए परम आवश्यकता है। हिन्दी-भाषाके कलाकारोंने संस्कृतके रूपकात्मक कई नाटकोंका हिन्दीमें अनुवाद किया है। इस शैलीके अब तकके अनूदित जैन नाटकोंमें निम्न दो नाटक मुझे अधिक पसन्द हैं। अतएव यहाँ इन दोनों नाटकोंका परिचय दिया जा रहा है।

इस नाटकका हिन्दी अनुवाद श्री पं० नाथूराम प्रेमीने किया है। अनुवादमें मूलभावोंकी अक्षुण्णताके साथ प्रवाह है। पद्य ब्रजभाषा और

ज्ञानसूर्योदय[1]

खड़ीबोली दोनोंही भाषाओंमें लिखे गये हैं। अनूदित होनेपर भी इसमें मौलिक नाटकका आनन्द प्राप्त होता है। इसकी कथावस्तु आध्यात्मिक है। इसमें नाटकीय ढंगसे ज्ञानकी महत्ता बतलाई गई है।

इस नाटकमें पात्रोंका चरित्रचित्रण और कथोपकथन दोनों बहुत सुन्दर हैं। शास्त्रीय नाटक होनेसे नान्दीपाठ, सूत्रधार आदि हैं। मति और विवेकका वार्तालाप कितना प्रभावोत्पादक है, यह निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट है।

---

१. जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई। सन् १९०९।

मति—आर्यपुत्र ! आपका कथन सत्य है तथापि जिसके बहुतसे सहायक हों उस शत्रुसे हमेशा शंकित रहना चाहिए।

विवेक—अच्छा कहो, उसके कितने सहायक हैं ? कामको शील मार गिरावेगा। क्रोधके लिए क्षमा बहुत है। सन्तोषके सम्मुख लोभकी दुर्गति होवेगी ही और बेचारा दम्भ-कपट तो सन्तोषका नाम सुनकर छूमन्तर हो जायगा।

मति—परन्तु मुझे यह एक बड़ाभारी अचरज लगता है कि जब आप और मोहादिक एक ही पिताके पुत्र हैं तब इस प्रकार शत्रुता क्यों ?

विवेक—......आत्मा कुमतिमें इतना आसक्त और रत हो रहा है कि अपने हितको भूलकर वह मोहादि पुत्रोंको इष्ट समझ रहा है, जो कि पुत्राभास हैं और नरक गतिमें ले जानेवाले हैं।

नाटकमें बीच-बीचमें आई हुई कविता भी अच्छी है। क्षमा शान्तिसे कहती है कि बेटी विधाताके प्रतिकूल होनेपर सुख कैसे मिल सकता है ?

जानकी हरन वन रघुपति भवन औ,
भरत नरायनको वनचरके बान सों।
वारिधिको बन्धन, मयंक अंक क्षयी रोग,
शंकरकी वृत्ति सुनी भिक्षाटन बान सों॥
कर्ण जैसे बलवान कन्याके गर्भ आये,
बिलखे वन पाण्डुपुत्र जूआके विधानसों।
ऐसी ऐसी बातें अवलोक जहाँ तहाँ बेटी,
विधिकी विचित्रता विचार देख ज्ञानसों॥

इस नाटकमें दार्शनिक तत्त्वोंका व्याख्यात्मक विवेचन भी प्रायः सर्वत्र है। भाव, भाषा और विचारोंकी दृष्टिसे रचना सुन्दर है।

इसमें अकलंक और निकलंकके महान् जीवनका परिचय है। कथानक छोटा-सा है, प्रासंगिक कथाओंका समावेश नहीं हुआ है। महाराज

अकलंकनाटक

पुरुषोत्तमने नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निका पर्वके अवसरपर आठ दिनोंके लिए ब्रह्मचर्य ग्रहण किया। साथ ही इनके दोनों पुत्र अकलंक और निकलंकने भी आजन्मके लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। जब विवाहकाल निकट आया और विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं तो पुत्रोंने विवाहसे इन्कार कर दिया और वे जैनधर्मकी पताका फहरानेके लिए कटिबद्ध हो गये।

उस समय बौद्ध धर्मका बोलबाला था, अन्य धर्मोंका प्रभाव क्षीण हो रहा था। शिक्षा-दीक्षा भी उन लोगोंके हाथमें थी। अतएव वे दोनों भाई बौद्ध-पाठशालामें छुपकर अध्ययन करने लगे। एक दिन बौद्धगुरु जिस पाठको पढ़ा रहे थे वह अशुद्ध था। अतः उसको शुद्ध करने लगे। पर जब माथापच्ची करनेपर भी उस पाठको शुद्ध न कर सके तो वह शालासे बाहर निकलकर घूमने लगे। अकलंकने चुपचाप उस पाठको शुद्ध कर दिया। जब लौटकर गुरु आये तो उस पाठको शुद्ध किया हुआ देखकर चकित हुए और विचारने लगे कि अवश्य इनमें कोई जैन हैं। अन्यथा इसे शुद्ध नहीं कर सकता था अतएव परीक्षाके लिए उन्होंने कई प्रकारके षड्यन्त्र किये, अन्तमें अकलंक और निकलंक पकड़े गये। और उन्हें कारागृहमें बन्द कर दिया गया। प्रातःकाल ही अकलंक और निकलंकको फाँसी होनेवाली थी अतः रातमें वे किसी तरह भाग निकले। रास्तेमें धर्मरक्षाके लिए छोटे भाई निकलंकने प्राण दिये और अकलंक जीवित बचकर निकल भागे। विरक्त होकर अकलंक जैनधर्मका उद्योत करने लगे।

महारानी मदनसुन्दरी जैन धर्मकी उपासिका थी, वह रथोत्सव करना चाहती थी, किन्तु बौद्ध राजगुरु उसके इस कार्यमें विघ्न थे। उन्होंने कहा कि धार्मिक वाद-विवादमें पराजित होनेपर ही जैन धर्मका रथोत्सव हो सकेगा अन्यथा नहीं।

राजगुरुके इस आदेशसे रानी चिन्तित रहने लगी। उसने अन्न-जल

का त्याग कर दिया। स्वप्नमें चक्रेश्वरी देवीने उसे सांत्वना प्रदान की और अकलंकदेवको बुलानेका आदेश दिया। दूसरे दिन अचानक ही अकलंकदेवका राजसभामें आगमन हुआ। दोनों धर्मका विवाद आरंभ हुआ। कई दिनोंतक अकलंकका राजगुरुके साथ शास्त्रार्थ होता रहा पर जय-पराजय किसीको भी न मिली। अतः चिन्तित होकर उन्होंने चक्रेश्वरी देवीकी आराधना की। देवीने कहा—पर्देके अन्दरसे तारा देवी बोल रही है, अतः दुबारा उत्तर पूछनेपर वह चुप हो जायगी। चक्रेश्वरी देवीने और भी पराजयके लिए अनेक बातें बतलाईं। अगले दिन राजगुरु शास्त्रार्थमें पराजित हुए और धूमधामसे रथ निकाला गया।

इस नाटकके कथानकमें मूल कथानकको छोड़, व्यर्थ प्रसंग नहीं हैं। आरंभमें मंगलाचरण तथा सूत्रधार और नटीका आगमन हुआ है। इसमें तीन अंक हैं और दृश्य-परिवर्त्तन भी यथायोग्य हुए हैं। यद्यपि शैली प्राचीन ही है; फिर भी कथोपकथन तथा पात्रोंका चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। यह नाटक अभिनय योग्य है।

अकलंक देवके इसी आख्यानको लेकर श्री पं० मक्खनलाल जी दिल्ली वालेने भी "अकलंक" नामका एक नाटक लिखा है। यह भाव और भाषाकी दृष्टिसे साधारण है तथा अभिनय गुण इसकी प्रमुख विशेषता है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे साधारण होनेपर भी सरस है।

सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रिय तत्त्वोंके आधार पर काल्पनिक कथानकको लेकर यह नाटक लिखा गया है। इसके संपादक श्री पं०

महेन्द्रकुमार

अर्जुनलाल सेठी हैं। इसमें गृह और समाजका साकार चित्र मिलता है। शराब और मदके प्यालेको पीकर धनिकपुत्र समाजको बरबाद कर देते हैं। परिवार जुआ और सट्टा वगैरहमें फँसकर कलहका केन्द्र बनता है। पूँजीपतियोंका मनमाना व्यवहार, दहेजकी भयानकता, अपटूडेट महिलाओंकी कटुता आदि समाजिक बुराइयोंका परिणाम इसमें दिखलाया है।

कथाकी समस्त घटनाएँ शृङ्खलाबद्ध नहीं हैं, सभी घटनाएँ उखड़ी हुई सी हैं। लेखकका लक्ष्य सामाजिक बुराइयोंको दिखला कर लोक-शिक्षा देना है।

सुमेरुचंद एक सेठ हैं। इनकी पत्नी अत्यन्त कठोर और कर्कशाहृदया है। वह अपने देवरको फूटी आखों भी देखना नहीं प्रसन्द करती। पत्नी की बातोंमें सुमेरुको विश्वास है। अतः महेन्द्रको निशिदिन भाई और भावजकी झिड़कियाँ सहनी पड़ती हैं। इधर कलहसे घबड़ाकर महेन्द्र विदेश जानेको उत्सुक होता है। उसने माँके समक्ष अपनी इच्छा प्रकट की। माँने प्यारे पुत्रको विदेश न जाने देनेके लिए अनेक यत्न किये पर वह न माना। चला ही गया भारत माँके उद्धारके लिए और संलग्न हो गया देश-सेवामें। जुआरी सुमेरु जुएमें सब हार घर आया और पत्नीके आभूषण माँगने लगा। पत्नीकी त्यौरिया बदल गईं। इतनेमें एक भृत्य उसे बुलाकर ले गया।

एक ब्रह्मचारी और उनके मित्र नन्दलाल जापान जा रहे थे। मार्गमें मादक कान्फ्रेन्स होते देख रुक गये। एक विशाल मण्डपमें कान्फ्रेन्सका जलसा हो रहा था, नशेमें सब मस्त थे। वे देशमें अधिकसे अधिक भंग, तम्बाकू, सिगरेट आदिका प्रचार करनेका प्रस्ताव पास कर रहे थे। ब्रह्मचारी नवयुवकोंकी इस तबाहीको देखकर परम दुखित हुए। भाषण-द्वारा उसका उत्थान करनेकी चेष्टा की।

इसी समय एक सुशीला कन्याका स्वयंवर रचा जा रहा था जिसमें अनेक कुमारोंके साथ महेन्द्र भी पहुँचा, वरमाला महेन्द्रके गलेमें पड़ी। दोनोंका विवाह हो गया।

ब्रह्मचारी राजदरबारमें पहुँचा और लगा राजाके समक्ष राजकुमारकी चरित्रभ्रष्टता, मद्यपान और व्यभिचारके समस्त दूषण प्रकट करने। सुमित्राके साथ बलात्कार करनेका प्रमाण भी राजाको दिया। उन्होंने दरबारमें महेन्द्र, सुमित्रा और राजकुमार तीनोंको बुलाया। राजकुमारको

क़ैदकी सजा मिली और उन दोनोंका सम्मान किया गया। ब्रह्मचारी और सुमित्राके आग्रहसे राजकुमारको छोड़ दिया गया। प्रजा-कल्याण तथा ज्ञानके प्रचारके लिए महेन्द्रको नेता बनाया गया। ब्रह्मचारी और कोई नहीं था वह सुमित्राका पिता था यह भेद अब खुला।

इस नाटकमें कई भाषाओंका संमिश्रण है। पात्र भी कई तरहके हैं कोई मारवाड़ी, कोई अपटूडेट, कोई साधारण गृहस्थ। अतः भाषा भी भिन्न प्रकारकी व्यवहृत हुई हैं। कुणघणा आदि मारवाड़ी और करै छै, उड़ानु छूँ आदि गुजराती शब्दोंका प्रयोग भी इसमें हुआ है। यों तो साधारणतः खड़ी बोली है। बीच-बीचमें जहाँ तहाँ अँग्रेज़ीके शब्दोंका भी प्रयोग खुलकर किया गया है। विश्रृंखलित कथाके रहनेपर भी अभिनय किया जा सकता है।

अंजनासुंदरीका कथानक इतना लोकप्रिय रहा है जिससे इस कथानकका आलंबन लेकर उपन्यास, कथाएँ, प्रबंध-काव्य और कई नाटक लिखे गये हैं। सुदर्शन और कन्हैयालालने पृथक्-पृथक् नाटक रचे हैं। इन दोनों नाटककारोंकी कथा एक है। यद्यपि सुदर्शनने अंजना और कन्हैयालालने अंजनासुंदरी नाम रखे हैं फिर भी दोनोंकी कथावस्तुमें पर्याप्त साम्य है। और दोनोंका लक्ष्य भी भारतीय नारीके आदर्श-चरित्रको चित्रित करना है। दोनों नाटकोंमें अंजनाका करुणदृश्य हृदयद्रावक है। पर सुदर्शनजीकी रचना साहित्यिक दृष्टिकोणसे उच्च कोटिकी है।

अंजना

प्रकृतिके सुकोमल दृश्योंके सहारे मानवीय अंतःकरणको खोलकर प्रत्यक्ष करा देनेकी कला सुदर्शनजीमें है। इसलिए अंजनामें प्रकृतिके माधुर्य और सौन्दर्यका सम्बन्ध जीवनके साथ साथ चित्रित किया गया है। सुदर्शनजीके अंजना नाटकमें वाणी ही नहीं, हृदय बोलता हुआ दृष्टि-गोचर होता है। सुखदाके विचारोंका क्रम देखिए—

"सुखदा—एक एक कर दस वर्ष बीत गये, परन्तु मेरी आँखोंके सम्मुख अभी तक वही रम्य मूर्त्ति उसी सुन्दरताके साथ घूम रही है। यही ऋतु था, यही समय था, यही स्थान था, यही वृक्ष था, सूर्य अस्त हो रहा था, मन्द मन्द वायु चल रहा था। प्रकृतिपर अनूठा यौवन छाया हुआ था।"

अंजनासुन्दरी नाटककी मूल कथामें थोड़ा परिवर्त्तन करके कार्य-कारणके सम्बन्धको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की गई है। पर यह उतना सफल नहीं हो सका है, जितना अंजना में हुआ है। उदाहरणार्थ—मूल कथानुसार अंजना अपनी सासको पवनंजय-द्वारा दी गई अँगूठी दिखाती है फिर भी उसे विश्वास नहीं होता और घरसे निकाल देती है। यह बात पाठकोंको कुछ जंचती-सी नहीं। कन्हैयालालने इस घटनाको हृदयग्राह्य बनानेके लिए अँगूठीके खो जानेकी कल्पना की है, परन्तु सुदर्शनने इस पहेलीको और स्पष्ट करनेके लिए लिखा है कि पवन अपनी अँगूठीके नगके नीचे अपने हस्ताक्षरांकित एक कागजका टुकड़ा रखता था। ललिताने अँगूठी बदल ली। अंजनाको इस बातकी जानकारी नहीं थी, अतः असल अँगूठीके अभावमें सासका सन्देह करना स्वाभाविक था।

श्रीपाल नाटकका दूसरा स्थान है। इसमें मैनासुन्दरीकी अपेक्षा अधिक नाट्यतत्त्व पाये जाते हैं। कथोपकथन भी प्रभावक हैं।

श्रीपाल—"हे चन्द्रवदने! आपने जो कहा ठीक है क्षत्रिय लोग किसीके आगे हाथ नीचा नहीं करते हैं और कदाचित् कोई ऐसा करे भी तो ऐसा कौन कायर और निर्लोभी पुरुष होगा जो दूसरोंको राज्य देकर आप प्रायश्चित्त-जीवन व्यतीत करेगा"।

इसमें गद्य और पद्य दोनोंमें लक्ष्यकी मधुरता और क्रमबद्धता है। अभिनयकी दृष्टिसे यह नाटक बहुत अंशोंमें सफल रहा है। भाषामें उर्दू-शब्दोंकी भरमार है। मैनासुन्दरी नाटकका अभिनय किया जा सकता है, पर उसमें कला नहीं है। व्यर्थका अनुप्रास मिलानेके लिए भाषाको

कृत्रिम बनाया गया है। शैली भी बोझिल है। साहित्यिकताका अभाव है।

कमलश्री

कमलश्री और शिवसुन्दरी नाटकके रचयिता न्यामत हैं। ये दोनों नाटक भी पौराणिक हैं और अभिनय योग्य हैं।

हस्तिनापुरके महाराज हरिवलकी कन्या कमलश्री रूपवती होनेके साथ-साथ शीलगुणयुक्ता थी। सेठ धनदेव उसके रूप और गुणोंपर आसक्त हो गया और इससे विवाह-सम्बन्ध कर लिया। कुछ समयोपरान्त कमलश्रीको संतानका अभाव खटकने लगा और वह भावावेशमें आकर उदासीन हो मुनिराजके समीप दीक्षा लेने चली गई। मुनिराजने उसे गर्भिणी जान दीक्षा न दी। गर्भकी बात जानकर कमलश्री परम प्रसन्न हुई।

कथानक

समय पाकर भविष्यदत्त नामक पुत्रका जन्म हुआ। कुछ समय पश्चात् एक दिन धनदेव धनदत्तकी पुत्री सुरूपाको देखकर आसक्त हो गया और उसके साथ विवाह कर लिया। कमलश्रीको उसने उसके पीहर भेज दिया। सुरूपाको बन्धुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भविष्यदत्त भी विमाताके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर अपने ननिहाल चला गया।

सुरूपाके लाड़-प्यारसे बंधुदत्त बिगड़ गया। जब बड़ा हुआ तो भविष्यदत्तके साथ व्यापार करने विदेशको चला। मार्गमें धोखा देकर बंधुदत्तने भविष्यदत्तको 'मैनागिरि' पर्वतपर छोड़ दिया और अपने साथियोंको लेकर आगे चला गया। वहाँ भविष्यदत्तको भूख-प्यासजन्य अनेक कष्ट सहने पड़े। भाग्यवश तिलकपुर पट्टन पहुँचनेपर तिलकासुन्दरी नामक कन्यासे उसका विवाह हुआ। इधर बंधुदत्तका जहाज चोरोंने लूट लिया। भविष्यदत्त तिलकासुन्दरीके साथ हस्तिनापुरको लौट रहा था कि मार्गमें दयनीय दशामें बन्धुदत्त भी आ मिला। भविष्य-

दत्तने उसे सांत्वना दी। दुर्भाग्यवश तिलकासुन्दरीकी मुद्रिका छूट गई थी अतः यह उसे लेनेके लिए जहाजसे उतर गया।

अब क्या था दुष्ट बन्धुदत्तको धोखा देनेका अच्छा सुअवसर हाथ आया। उसने जहाज आगे बढ़ा दिया और तिलकासुन्दरीपर आसक्त होकर उसका सतीत्व-नाश करना चाहा। किन्तु उसके दिव्य तेजके समक्ष उसे पराजित होना पड़ा।

बन्धुदत्त अतुल सम्पत्ति और तिलकाको लेकर घर पहुँचा। सुरूपा पुत्रका वैभव देखकर आनन्दमग्न हो गई। तिलकाके साथ विवाह होने-का समाचार नगर भरमें फैल गया। जब भविष्यदत्त लौटकर आया तो किनारेपर जहाजको न पाकर बहुत दुखी हुआ। पर पीछे विमानमें बैठ हस्तिनापुर चला आया। पुत्र और अधीर माँ कमलश्रीका मिलाप हुआ। बन्धुदत्तके दुराचारका समाचार नगरभरमें फैल गया। मलिनवदना तिलकाका मुँह प्रसन्न हो गया। पतिके मिलनेकी आशाने उसके अशांत जीवनको शांति-प्रदान की। राज-दरबारमें बन्धुदत्त और सुरूपाका काला मुँह हुआ।

भविष्यदत्त और तिलकासुन्दरी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। सेठ धनदेवको कमलश्रीसे क्षमा माँगनी पड़ी। बन्धुदत्त क्रोधित होकर पोदनपुरके युवराजके समीप पहुँचा और गजपुरके महाराज भू-पालकी कन्या सुमतासे विवाह करनेको उत्तेजित कर दिया। राजा भूपाल भविष्यदत्तको वर निर्वाचित कर चुके थे। अतः दोनों राजाओंमें भयंकर युद्ध हुआ। भविष्यदत्तने सेनापति पदपर प्रतिष्ठित हो अतीव वीरताका परिचय दिया। युद्धमें भविष्यदत्तको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हुई। सुमताका भविष्यदत्तके साथ पाणिग्रहण हुआ। तिलकासुन्दरी पट्टरानी बनाई गई।

इस नाटकमें वातावरणकी सृष्टि इतने गंभीर एवं सजीव रूपमें की गई है कि अतीत हमारे सामने आकर उपस्थित हो जाता है। धोखा और कपटनीति सदा असफल रहती हैं, यह इस नाटकसे स्पष्ट है। कथो-

पकथन स्वाभाविक बन पड़ा है । चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह नाटक सुरुचिपूर्ण और स्वाभाविक है। इस नाटककी शैली पुरातन है । भाषा उर्दूमिश्रित है। तथा एकाध स्थलपर अस्वाभाविकता भी प्रतीत होती है।

श्री भगवत्स्वरूपका यह देश-दशा-प्रदर्शक, करुणरस प्रधान नाटक है। इसमें सामाजिक युगकी विषमता और उसके प्रति विद्रोहकी भावना

ग़रीब

है। पूँजीपतियोंकी ज़्यादती और ग़रीबोंकी करुण आह एवं धनी और निर्धनके हृदयकी विशेषताओंका सुन्दर चित्रण किया गया है। रुपयोंकी माया और लक्ष्मीकी चंचलताका दृश्य (स्वरूप) दिखाकर लेखकने मानव-हृदयको जगानेका यत्न किया है। यह सामाजिक नाटक अभिनय योग्य है। इसमें अनेक रसमय दृश्य वर्तमान हैं, जो दर्शकोंको केवल रसमय ही नहीं बनाते, किन्तु रसविभोर कर देते हैं। भगवत्‌ने वस्तुतः सीधी-सादी भाषामें यह सुन्दर नाटक लिखा है।

इस नाटकके रचयिता श्री ब्रजकिशोर नारायण हैं। इसमें विद्याकी

वर्द्धमान–महावीर

अनन्यतम विभूति भगवान् महावीरके आदर्श जीवनको अंकित किया गया है।

वर्द्धमान जन्मसे ही असाधारण व्यक्ति थे। बचपनके साथी भी उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर उनकी जयजयकार मनाते रहते थे।

कथानक

भगवान् वर्द्धमानकी अद्भुत वीरता और अलौकिक कार्योंके कारण उनके माता-पिताने भी उन्हें देवता स्वीकार कर लिया था। जब कुमार वयस्क हुए तो पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशलाको पुत्र-विवाहकी चिन्ता हुई ; किन्तु विरागी महावीर बराबर टालमटूल करते रहे। जब माता-पिताका अधिक आग्रह देखा तो उन्होंने एक विनीत आज्ञाकारी पुत्रके समान उनके आदेशका पालन किया और विवाह कर लिया। जब माता-पिताका स्वर्गवास हो गया और भगवान्‌के भाई नन्दिवर्द्धनने राज्यभार ग्रहण किया तो वर्द्धमानका

वैराग्य और बढ़ गया। संसारके पदार्थोंसे उन्हें अरुचि हो गई। हिंसा और स्वार्थपरताकी भावनाका अन्त करनेके लिए कुमार पत्नी और पुत्री प्रियदर्शनाको छोड़ घरसे चल पड़े। उन्होंने वस्त्राभूषण उतार दिये और आत्मशोधनमें प्रवृत्त हो गये।

साधनाकालमें ही भगवान् महावीरके कई शिष्य हुए। मंखलीपुत्र गोशालक भी शिष्य हो गया, किन्तु वर्द्धमानकी कठिन साधनासे घबड़ाकर पृथक् रहने लगा, और उसने आजीवक-सम्प्रदाय नामक अलग मत निकाला।

वर्धमानको अनेक कष्ट सहन करने पड़े, पर निश्चल तप और दिव्य साधनाकी ज्योतिमें आकर सबने वर्द्धमानका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। वे जैनधर्मके सत्य और अहिंसाका उपदेश देते रहे। जामालि और गोशालकने महावीरका घोर विरोध किया, पर अन्तमें उन्हें भी पश्चात्तापकी मौत मरना पड़ा। इन्द्रभूति नामक श्रमणको महावीरने भारतका दयनीय चित्र खींचकर दिखलाया और उस कालके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक ह्रासका परिचय दिया।

अन्तमें महावीर पावापुरी पहुँचे और वहाँ उनका दिव्य उपदेश हुआ और भगवान् महावीरने समाधि ग्रहण की और निर्वाण लाभ किया।

यह कथानक श्वेताम्बर जैन आगमके आधारपर लिया गया है। दिगम्बर मान्यतामें भगवान् महावीरको अविवाहित और साधनाकालमें दिगम्बर—निर्वस्त्र रहना माना गया है। लेखकने इस नाटकको अभिनयके लिए लिखा है तथा उसका सफल अभिनय संभव भी है। इसकी सभी घटनाएँ दृश्य हैं, सूक्ष्म घटनाओंका अभाव है। आधुनिक नाट्यकलाके अनुसार संगीत और नृत्य भी इसमें नहीं हैं। विशेषज्ञोंने अभिनयकी सफलताके लिए नाटकमें निम्न गुणोंका रहना आवश्यक माना है।

१—कथावस्तुका संक्षिप्त होना। नाटक इतना बड़ा हो जो अधिकसे अधिक तीन घण्टेमें समाप्त हो जाय।

२—नाटककी भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल हो।

३—दृश्य परिवर्तन समयानुकूल और व्यवस्थित हो।

४—कथावस्तु जटिल न हो।

५—गीतोंका बाहुल्य न हो तथा नृत्य भी न रहे तो अच्छा है।

६—पात्रोंका चरित्र मानवीय हो।

७—कथोपकथन विस्तृत न हों, स्वगत भाषण न हों।

इन गुणोंकी दृष्टिसे वर्द्धमान नाटकमें अभिनय-सम्बन्धी बहुत कम त्रुटियाँ हैं। यह अधिकसे अधिक दो घण्टेमें समाप्त किया जा सकता है। दृश्य-परिवर्तन रंगमंचके अनुसार हुए हैं। कथावस्तु सरल है। हाँ, संगीत-का न रहना कुछ खटकता है, नाटकमें इसका रहना आवश्यक-सा है।

नाटकोंमें कथा और चारित्रको स्पष्ट करनेके लिए कथोपकथनका आश्रय लिया जाता है। इस नाटकके कथोपकथन नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करनेकी क्षमता रखते हैं। श्राव्य-अश्राव्य और नियत श्राव्य तीनों प्रकारके कथोपकथनोंसे ही इसमें श्राव्य कथोपकथनको ही प्रधानता दी गई है। त्रिशला और सुचेताका निम्न कथोपकथन कथाके प्रवाहको कितना सरस और तीव्र बना रहा है, यह दर्शनीय है—

त्रिशला—सुचेता! मैं तालाबमें सबसे आगे तैरते हुए दोनों हंसोंको देखकर अनुभव कर रही हूँ जैसे मेरे दोनों पुत्र नन्दिवर्द्धन और वर्द्धमान जलक्रीड़ा कर रहे हैं। दोनोंमें जो सबसे आगे तैर रहा है वह···

सुचेता—वह कुमार नन्दिवर्धन है महारानी!

त्रिशला—नहीं सुचेता, वह वर्द्धमान है। नन्दिवर्द्धनमें इतनी तीव्रता कहाँ? इतनी क्षिप्रता कहाँ? देख, देख, किस फुर्त्तीसे कमलकी परिक्रमा कर रहा है शरारती कहींका।

यह सब होते हुए भी पात्रोंके अन्तर्द्वन्द्व-द्वारा कथोपकथनमें जो एक प्रकारका प्रवाह आ जाता है, वह इसमें नहीं है। लेखक चाहता तो

भगवान् महावीरके माता-पिताकी मृत्यु, तपस्याकी साधना आदि अवसरोंपर स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्वकी योजना कर सकता था।

पात्रोंका वैयक्तिक विकास भी इसमें नहीं दिखलाया गया है। नन्दिवर्द्धन, त्रिशला, प्रियदर्शनाका व्यक्तित्व इस नाटकमें लुप्तप्राय है। स्वयं सिद्धार्थ वर्द्धमानके समक्ष विवाहका प्रस्ताव आदेशके रूपमें नहीं, बल्कि प्रार्थनाके रूपमें उपस्थित करते हैं। यह नितान्त अस्वाभाविक है। हाँ पिता प्रेमसे समझा सकते थे या मधुर वचनों-द्वारा पुत्रको फुसलाकर विवाह करा सकते थे।

नाटकमें अवस्थाएँ और अर्थ-प्रकृतियाँ भी स्पष्ट नहीं आ सकी हैं। हाँ, खींच-तानकर पाँचों अवस्थाओंकी स्थिति दिखलाई जा सकती है।

रस परिपाककी दृष्टिसे यह रचना सफल है। न यह सुखान्त है और न दुःखान्त ही। महावीरके निर्वाण लाभके समय शान्तरसका सागर उमड़ने लगता है। अहिंसा मानवके अन्तस्का प्रक्षालन कर उसे भगवान् बना देती है। यही इस नाटकका सन्देश है। वर्तमानकी समस्त बुराइयाँ इस अहिंसाके पालन करनेसे ही दूर की जा सकती हैं।

निबन्ध-साहित्य

आधुनिक युग गद्यका माना जाता है। आज कहानी, उपन्यास और नाटकोंके साथ निबन्ध-साहित्यका भी महत्वपूर्ण स्थान है। जैन हिन्दी गद्य साहित्यका भाण्डार निबन्धोंसे जितना भरा गया है, उतना अन्य अंगोंसे नहीं। प्रायः सभी जैन लेखक हिन्दी भाषाके माध्यम-द्वारा तत्त्वज्ञान, इतिहास और विज्ञानकी ऊँची-से-ऊँची बातोंको प्रकट कर रहे हैं। यद्यपि मौलिक प्रतिभा-सम्पन्न निबन्धकारोंकी संख्या अत्यल्प है, तो भी अपने अभीप्सित विषयके निरूपणका प्रयास अनेक जैन लेखकोंने किया है। निबन्ध साहित्य इतने विपुल परिमाणमें उपलब्ध

है कि इस प्रकरणमें उसका परिचय देना शक्तिसे बाहरकी बात है। समग्र निबन्ध साहित्यका समुचित वर्गीकरण करना भी टेढ़ी खीर है।

हिन्दी भाषामें लिखित जैन निबन्ध साहित्यको ऐतिहासिक, पुरातत्त्वात्मक, आचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यिक, सामाजिक और वैज्ञानिक इन सात भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। यों तो विषयकी दृष्टिसे जैन निबन्ध-साहित्य और भी कई भागोंमें बाँटा जा सकता है, परन्तु उक्त विभागों-द्वारा ही निबन्धोंका वर्गीकरण करना अधिक अच्छा प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक निबन्धोंकी संख्या लगभग एक सहस्र है। इस प्रकारके निबन्ध लिखनेवालोंमें सर्वश्री नाथूराम प्रेमी, पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पं० सुखलालजी संघवी, मुनि जिनविजय, मुनि कल्याणविजय, श्री बाबू कामताप्रसाद, श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रो० हीरालाल, प्रो० ए० एन० उपाध्ये, पं० के० भुजबली शास्त्री, प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला आदि हैं।

ऐतिहासिक

विशुद्ध इतिहासकी अपेक्षा जैनाचार्यों, जैनकवियों एवं अन्य साहित्य निर्माताओंका शोधात्मक परिचय लिखनेमें श्री प्रेमीजीका अधिक गौरवपूर्ण स्थान है। प्रेमीजीने स्वामी [1]समन्तभद्र, [2]आचार्य प्रभाचन्द्र, [3]देवसेन सूरि, [4]अनन्तकीर्ति आदि नैयायिकोंका; आचार्य [5]जिनसेन और [6]गुणभद्र प्रभृति संस्कृत भाषाके आदर्श पुराण-निर्माताओंका; आचार्य [7]पुष्पदन्त और [8]विमलसूरि आदि प्राकृतभाषाके पुराण-निर्माताओंका; [9]स्वयंभू तथा [10]त्रिभुवन स्वयंभू प्रभृति प्राकृत भाषाके कवियोंका; कविराज

१. विद्वद्रत्नमाला पृ० १५९। २. अनेकान्त १९४१। ३. जैन हितैषी १९२१। ४. जैनहितैषी १९१५। ५. हरिवंश पुराणकी भूमिका १९३०। ६. जैनहितैषी १९११। ७. जैन साहित्य संशोधक १९२३। ८. जैन साहित्य और इतिहास पृ० २७२। ९-१०. जैन साहित्य और इतिहास पृ० ३७०।

[1]हरिश्चन्द्र, [2]वादीभासिंह, [3]धनंजय, [4]महासेन, [5]जयकीर्त्ति, [6]वाग्भट्ट आदि संस्कृत कवियोंका; आचार्य [7]पूज्यपाद, देवनन्दी और [8]शाकटायन प्रभृति वैयाकरणोंका एवं [9]बनारसीदास, भगवतीदास आदि हिन्दी भाषाके कवियोंका अन्वेषणात्मक परिचय लिखा है।

सांस्कृतिक इतिहासकी दृष्टिसे प्रेमीजीने तीर्थक्षेत्र, वंश, गोत्र आदिके नामोंका विकास तथा व्युत्पत्ति, आचारशास्त्रके नियमोंका भाष्य एवं विविध संस्कारोंका विश्लेषण गवेषणात्मक शैलीमें लिखा है। अनेक राजाओंकी वंशावली, गोत्र, वंश-परम्परा आदिका निरूपण भी प्रेमीजीने एक शोधकर्त्ताके समान किया है।

प्रेमीजीकी भाषा प्रवाहपूर्ण और सरल है। छोटे-छोटे वाक्यों और ध्वनियुक्त शब्दोंके सुन्दर प्रयोगने इनके गद्यको सजीव और रोचक बना दिया है। शब्दचयनमें भाव-व्यंजनाको अधिक महत्त्व दिया है। एक पत्रकार और शोधकके लिए भाषामें जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है, वे सब गुण इनके गद्यमें पाये जाते हैं। इनकी गद्य-लेखनशैली स्वच्छ और दिव्य है। दुरूहसे दुरूह तथ्यको बड़े ही रोचक और स्पष्ट रूपमें व्यक्त करना प्रेमीजीकी स्वाभाविक विशेषता है।

ऐतिहासिक निबन्ध-लेखकोंमें श्री जुगलकिशोर मुख्तारका नाम भी आदरसे लिया जाता है। मुख्तार साहब भी जैन साहित्यके अन्वेषणकर्त्ताओंमें अग्रगण्य हैं, अबतक आपके ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध लगभग १००, १५० निकल चुके हैं। कवि और आचार्योंकी

१. जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४७२। २. क्षत्रचूडामणि (भूमिका) १९१०। ३. जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ४६४। ४. जैनसाहित्य और इतिहास पृ० १२३। ५. अनेकान्त १९३१। ६. जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ४८२। ७. जैनहितैषी १९२१। ८. जैनहितैषी १९१६। ९. बनारसीविलासकी भूमिका।

परम्परा, निवास-स्थान और समय निर्णय आदिकी शोध करनेमें आपका अद्वितीय स्थान है। मुख्तार साहबके लिखनेकी शैली अपनी है। वह किसी भी तथ्यका स्पष्टीकरण इतना अधिक करते हैं कि जिससे एक साधारण पाठक भी उस तथ्यको हृदयंगम कर सकता है। आपने विद्वता-पूर्ण प्रस्तावनाओंमें जैन संस्कृति और साहित्यके ऊपर अद्‌भुत प्रकाश डाला है।

श्री पूज्यपाद और उनका समाधितन्त्र[1], भगवान् महावीर और[2] उनका समय, पात्रकेशरी और विद्यानन्द[3], कवि राजमल्लका पिंगल[4] और राजा-भारमल्ल, तिलोयपण्णत्ति[5] और यतिवृषभ, कुन्दकुन्द और यतिवृषभमें पूर्ववर्ती कौन है? आदि निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं। "पुरातन जैनवाक्य" सूचीकी प्रस्तावना ऐतिहासिक तथ्योंका भाण्डार है।

इतिहास-निर्माता होनेके साथ-साथ मुख्तार साहब सफल आलोचक भी हैं। आपकी आलोचनाएँ सफल और खरी होती हैं "ग्रन्थपरीक्षा" आपका एक आलोचनात्मक वृहद्ग्रन्थ है जो कई भागोंमें प्रकाशित हुआ है। हिन्दी गद्यके विकासमें मुख्तार साहबका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुख्तार साहबकी गद्यशैलीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक ही विषयको बार-बार समझाते चलते हैं। इसी कारण कुछ लोग उनकी शैलीमें भाषाकी बहुलता और विचारोंकी अल्पताका आरोप करते हैं; पर वास्तविकता यह है कि मुख्तार साहब लिखते समय सचेष्ट रहते हैं कि कहीं भावोंकी व्यंजनामें अस्पष्टता न रह जाय, इसी कारण यथावसर विषयको अधिक स्पष्ट एवं व्यापक करनेको तत्पर रहते हैं। आपकी भाषा में साधारण प्रचलित उर्दू शब्द भी आ गये हैं। मुख्तार साहब भाषाके

---

१. जैनसिद्धान्तभास्कर भाग पाँच पृष्ट १। २. अनेकान्त वर्ष १ पृ० २। ३. अनेकान्त वर्ष १ पृ० ६-७। ४. अनेकान्त वर्ष ४ पृ० ३०३। ५. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३२३।

शब्दविधानमें भी उत्कृष्टता और विशदताका पूरा ध्यान रखते हैं। साथ ही व्यर्थके शब्दाडम्बरको स्थान देना आपको पसन्द नहीं है। साधारणतः आपकी शैली संगठित एवं व्यवस्थित है। किन्तु धारावाहिक प्रवाहकी कमी कहीं-कहीं खटकती है। वाक्य आपके साधारण विचारसे कुछ बड़े, पर गठनमें सीधे-सादे एवं सरल होते हैं।

[1]मुनि श्री कल्याणविजय के वीर-निर्वाण संवत् और जैनकालगणना[2] तथा राजा खारवेल और उनका वंश प्रभृति प्रसिद्ध ऐतिहासिक निबन्ध हैं। प्रथम निबन्ध जैन इतिहासकी अमूल्य निधि है। इसमें मुनिजीने चंद्रगुप्त, अशोक, सम्प्रति आदि मौर्य राजाओंके सम्बन्धमें अनेक ऐतिहासिक तथ्योंपर प्रकाश डाला है। यह निबन्ध पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। जैनकालगणनापर बौद्धधर्मकी मान्यता, तथा अन्य पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणोंसे विचार किया है। अपने मतकी पुष्टिके लिए मुनिजीने बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों, हिन्दू पुराणों एवं इतिहासकारोंके मत उद्धृत किये हैं।

विशुद्ध सांस्कृतिक इतिहास-निर्माणके लिए आपके निबन्धोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी भाषा सरल है और विषयको स्पष्ट करनेकी क्षमता विद्यमान है। संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग बड़ी सावधानीके साथ किया गया है। यद्यपि वाक्यगठनकी शैलीका अभाव है तो भी भाषाशैथिल्य नहीं है। लम्बे-लम्बे वाक्य होनेके कारण कहीं-कहीं दूरान्वय दोष भी है। साधारणतः शैलीमें धारावाहिकता है।

श्रीबाबू कामताप्रसादका विशुद्ध जैन इतिहासनिर्माताओंमें अपना निजी स्थान है। अनेक राजाओं, वंशों और स्थानोंके सम्बन्धमें आपने महत्त्वपूर्ण गवेषणाएँ की हैं। अबतक आपके अनेक निबन्ध और अनुसन्धानात्मक लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। दिगम्बर जैन सम्प्र-

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० और ११। २. अनेकान्त वर्ष १ पृ० २६६।

दायमें निबन्धोंकी परिमाणबहुलताकी दृष्टिसे आपका स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। सभी विषयोंपर आपके निबन्ध निकलते रहते हैं। "गंगराजवंशमें[१] जैनधर्म, मुसलमान राज्यकालमें जैनधर्म, वैराट या विराटपुर,[३] काम्पिल्य[४], श्रवणवेल्गोलके[५] शिलालेख, श्रीनिर्वाणक्षेत्र गिरनार[६], जैन साहित्यमें लंका, रत्नद्वीप और सिंहल[७], चीन देश और जैनधर्म[८], अरब अफ़गानिस्तान और ईरानमें जैनधर्म[९], भगवान् महावीरका विहार प्रदेश[१०] प्रभृति निबन्ध-महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि ऐतिहासिक तथ्योंकी दृष्टिसे कतिपय अन्वेषक विद्वान् इन निबन्धोंमें कुछ त्रुटियाँ पाते हैं, फिर भी सामग्रीका संकलन और गद्य-साहित्यके विकासकी दृष्टिसे इनका विशेष महत्त्व है। जैनतीर्थंकरों, चक्रवर्तियों एवं अनेक राजाओंके सम्बन्धमें बाबू कामताप्रसादजीने अनु-सन्धान किया है। लेखनशैली व्यवस्थित है। ऐतिहासिक घटनाओंकी शृङ्खलाका गठित रूप आपके निबन्धोंमें पाया जाता है।

ऐतिहासिक सामग्रीके अध्ययनमें श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीके ऐतिहासिक निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण हैं। यों तो अबतक आपके १५०-२०० निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। फिर भी निम्ननिबन्ध विशेष महत्वके हैं।[११]

बारकूर[१२], वेणूरु[१३], क्या वादीभसिंह अकलंकदेवके समकालीन[१४] हैं,

---

१. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० २०९। २. जैन सिद्धान्त-भास्कर भाग ५ पृ० १२५। ३. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० २४। ४. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० ८४। ५. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६। ६. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ६ पृ० १७८। ७. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १६ पृ० ९१। ८. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १५ पृ० ७३। ९. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १७ पृ० ७८। १०. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १२ पृ० १६। ११. भास्कर भाग ५ पृ० २१०। १२. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ११ पृ० २२३। १३. भास्कर भाग ५ पृ० २३४। १४. भास्कर भाग ६ पृ० ७८।

वीरमार्तण्ड-चामुण्डराय[१], वादीभसिंह[२], जैनवीर वंकेय[३], हुंमुच, और वहाँका सातर राजा जिनदत्तराय[४], तौलवके जैन पालेयगार[५], कारकलका जैन भैररस राजवंश[६] और दानचिन्तामणि[७] अतिमव्वे।

दक्षिण भारतके राजाओं, कवियों, ताल्लुकेदारों, आचार्यों और दानी श्रावकोंपर आपके कई अन्वेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपके गवेषणात्मक निबन्धोंकी यह विशेषता है कि आप थोड़ेमें ही समझानेका प्रयास करते हैं। वाक्य भी सुव्यवस्थित और गम्भीर होते हैं। यद्यपि तथ्योंके निरूपणमें ऐतिहासिक कोटियों और प्रमाणोंकी कमी है, तो भी हिन्दी जैन साहित्यके विकासमें आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी निबन्धोंमें ज्ञानके साथ विचारका सामञ्जस्य है। शब्दचयन, वाक्यविन्यास और पदावलियोंके संगठनमें सतर्कता और स्पष्टताका आपने पूरा ध्यान रखा है।

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयके जैन-पूर्वजोंकी वीरताका स्मरण करानेवाले ऐतिहासिक निबन्ध भी जैन हिन्दी साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गोयलीयजीने जैनवीरोंके चरित्रको बड़े ही जोश-खरोशके साथ चित्रित किया है। इनके निबन्धोंको पढ़कर मुर्दोंमें भी वीरता अंकुरित हो सकती है, जीवितोंकी तो बात ही क्या? शैलीमें चमत्कार है, कथनप्रणाली रूखी न हो इसलिए आपने व्यंग और विनोदका भी पूरा समावेश किया है। आपकी भाषामें उछल-कूद है। वह चिकोटी काटती हुई चलती है। पत्र-पत्रिकाओंमें आपके अनेक ऐतिहासिक निबन्ध प्रकाशित हैं।

---

१. भास्कर भाग ६ पृ० २२९। २. भास्कर भाग ७ पृ० १। ३. भास्कर भाग १२ कि. २ पृ० २२। ४. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १४ किरण १ पृ० ४३। ५. भास्कर १७ किरण २ पृ० ८८। ६. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २४३। ७. ज्ञानोदय सितम्बर १९५१।

राजपूतानेके जैनवीर, मौर्य साम्राज्यके जैनवीर, आर्यकालीन भारत आदि पुस्तकाकार संकलित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। गोयलीयजीकी ये रचनाएँ नवयुवकोंका पथ-प्रदर्शन करनेके लिए उपादेय हैं।

इतिहास और पुरातत्त्वके वेत्ता श्री डा० हीरालाल जैन अन्वेषणात्मक और दार्शनिक निबन्ध लिखते हैं। कई ग्रन्थोंकी भूमिकाएँ आपने लिखी हैं, जो इतिहासके निर्माणमें विशिष्ट स्थान रखती हैं। जैन इतिहासकी पूर्वपीठिका तो शोधात्मक अपूर्व वस्तु है। इस छोटी-सी रचनामें गागरमें सागर भर देनेवाली कहावत चरितार्थ हुई है। आपकी रचनाशैली प्रौढ़ है। उसमें धारावाहिकता पाई जाती है। भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है। थोड़े शब्दोंमें अधिक कहनेकी कलामें आप अधिक प्रवीण हैं। महाधवल, धवलसम्बन्धी आपके परिचयात्मक निबन्ध भी महत्वपूर्ण हैं। श्रवणबेलगोलके जैन शिलालेखोंकी प्रस्तावनामें आपने अनेक राजाओं, रानियों, यतियों और श्रावकोंके गवेषणात्मक परिचय लिखे हैं।

मुनि श्री कान्तिसागरके पुरातत्त्वान्वेषणात्मक निबन्धोंका विशिष्ट स्थान है। अबतक आपने अनेक स्थानोंके पुरातत्त्वपर प्रकाश डाला है। प्राचीन मूर्तिकला और वास्तुकलाका मार्मिक विश्लेषण आपके निबन्धोंमें विद्यमान है। प्राचीन जैन चित्रकलापर भी आपके कई निबन्ध "विशाल भारत" में सन् १९४७ में प्रकाशित हुए हैं। प्रयाग संग्रहालयमें जैन पुरातत्त्व[1] तथा विन्ध्यभूमिका जैनाश्रितशिल्प स्थापत्य[2] निबन्ध बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। शैली विशुद्ध साहित्यिक है। भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। अभी हाल ही में भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित खण्डहरोंका वैभव, और खोजकी पगडंडियाँ इतिहास और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे मुनिजीके निबन्धोंका महत्त्वपूर्ण संकलन हैं।

---

१. ज्ञानोदय सितम्बर १९४९ और अक्टूबर १९४९। २. ज्ञानोदय सितम्बर १९५० और दिसम्बर १९५०।

ऐतिहासिक निबन्ध-रचयिताओंमें प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला एम० ए० साहित्याचार्यका भी अपना स्थान है। आपके निबन्धोंमें अन्वेषण एवं पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं। विषय-प्रतिपादनकी शैली प्रौढ़ एवं गम्भीर है। अबतक आपके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अनेक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं पर गोम्मटेशप्रतिष्ठापक[1] और कलिंगाधिपति-खारवेल[2] निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी भाषा बड़ी ही परिमार्जित है। पुष्ट चिन्तन और अन्वेषणको सरल और स्पष्टरूपमें आपने अभिव्यक्त किया है। इतिहासके शुष्क तत्त्वोंका स्पष्टीकरण स्वच्छ और बोधगम्य है।

सबसे अधिक निबन्ध आचार और दर्शनपर लिखे गये हैं। लगभग २०, २५ विद्वान् उपर्युक्त कोटिके निबन्ध लिखते हैं। इन निबन्धोंकी संख्या दो सहस्रके ऊपर है। यहाँ कुछ श्रेष्ठ निबन्धकारोंकी शैलीका परिचय दिया जायगा। यद्यपि उक्त विषयके सभी निबन्ध विचार-प्रधान हैं तो भी इनमें वर्णनात्मकता विद्यमान है।

आचारात्मक और दार्शनिक निबन्ध साहित्य

दार्शनिक शैलीके श्रेष्ठ निबन्धकार श्री पं० सुखलालजी संघवी हैं। योगदर्शन और योगविंशतिका, प्रमाणमीमांसा, ज्ञानबिन्दुकी प्रस्तावनासे दर्शन और इतिहास दोनों ही विवेचनोंमें आपकी तुलनात्मक विवेचन पद्धतिका पूरा आभास मिल जाता है। आपकी शैलीमें मननशीलता, स्पष्टता, तर्कपटुता और बहुश्रुताभिज्ञता विद्यमान है। दर्शनके कठिन सिद्धान्तोंको बड़े ही सरल और रोचक ढंगसे आप प्रतिपादित करते हैं।

आपके सांस्कृतिक निबन्धोंका गद्य बहुत ही व्यवस्थित है। भाषामें प्रवाह है और अभिव्यंजनामें चमत्कार पाया जाता है। थोड़ेमें बहुत प्रतिपादनकी क्षमता आपके गद्यमें है।

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १३ किरण १ पृ० १। २. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १६ किरण १–२।

श्री पं० शीतलप्रसादजी इस शताब्दीके उन आदिम दार्शनिक निबन्धकारोंमें हैं जो साहित्यके लिए पथप्रदर्शक कहलाते हैं। आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा-द्वारा इतना अधिक लिखा है कि जिसके संकलन-मात्रसे जैनसाहित्यका पुस्तकालय स्थापित किया जा सकता है। श्री ब्रह्मचारीजी दृढ़ अध्यवसायी थे। यही कारण है कि आपकी शैलीमें अभ्यास और अध्ययनका मेल है। ब्रह्मचारीजीने सीधी-सादी भाषामें अपने पुष्ट विचारोंको अभिव्यक्त किया है। दर्शन और इतिहास दोनों ही विषयोंपर दर्जनों पुस्तकें एवं सहस्रों निबन्ध आपके प्रकाशित हो चुके हैं। ऐसा कोई विषय नहीं जिसपर आपने न लिखा हो। बहुमुखी प्रतिभाका उपयोग साहित्य सृजनमें किया, पर सुयोग्य सहयोगी न मिलनेसे सुन्दर चीजें न निकल सकीं। आपकी तुलना मैं राहुलजीसे करूँ तो अनुचित न होगा। राहुलजीके समान ब्रह्मचारीजी भी महीनेमें कमसे कम एक पुस्तक अवश्य लिख देते थे। यदि आपकी प्रतिभा आध्यात्मिक उपन्यासोंकी ओर मुड़ जाती तो निश्चय जैन साहित्य आज हिन्दी साहित्यमें अपना विशिष्ट स्थान रखता।

श्री पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री दार्शनिक, आचारात्मक और ऐतिहासिक निबन्ध लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। आपकी न्यायकुमुदचन्द्रोदयकी प्रस्तावना जो कि दार्शनिक विकासक्रमका ज्ञान-भाण्डार है, जैन साहित्यके लिए स्थायी निधि है। आपके स्याद्वाद और सप्तभंगी[१], अनेकान्तवादकी व्यापकता और चारित्र[२], शब्दनय[३], महावीर और उनकी विचारधारा[४], धर्म और राजनीति[५] प्रभृति निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं। "जैनधर्म"[६] तो शिष्ट और संयत भाषामें लिखी गई अद्वितीय पुस्तक है।

---

१. जैनदर्शन वर्ष २ अंक ४-५ पृ० ८२। २. जैनदर्शन नवम्बर १९३४। ३. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ९। ४. श्री महावीर स्मृति ग्रन्थ पृ० १३। ५. अनेकान्त वर्ष १ पृ० ६००। ६. प्रकाशक दिगम्बर जैन संघ, मथुरा।

तत्त्वार्थसूत्रपर दार्शनिक विवेचन भी रोचक और ज्ञानवर्द्धक है।

पण्डितजीकी निबन्धशैली बहुत अंशोंमें हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी शैलीसे मिलती-जुलती है। दोनोंकी शैलीमें गम्भीरता, सरलता, अन्वेषणात्मकचिन्तन एवं अभिव्यञ्जनाकी स्पष्टता समान रूपसे है। अन्तर इतना ही है कि आचार्य शुक्लने साहित्य और आलोचना विषयपर लिखा है, जब कि पण्डितजीने एक धर्म विशेषसे सम्बद्ध आचार, दर्शन और इतिहासपर।

श्री पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीका भी दार्शनिक निबन्धकारोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने तत्त्वार्थसूत्रका विशद विवेचन बड़े ही सुन्दर ढंगसे किया है। आपके फुटकर ५०–६० महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। दार्शनिक निबन्धोंके अतिरिक्त आप सामाजिक निबन्ध भी लिखते हैं। समाजकी उलझी हुई समस्याओंको सुलझानेके लिए आपने अनेक निबन्ध लिखे हैं। जैनदर्शनके कर्मसिद्धान्त विषयके तो आप मर्मज्ञ ही हैं; ज्ञानोदयमें कर्मसिद्धान्तपर आपके कई निबन्ध आधुनिक शैलीमें प्रकाशित हुए हैं।

श्री प्रोफेसर महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यके दार्शनिक निबन्ध भी जैन साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। अकलंकग्रन्थत्रयकी प्रस्तावना, न्याय-विनिश्चय विवरणकी प्रस्तावना, श्रुतसागरी वृत्तिकी प्रस्तावनाके सिवा आपके अनेक फुटकर निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। इन निबन्धोंमें जैन-दर्शनके मौलिकतत्व और सिद्धान्तोंका सुन्दर विवेचन विद्यमान है। एक साधारण हिन्दीका जानकार भी जैनदर्शनके गूढ़ तत्त्वोंको हृदयंगम कर सकता है। आपके निबन्ध निगमनशैलीमें लिखे गये हैं। प्रघट्टक (Paragraph) के आरम्भ ही में समास या सूत्र रूपमें सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। थोड़ेमें अधिक कहनेकी प्रवृत्ति आपकी लेखनकलामें विद्यमान है।

श्री पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ भी दार्शनिक निबन्धकार हैं।

आपके आचार-विषयपर भी अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। लेखन-शैली सरल है। अभिव्यञ्जना चमत्कारपूर्ण है। हाँ, भाषामें जहाँ-तहाँ, प्रवाह-शैथिल्य है।

श्री पं० दलसुख मालवणियाके दार्शनिक निबन्धोंने जैनहिन्दी साहित्यको समृद्धिशाली बनाया है। आपके जैनागम, आगम युगका अनेकान्तवाद, जैनदार्शनिक साहित्यका सिंहावलोकन आदि निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी लेखनशैली गम्भीर है। विषयका स्पष्टीकरण सम्यक् रूपसे किया गया है। आलोचनात्मक दार्शनिक निबन्धोंमें कुछ गम्भीरता पाई जाती है।

श्री पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक निबन्धकार हैं। आप सामाजिक समस्याओंपर भी लिखते हैं। स्याद्वाद, नय, प्रमाण, कर्मसिद्धान्तपर आपके कई निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपके वाक्य छोटे हों या बड़े सभी सम्बद्ध व्याकरणके अनुसार और स्पष्ट होते हैं। दार्शनिक निबन्धोंकी भाषा गम्भीर और संयत है। सरलसे सरल वाक्योंमें गंभीर विचारोंको रख सके हैं। उदार और उच्च-विचार होनेके कारण सामाजिक निबन्धोंमें प्राचीन रूढ़ परम्पराओंके प्रति अनास्थाकी भावना मिलती है।

श्री पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य भी दार्शनिक निबन्ध लिखते हैं। न्यायदीपिकाकी प्रस्तावना और आप्तपरीक्षाकी प्रस्तावनाके अतिरिक्त अनेकान्तवाद, द्रव्यव्यवस्था और पदार्थव्यवस्थापर आपके कई निबन्ध निकल चुके हैं। आपकी शैली मुख्तारी है, शब्दबाहुल्य, भावाल्पता आपके निबन्धोंमें है। हाँ, विषयका स्पष्टीकरण अवश्य पाया जाता है। शैलीमें प्रवाह गुणकी भी कमी है। यह प्रसन्नताका विषय है कि दरबारीलालजीकी शैली उत्तरोत्तर विकसित हो रही है। आपके आरम्भिक निबन्धोंमें भाषाबाहुल्य है पर वर्त्तमान निबन्धोंकी भाषा व्यवस्थित और संयत है।

श्री पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्रीका भी दार्शनिक निबन्धकारोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने द्रव्यसंग्रहकी विशेष वृत्ति लिखी है, जिसमें अनेक दार्शनिक पहलुओंपर प्रकाश डाला है। स्याद्वाद, तत्त्व, बन्ध-व्यवस्था, कर्मसिद्धान्त प्रभृति विषयोंपर आपके निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। अन्वेषणात्मक और भौगोलिक निबन्ध भी आपने लिखे हैं। आपकी विषयविवेचनशैली तर्कपूर्ण है। यद्यपि कहीं-कहीं भाषामें पंडिताऊपन है तो भी सरलता, स्पष्टता और मनोरंजकताकी कमी नहीं है।

श्री पं० जगन्मोहनलालजी सिद्धान्तशास्त्रीके दार्शनिक और आचारात्मक निबन्ध अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आपके अबतक लगभग ७०–८० निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लेखनशैली सरल एवं स्पष्ट है। एक अध्यापकके समान आप विषयको समझानेकी पूरी चेष्टा करते हैं। भाषा परिमार्जित और संयत है। शुष्क विषयको भी रोचक ढंगसे समझाना आपकी शैलीकी विशेषता है।

साहित्यिक और सामाजिक निबंध

साहित्यिक निबन्ध लिखनेवालोंमें श्री प्रेमीजी, बाबू कामताप्रसादजी, श्री मूलचन्द वत्सल, पं० पन्नालाल वसंत, पं० परमानन्द शास्त्री, प्रो० राजकुमार एम० ए०, साहित्याचार्य, श्री जमनालाल साहित्यरत्न, श्री ऋषभदास राँका, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री पं० नाथूलाल साहित्यरत्न प्रभृति हैं।

श्री प्रेमीजीने कवियोंकी जीवनियाँ शोधात्मक शैलीमें लिखी हैं। आपका "हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास" आजतक पथप्रदर्शक बना हुआ है। इसमें प्रायः सभी प्रमुख कवियोंका जीवन-परिचय संकलित किया गया है। प्रेमीजीके ही पथपर श्री बाबू कामताप्रसादजी भी चले पर उनसे एक क़दम आगे। आपने कुछ व्यवस्थित रूपसे दो चार नवीन उद्धरण देकर तथा कुछ नवीन युक्तियोंके साथ "हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास" लिखा। "मनुष्य त्रुटियोंका कोष है। अतः

त्रुटि रह जाना मानवता है।" इस युक्तिके अनुसार आपके इतिहासमें कुछ त्रुटियाँ रह गईं हैं जिनका कतिपय समालोचकोंने असहिष्णुताके साथ दिग्दर्शन कराया है। फलतः जैन हिन्दी साहित्यके इतिहासपर आगे अन्वेषण करनेका साहस नवीन लेखकोंको नहीं हो सका। यदि अहम्मन्य समालोचकोंकी ऐसी ही असहिष्णुता रही तो सम्भवतः अभी और कुछ दिन तक यह क्षेत्र सूना रहेगा। यद्यपि ऐसे समालोचक खरी समालोचना करनेका दावा करते हैं पर यह दम्भ है। इससे नवीन लेखकोंका उत्साह ठण्ढा पड़ जाता है।

श्री महात्मा भगवानदीन और बाबू श्री सूरजभान वकील सफल निबन्धकार हैं। आपके निबन्ध रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। साहित्यान्वेषणात्मक अनेक निबंध "वीरवाणी" में प्रकाशित हुए हैं। जयपुरके अनेक कवियोंपर शोधकार्य श्री पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ तथा उनकी शिष्यमंडली कर रही है, जो जैन हिन्दी साहित्यके लिए अमूल्य निधि है।

श्री अगरचन्द नाहटाने अबतक तीन, चार सौ निबन्ध कवियोंके जीवन, राजाश्रय एवं जैनग्रन्थोंके परिचयपर लिखे हैं। शायद ही जैन-अजैन ऐसी कोई पत्रिका होगी जिसमें आपका कोई निबन्ध प्रकाशित न हुआ हो। आपके कई निबन्धोंने तो हिन्दी साहित्यकी कई गुत्थियोंको सुलझाया है। "पृथ्वीराजरासो"के विवादका अन्त आपके महत्त्वपूर्ण निबन्ध-द्वारा ही हुआ है। वीसलदेवरासो और खुमानरासोके रचनाकाल और रचयिताके सम्बन्धमें विवाद है। आशा है, हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखक आपके निबन्धों-द्वारा तटस्थ होकर इन ग्रन्थोंकी प्रामाणिकतापर विचार करेगें।

श्रीमती पं० ब्र० चन्दाबाईजीने महिलोपयोगी साहित्यका सृजन किया है। अनेक निबन्ध-संग्रह आपके प्रकाशित हो चुके हैं। लेखनशैली सरल है, भाषा स्वच्छ और परिमार्जित है।

श्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए० ने ज्ञानपीठसे प्रकाशित पुस्तकोंके सम्पादकीय वक्तव्योंमें अनेक साहित्यिक चर्चाओंपर प्रकाश डाला है। मुक्तिदूत और वर्द्धमानके सम्पादकीय वक्तव्य तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, पर "वैदिक साहित्य" की प्रस्तावना एक नवीन प्रकाशकी किरणें विकीर्ण करती हैं। आपकी शैली गम्भीर, पुष्ट, संयत और व्यवस्थित है। धारा-वाहिक गुण प्रधान रूपसे पाया जाता है।

श्री मूलचन्द वत्सल पुराने साहित्यकारोंमें हैं। आपने प्राचीन कवियों पर कई निबन्ध लिखे हैं। आपकी शैली सरल है। भाषा सीधी-सादी है।

श्री पं० परमानन्द शास्त्री, वीर सेवा मन्दिर सरसावाने, अपभ्रंशके अनेक कवियोंपर शोधात्मक निबन्ध लिखे हैं। महाकवि 'रइधू' के तो आप विशेषज्ञ हैं। आपकी शैली शब्दबहुला है, कहीं-कहीं बोझिल भी मालूम पड़ती है।

श्री प्रो० राजकुमार साहित्याचार्यने दौलतराम और भूधरदासके पदोंका आधुनिक विश्लेषण किया है। आपके द्वारा लिखित मदन-पराजय की प्रस्तावना कथा-साहित्यके विकास-क्रम और मर्मको समझनेके लिए अत्यन्त उपादेय है। आपकी शैली पुष्ट और गम्भीर है। प्रत्येक शब्द अपने स्थानपर बिल्कुल फिट हैं। कवि होनेके कारण गद्यमें काव्यत्व आ गया है।

श्री पं० पन्नालाल वसन्त साहित्याचार्यके अनेक साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपने "आदिपुराण" की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है। जिसमें संस्कृत जैन साहित्यके विकास-क्रमका बड़ा रोचक वर्णन किया है। आपकी शैली परिमार्जित और सरल है।

श्री जमनालाल साहित्यरत्न अच्छे निबन्धकार हैं। जैन जगत्में आपके अनेक साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं।

श्री ज्योतिप्रसाद जैन एम० ए०, एल-एल० बी० के भी ऐतिहासिक

और साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। आपके निबन्धोंमें पूज्यपाद सम्बन्धी निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। शैली शोधपूर्ण है।

श्री पं० बलभद्र न्यायतीर्थ के सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध जैन संदेशमें प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी भाषामें प्रवाह रहता है, एवं शैलीमें विस्तार।

श्री ऋषभदास राँकाके अनेक प्रौढ़ निबन्ध सामाजिक और साहित्यिक विषयोंपर प्रकाशित हुए हैं। आपकी शैली प्रवाहपूर्ण है, और वर्णनमें सजीवता है।

श्री नत्थूलाल शास्त्री साहित्यरत्नके सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध जैन साहित्यके लिए गौरवकी वस्तु हैं। आपका "जैन हिन्दी साहित्य" निबन्ध विशेष महत्त्वपूर्ण है। आपकी शैलीमें रोचकता है।

श्री कस्तूरचन्द काशलीवालके शोधात्मक निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी शैली रूक्ष होनेपर भी प्रवाहपूर्ण है। विषयके स्पष्टीकरणकी क्षमता आपकी भाषामें पूर्ण रूपसे विद्यमान है।

श्री प्रो० देवेन्द्रकुमार, श्री विद्यार्थी नरेन्द्र, श्री इन्द्र एम० ए०, श्री पृथ्वीराज एम० ए० आदि भी सुलेखक हैं। दार्शनिक निबन्धकारोंमें श्री रघुवीरशरण दिवाकर का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आपने अनेक जीवन गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया है। श्री प्रो० विमलदास एम० ए० भी अच्छे निबन्धकार हैं। आपके विवेचनात्मक कई निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं।

सामाजिक, आचारात्मक और दार्शनिक निबन्धकारोंमें पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ, पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य, पं० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, श्री स्वतन्त्र, श्री कापड़िया आदि हैं। श्री पण्डित अजितकुमार शास्त्री न्यायतीर्थ ने खण्डनमण्डनात्मक पद्धतिपर कई निबन्ध लिखे हैं। आपकी शैली तर्कपूर्ण और भाषा संयत है।

श्रीदरबारीलाल सत्यभक्त एक चिन्तनशील दार्शनिक और साहित्य-

कार हैं। आपकी रचनाओंके द्वारा केवल जैन साहित्य ही वृद्धिंगत न हुआ, बल्कि समग्र हिन्दी साहित्यका भाण्डार बढ़ा है।

इस सम्बन्धमें एक नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है, श्रीजैनेन्द्र कुमार जैनका। श्रीजैनेन्द्रजी उच्चकोटिके उपन्यास, कहानीकार तो हैं ही, निबन्धकारके रूपमें भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। अपने निबन्धोंमें आप बहुत सुलझे हुए, चिन्तकके रूपमें उपस्थित होते हैं। इस समस्त चिंतनकी पार्श्वभूमि आपको जैन दर्शनसे प्राप्त हुई है। यही कारण है कि अनेक प्रकारकी उलझी हुई, समस्याओंका समाधान सीधे रूपमें अनेकान्तात्मक सामञ्जस्य द्वारा सफलतापूर्वक करते हैं। इनकी शैलीके सम्बन्धमें यही कहना पर्याप्त होगा कि इन्होंने हिन्दीको एक ऐसी नयी शैली दी है, जिसे जैनेन्द्रकी शैली ही कहा जाता है।

आत्मकथा, जीवनचरित्र और संस्मरण

आत्मकथा, जीवनचरित्र और संस्मरण भी साहित्यकी निधि हैं। मानव स्वभावतः उत्सुक, गुप्त और रहस्यपूर्ण बातोंका जिज्ञासु एवं अनुकरणशील होता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंके जीवन-चरित्रों, आत्मकथाओं और संस्मरणोंको अवगत करनेके लिए सर्वदा उत्सुक रहता है, वह अपने अपूर्ण जीवनको दूसरोंके जीवन-द्वारा पूर्ण बनानेकी सतत चेष्टा करता रहता है।

जीवन-चरित्रोंकी सत्यतामें आशंका पाठकको नहीं होती है, वह चरित्र-नायकके प्रति स्वतः आकृष्ट रहता है, अतः जीवनमें उदात्तभावनाओंको सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेता है। मानवकी जिज्ञासा जीवन-चरित्रोंसे तृप्त होती है, जिससे उसकी सहानुभूति और सेवाका क्षेत्र विकसित होता है। कर्त्तव्यमार्गको प्राप्त करनेकी प्रेरणा मिलती है और उच्चादर्शोंको उपलब्ध करनेके लिए नाना प्रकारकी महत्त्वाकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं।

जीवन-चरित्रोंसे भी अधिक लाभदायक आत्मचरित्र (Autobiography) हैं। पर जगबीती कहना जितना सरल है, आपबीती कहना उतना ही कठिन। यही कारण है कि किसी भी साहित्यमें आत्मकथाओंकी संख्या और साहित्यकी अपेक्षा कम होती है। प्रत्येक व्यक्तिमें यह नैसर्गिक संकोच पाया जाता है कि वह अपने जीवनके पृष्ठ सर्व-साधारणके समक्ष खोलनेमें हिचकिचाता है; क्योंकि उन पृष्ठोंके खुलनेपर उसके समस्त जीवनके अच्छे या बुरे कार्य नग्नरूप धारणकर समस्त जनताके समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। और फिर होती है उनकी कटु आलोचना। यही कारण है कि संसारमें बहुत कम विद्वान् ऐसे हैं जो उस आलोचनाकी परवाह न कर अपने जीवनकी डायरी यथार्थ रूपमें निर्भय और निधड़क हो प्रस्तुत कर सकें।

हिन्दी-जैन-साहित्यमें इस शताब्दीमें श्रीक्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी और श्रीअजितप्रसाद जैनने अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। जीवन-चरित्र तो १५-२० से भी अधिक निकल चुके हैं। साहित्यकी दृष्टिसे संस्मरणोंका महत्त्व भी आत्मकथाओंसे कम नहीं है, ये भी मानवका समुचित पथप्रदर्शन करते हैं।

यह औपन्यासिक शैलीमें लिखी गयी आत्मकथा है। श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णीने इसमें अपना जीवनचरित्र लिखा है। यह इतनी

मेरी [1]जीवनगाथा

रोचक है कि पढ़ना आरम्भ करनेपर इसे अधूरा कोई भी पाठक नहीं छोड़ सकेगा। इसके पढ़नेसे यही मालूम होता है कि लेखकने अपने जीवनकी सत्य घटनाओंको लेकर आत्मकथाके रूपमें एक सुन्दर उपन्यासकी रचना की है। जीवनकी अच्छी या बुरी घटनाओंको पाठकोंके समक्ष उपस्थित करनेमें लेखकमें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है। निर्भयता और निस्संकोचपूर्वक अपनी बीती लिखना जरा टेढ़ी खीर है, पर लेखकको इसमें पूरी सफलता मिली

१. प्रकाशक : वर्णी-ग्रंथ-माला २।३८ बी, भदैनी, काशी।

है। वस्तुतः पूज्य वर्णीजीकी जीती-जागती यशोगाथासे आज कौन अपरिचित होगा ?

इस ३½ हाथके मिट्टीके पुतलेका व्यक्तित्व आज गजब ढा रहा है। समस्त मानवीय गुणोंसे विभूषित इस महामानवमें मूक परोपकारकी अभिव्यंजना, साधना और त्यागकी अभिव्यक्ति एवं बहुमुखी विद्वत्ताका संयोग जिस प्रकार हो पाया है, शायद ही अन्यत्र मिले। इतनी सरल प्रकृति, गम्भीर मुद्रा, ठोस ज्ञान, अटल श्रद्धानादि गुणोंके द्वारा लोग सहज ही इनके भक्त बन जाते हैं। जो भी इनके सम्पर्कमें आया वह अन्तरंगमें मायाशून्यता, सत्यनिष्ठा, प्रकाण्ड पाण्डित्य, विद्वत्ताके साथ चरित्र, प्रभावक वाणी, परिणामोंमें अनुपम शान्ति एवं आत्मिक और शारीरिक विशुद्धता आदि गुणराशिसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। इसके अतिरिक्त अज्ञानतिमिरान्ध जैनसमाजका ज्ञानलोचन उन्मीलित करके लोकोत्तर उपकार करनेका श्रेय यदि किसीको है तो श्रद्धेय वर्णीजी को। पूज्य वर्णीजीका जीवन जैनसमाजके लिए सचमुचमें एक सूर्य है। वे मुमुक्षु हैं, साधक हैं और हैं स्वयंबुद्ध। उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखकर जैनसमाजका ही नहीं, अपितु मानवसमाजका बड़ा उपकार किया है। अध्ययनकी लालसा पूज्य वर्णीजीमें कितनी थी, यह उनकी आत्मकथासे स्पष्ट है। उन्होंने जयपुर, मथुरा, खुरजा, काशी, चकौती (दरभंगा जिला) और नवद्वीप आदि अनेक स्थानोंकी न्यायशास्त्र पढ़नेके लिए खाक छानी। जहाँ भी न्यायशास्त्रके विद्वान्‌का नाम सुना, आप वहीं पहुँचे तथा श्रद्धा और भक्तिके साथ उसे अपना गुरु बनाया।

आत्मकथाके लेखक पूज्य वर्णीजीने अपने जीवनकी समस्त घटनाओंका यथार्थ रूपमें अंकन किया है। काशीके स्याद्वाद महाविद्यालयमें जब अध्ययन करते थे, उस समयका एक उदाहरण देखिये—

उन दिनों विद्यालयके अधिष्ठाता (प्रिंसिपल) थे बाबा भागीरथजी वर्णी। न्यायकी उच्चकक्षाके विद्यार्थी होनेके कारण आप उनके मुँहलगे

थे। एक शामको जब बाबाजी सामायिक (आत्मचिन्तन) कर रहे थे, उस समय आप चार-पाँच साथियोंके साथ गंगापार रामनगर रामलीला देखनेको चले गये। जब नाव बीच गंगामें पहुँची तो हवाके तीव्र झोंकोसे डगमगाने लगी और 'अब डूबी, तब डूबी' की उसकी स्थिति आ गयी। विद्यालयकी छतपर खड़े अधिष्ठाताजी सारा दृश्य देख रहे थे। विद्यार्थियोंकी नावको गंगामें डूबते देख उनके प्राण सूखने लगे और उनकी मङ्गलकामनाके लिए भगवान्से प्रार्थना करने लगे। पुण्योदयसे किसी प्रकार नौका बच गयी और सभी विद्यार्थी रामलीला देखकर रातको १० बजे लौटे। सबके लीडर आत्मकथा-लेखक ही थे। आते ही अधिष्ठाताजीने आपको बुलाया और बिना आज्ञाके रामलीला देखनेके अपराधमें आपको विद्यालयसे पृथक् कर दिया। साथ ही विद्यालय-मन्त्रीको, जो आरामें रहते थे, पत्र लिख दिया कि गणेशप्रसाद विद्यार्थीको उद्दण्डताके अपराधमें पृथक् किया जाता है। जब पत्र लेकर चपरासी छोड़नेको चला तो आपने चपरासीको दो रुपये देकर वह पत्र ले लिया और विद्यालयसे जानेके पहले आपने एक बार सभामें भाषण देनेकी अनुमति माँगी। सभामें निर्भीकतापूर्वक आपने समस्त परिस्थितियोंका चित्रण करते हुए मार्मिक भाषण दिया। आपके भाषणको सुनकर अधिष्ठाताजी भी पिघल गये और आपको क्षमाकर दिया।

इस प्रकार आत्मकथा-लेखकने अपने जीवनकी छोटी-बड़ी सभी बातोंको स्पष्ट रूपसे लिखा है। घटनाएँ इतने कलात्मक ढंगसे संजोयी गयी हैं, जिससे पाठक तल्लीन हुए बिना नहीं रह सकता। भाषा इतनी सरल और सुन्दर है कि थोड़ा पढ़ा लिखा मनुष्य भी रसमग्न हो सकता है। छोटे-छोटे वाक्योंमें अपूर्व माधुर्य भरा है।

आजके समाजका चित्रण भी आपने अपूर्व ढंगसे किया है। आज किस प्रकार धनिक मनुष्य अपने पैसेसे सैकड़ों पापोंको छुपा लेते हैं, पर एक निर्धनका एक सुईकी नोकके बराबर भी पाप नहीं छिपा छिपता।

उसे अपने पापका फल समाज-बहिष्कार या अन्य प्रकारका दण्ड सहना ही पड़ता है। इसका आपने कितने सुन्दर शब्दोंमें वर्णन किया है—

"पाप चाहे बड़ा मनुष्य करे या छोटा। पाप तो पाप ही रहेगा, उसका दण्ड उन दोनोंको समान ही मिलना चाहिये। ऐसा न होनेसे ही संसारमें आज पंचायती सत्ताका लोप हो गया है। बड़े आदमी चाहे जो करें उनके दोषको छिपानेकी चेष्टा की जाती है और ग़रीबोंको पूरा दण्ड दिया जाता हैं···यह क्या न्याय है? देखो बड़ा वही कहलाता है, जो समदर्शी हो। सूर्यकी रोशनी चाहे दरिद्र हो चाहे अमीर दोनोंके घरोंपर समान रूपसे पड़ती है।"

इस आत्मकथाकी एक सबसे विशेषता यह भी है कि इसमें जैन समाजका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शिक्षा-विकासका इतिहास मिल जायगा। क्योंकि वर्णीजी व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। उनके साथ अनेक संस्थाएँ सम्बद्ध हैं। ज्ञान प्रचार और प्रसार करनेमें आपने अटूट परिश्रम किया है। भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विहारकर जैन समाजको जाग्रत किया है।

अज्ञात जीवन[1]

श्री अजितप्रसाद जैन एम० ए० की यह आत्मकथा है। इस आत्मकथाका नाम ही औपन्यासिक ढंगका है और एकाएक पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला है। घटनाएँ एक दूसरेसे बिल्कुल सम्बद्ध हैं; बाल्यकालसे लेकर वृद्धावस्थातककी घटनाओंको मोतीकी लड़ीके समान पिरोकर इसे पाठकोंका कण्ठहार बनानेका लेखकने पूरा प्रयास किया है। रोचकता और सरलता गुण पूरे रूपमें विद्यमान हैं।

यद्यपि लेखकने आत्मकथाका नाम अज्ञात जीवन रखा है, किन्तु लेखकका जीवन समाजसे अज्ञात नहीं है। समाजसे सम्मान और आदर

---

१. प्रकाशक : रायसाहब रामदयाल अगरवाला, प्रयाग।

प्राप्त करनेपर भी वह अपनेको अज्ञात ही रखना अधिक पसन्द करता है, यही उसकी सज्जनताकी सबसे बड़ी पहिचान है।

इस आत्मकथामें सामाजिक कुरीतियोंका पूरा विवरण मिलता है। भाषा संयत, सरल और परिमार्जित है अंग्रेजी और उर्दूके प्रचलित शब्दोंको भी यथास्थान रखा गया है।

जीवनचरित्रोंमें सेठ माणिकचन्द, सेठ हुकमचन्द, कुमार देवेन्द्र-प्रसाद, श्री बा० ज्योतिप्रसाद, ब्र० शीतलप्रसाद, ब्र० पं० चन्दाबाई, श्री मगनबाई एवं श्वेताम्बर अनेक यति-मुनियोंके जीवन-चरित्र प्रधान हैं। इन चरित्रोंमेंसे कई एक तो निश्चय ही साहित्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। पाठक इन जीवन-चरित्रोंसे अनेक बातें ग्रहण कर सकते हैं।

इस श्रेष्ठ और रोचक पुस्तकके सम्पादक श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय हैं। आपने इसमें जैन समाजके प्रमुख सेवक ३७ व्यक्तियोंके संस्मरण संक-

जैन जागरणके अग्रदूत[२]

लित किये हैं। अधिकांश संस्मरणोंके लेखक भी आप ही हैं। यह मानी हुई बात है कि महान् व्यक्तियोंके पुण्य संस्मरण जीवनकी सूनी और नीरस घड़ियोंमें मधु घोलकर उन्हें सरस बना देते हैं। मानव-हृदय, जो सतत वीणाके समान मधुर भावनाओंकी झंकारसे झंकृत होता रहता है, पुण्य स्मरणोंसे पूत हो जाता है। उसकी अमर्यादित अभिलाषाएँ नियन्त्रित होकर जीवनको तीव्रताके साथ आगे बढ़ाती हैं। फलतः महान् व्यक्तियोंके संस्मरण जीवन की धाराको गम्भीर गर्जन करते हुए सागरमें विलीन नहीं कराते, बल्कि हरे-भरे कगारोंकी शोभाका आनन्द लेते हुए उसे मधुमती भूमिकाका स्पर्श कराते हैं; जहाँ कोई भी व्यक्ति वितर्क बुद्धिका परित्यागकर रसमग्न हो जाता है और परप्रत्यक्षका अल्पकालिक अनुभव करने लगता है।

प्रस्तुत संकलनमें ऐसे ही अनुकरणीय व्यक्तियोंके संस्मरण हैं। ये

---

२. प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

सभी अपने दिव्य आलोकसे जीवन-तिमिरको विच्छिन्न करनेमें सक्षम हैं। प्रत्येक महान् व्यक्तिका अन्तरंग और बहिरंग व्यक्तित्व जीवनको प्रेरणा और स्फूर्त्ति देता है।

समस्त प्रमुख व्यक्तियोंको चार भागोंमें विभक्त किया है। प्रथम भाग त्याग और साधनाके दिव्य प्रदीपोंकी अमरज्योतिसे आलोकित है। ये दिव्य दीप हैं—ब्र० शीतलप्रसाद, बाबा भागीरथ वर्णी, आत्मार्थी कानजी महाराज, ब्र० पं० चन्दाबाई और भूआ (बैरिस्टर चम्पतरायजीकी बहन)।

इन दिव्य दीपोंमें तैल और वर्त्तिका संजोनेवाले श्री गोयलीयके अतिरिक्त अन्य लेखक भी हैं। इन सबकी शैलीमें अपूर्व प्रवाह, माधुर्य और जोश है। भाषामें इतनी धारावाहिकता है कि पाठक पढ़ना आरम्भ करनेपर अन्त किये बिना नहीं रह सकता।

दूसरा भाग तत्त्वज्ञानके आलोक-स्तम्भोंसे शोभित है। ये आलोक स्तम्भ हैं—गुरु गोपालदास बरैया, पं० उमरावसिंह, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, पं० ऋषभदास, पं० महावीरप्रसाद, पं० अरहदास, पं० जुगलकिशोर मुख्तार और पं० नाथूराम प्रेमी।

इस स्तम्भके लेखकोंमें श्री गोयलीयके अतिरिक्त श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, श्री पं० सुखलालजी संघवी, श्री पं० नाथूराम 'प्रेमी' और श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि प्रमुख हैं। इन सभी संस्मरणोंमें रोचकता इतनी अधिक है कि गूँगेके गुड़के स्वादकी तरह उसकी अनुभूति पाठक ही कर सकेंगे। भाषामें ओज, माधुर्य और प्रवाह है। शैली अत्यन्त संयत और प्रौढ़ है।

तीसरे भागमें वे अमर समाज-सेवक हैं, जिन्होंने समाजमें नवचेतनाका प्रकाश फैलाया है। ये हैं—बाबू सूरजभानु वकील, बाबू दयाचन्द गोयलीय, कुमार देवेन्द्रप्रसाद, बैरिस्टर जुगमन्दिरलाल जैनी, अर्जुनलाल

सेठी, बैरिस्टर चम्पतराय, बाबू ज्योतिप्रसाद, बाबू सुमेरचन्द एडवोकेट, बाबू अजितप्रसाद वकील, बाबू सूरजमल और महात्मा भगवानदीन।

इस स्तम्भके लेखक श्री नाथूराम प्रेमी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री महात्मा भगवानदीन, श्री माईदयाल, श्री गुलाबराय एम. ए., श्री अजितप्रसाद एम. ए., श्री बनवारीलाल स्याद्वादी, श्री कामताप्रसाद जैन, श्री कौशलप्रसाद जैन, श्री दौलतराम मित्र, श्री जैनेन्द्रकुमार और श्री गोयलीय हैं। प्रयागमें जैसे त्रिवेणीके संगमस्थल पर गंगा, यमुना और सरस्वतीकी धाराएँ पृथक्-पृथक् होती हुई भी एक हैं, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी सभी लेखकोंकी भिन्न-भिन्न शैलीका आस्वादन भिन्न-भिन्न रूपसे होनेपर भी प्रवाह-ऐक्य है। इस स्तम्भके संस्मरणोंको पढ़नेसे मुझे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे कोई भगवान्का भक्त किसी ठाकुरद्वारीपर खड़ा हो पञ्चामृतका रसास्वादन कर रहा हो।

चतुर्थ भाग श्रद्धा और समृद्धिके ज्योति रत्नोंसे जगमगा रहा है। वे रत्न हैं—राजा हरसुखराय, सेठ सुगनचन्द, राजा लक्ष्मणदास, सेठ माणिकचन्द, महिलारत्न मगनबाई, सेठ देवकुमार, सेठ जम्बूप्रसाद, सेठ मथुरादास, सर मोतीसागर, रा० ब० जुगमन्दिरदास, रा० ब० सुल्तानसिंह और सर सेठ हुकुमचन्द।

इस स्तम्भके लेखक नाथूराम प्रेमी, पं० हरनाथ द्विवेदी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री तन्मय बुखारिया, श्रीमती कुन्थुकुमारी जैन बी० ए० (ऑनर्स), श्री हीरालाल काशलीवाल और श्री गोयलीय हैं।

सचमुचमें यह संकलन बीसवीं शताब्दीके जैन समाजका जीता-जागता एक चित्र है। समस्त पुस्तकके संस्मरण रोचक, प्रभावक और शिक्षाप्रद हैं। इस संग्रहके संस्मरणोंको पढ़ते समय अनेक तीर्थोंमें स्नान करनेका अवसर प्राप्त होगा। कहीं राजगृहके गर्मजलके झरनोंमें अवगाहन करना पड़ेगा, तो कहीं वहींके समशीतोष्ण ब्रह्मकुण्डके जलमें, तो कहीं पास ही के सुशीतल जलके झरनेमें निमज्जन करना होगा। आपको

गंगाजलके साथ समुद्रका खारा उदक भी पान करनेको मिलेगा, पर विश्वास रखिये, स्वाद बिगड़ने न पायेगा।

इस प्रकार हिन्दी जैन साहित्यका गद्य भाग नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, संस्मरण, आत्मकथा, गद्यकाव्य आदिके द्वारा दिनों-दिन खूब पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। जैन लेखकोंका जितना ध्यान निबन्ध रचनाकी ओर है, यदि उसका शतांश भी कथा-साहित्य या गद्यगीतोंकी ओर चला जाय तो निश्चय ही हिन्दी जैन गद्य साहित्य अपने आलोकसे समग्र हिन्दी साहित्यको जगमगा दे। नवीन लेखकोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। जैन कथाओं-द्वारा सुन्दर और रोचक गद्य-पद्यमें काव्य लिखे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त संस्मरण, जीवन-चित्र तथा विभिन्न विषयोंके निबन्धों-के संकलन भी अभिनन्दन-ग्रन्थोंके नामसे प्रकाशित हुए हैं। इनमें निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

(१) श्री प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ। (२) श्री वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ (३) श्री ब्र. पं० चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ। (४) श्री हुकमचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ। (५) श्री आचार्य शान्तिसागर श्रद्धाञ्जलि ग्रन्थ।

दशवाँ अध्याय

हिन्दी-जैन साहित्यका शास्त्रीय पक्ष

हिन्दी-जैन साहित्यके विभिन्न अंग और प्रत्यंगोंका परिचय प्राप्त कर लेनेके अनन्तर इस साहित्यका शास्त्रीय दृष्टिसे यत्किञ्चित् अनुशीलन करना भी आवश्यक है। अतः शास्त्रीय दृष्टिकोणसे विवेचन करनेपर ही इसकी अनेक विशेषताएँ ज्ञात की जा सकेंगी।

इस अभीष्ट दृष्टिकोणके अनुसार भाषा, छन्द, अलंकार योजना, प्रकृतिचित्रण, सौन्दर्यानुभूति, रसविधान, प्रतीकयोजना और रहस्यवाद-का विश्लेषण किया जायगा। सर्वप्रथम जैन साहित्यकी भाषाका विचार करना है कि इस साहित्यमें प्रयुक्त भाषा कैसी है, इसमें शास्त्रीय दृष्टिसे कौन-कौन विशेषताएँ विद्यमान हैं। भावों और विचारोंकी अभिव्यञ्जना भाषाके बिना असम्भव है।

हिन्दी-जैन काव्योंका भाषाकी दृष्टिसे बड़ा ही महत्त्व है। अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीसे ही आधुनिक साहित्यिकभाषाका जन्म हुआ है।

भाषा

जैन लेखक आरम्भसे ही भाषाके रूपको सजाने और परिष्कृत बनानेमें संलग्न रहे हैं। सरस, कोमल, मधुर और मंजुल शब्द सुबोध, सार्थक और स्वाभाविक रूपमें प्रयुक्त हुए हैं। शब्दयोजना, वाक्यांशोंका प्रयोग, वाक्योंकी बनावट और भाषाकी लाक्षणिकता या ध्वन्यात्मकता विचारणीय है।

अपभ्रंश भाषाके काव्योंमें भाषाका विकासोन्मुख रूप दिखलायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा लोकभाषाकी ओर तेजीसे गमन कर रही है। पाठक देखेंगे कि निम्नपदमें कोमल और परुष भावनाओंकी

अभिव्यक्तिके साथ भाषामें कितनी भावप्रवणता है। प्रेषणीयतत्त्वकी परख कविको कितनी है, यह सहजमें ही जाना जा सकता है।

तो गहिय चन्द-हासा उहेण। हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण।
लइ पहरु-पहरु किं करहि खेउ। तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ।
महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु। किं सीह (हि) होइ सहाउ अण्णु।
तं विसुणेंवि विप्फुरियाहरेण। मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण।

—स्वयम्भू रामायण ७५।२२

श्रीराहुलजीने इसका हिन्दीमें अनुवाद यों किया है—

तो गहिय चन्दहासायुधेहिं। हक्कारेउ लक्ष्मण दशमुखेहिं।
ले प्रहरु प्रहरुका करहि क्षेप। तुह एको चक्को सावलेप।
ममतैं पुनि आहि कवन गण्य। का सिंहह होइ स्वभाव अन्य।
सो सुनिया विस्फुरिता धरेहिं। मेलेउँ रथांग लक्ष्मीधरेहिं॥

भाषाको शक्तिशाली बनानेके लिए कवि पुष्पदन्तने समासान्त पदोंका प्रयोग अत्यधिक किया है। निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

विप-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहंतरालओ।
धुय-गय-गण्ड-मण्डलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ।
अविरल-मुसल-सरिस-चिरधारा-वारिस-भरंत-भूमलो।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-करु तण-णील-सद्दलो॥

—आदिपुराण (२९-३०)

इसकी हिन्दी छाया—

विश-कालिंदी-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु-कहँ नील शाद्वला॥

१२ वीं शतीके कवि विनयचन्द्र सूरिकी अपभ्रंश भाषामें अपूर्व मिठास है। भाषाकी स्वरलहरीमें विश्वका संगीत गूँजता है। भावप्रकाशन कितना अनूठा है, यह निम्नपदसे स्पष्ट है—

नेमिकुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सखणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जन-तणा मँ वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ॥

—प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

परवर्ती जैनकवियोंमें भाषाकी दृष्टिसे कवि बनारसीदासका सर्वोत्कृष्ट स्थान है। आपकी भाषा मनोरम होनेके साथ, कितनी प्रभावोत्पादक है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है। संगीतकी अवतारणा स्थान-स्थानपर विद्यमान है। प्रशस्त होनेके साथ भाषामें कोमलकान्तता और प्रवहमानता भी अन्तर्निहित है। भाषाकी लोच-लचक और हृदयद्रावकता तो निम्न पद्यका विशेष गुण है।

काज विना न करै जिय उद्यम, लाज विना रन माहिं न जूझै।
डील विना न सधै परमारथ, शील विना सतसौं न अरूझै॥
नेम विना न लहै निहचैपद, प्रेम विना रस रीति न बूझै।
ध्यान विना न थँभै मन की गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझै॥

वास्तवमें कवि बनारसीदास भाषाके बहुत बड़े पारखी हैं। इनके सुन्दर वर्ण-विन्यासमें कोमलता किलकारियाँ भरती है, रस छलकता है और माधुर्य बाहर निकलनेके लिए वातायनमेंसे झाँकता है। नाद सौन्दर्य-के साधन छन्द, तुक, गति, यति और लयका जितना सुन्दर सन्तुलित समन्वय इनकी भाषामें है, अन्यत्र वैसा कठिनाईसे मिलेगा। निम्न पद्यमें संगीत केवल मुखरित ही नहीं हुआ, बल्कि स्वर और तालके साथ मूर्त-रूपमें उपस्थित है।

करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग शिवमग दरसि।
निरखत नयन भविक जल वरखत, हरखत अमित भविक जन सरसि॥
मदन कदन जिन परम धरम हित, सुमिरत भगत भगत सब हरसि।
सजल जलद तन मुकुट सपत फल, कमठ दलन जिन नमत बनरसि॥

उपर्युक्त पद्यमें समस्त ह्रस्ववर्णोंने रस और माधुर्यकी वर्षा करनेमें कुछ उठा नहीं रखा है। इसकी सरसता, विशदता, मधुरता और सुकुमारता ऐसा वातावरण उपस्थित कर देती है, जिससे श्यामवर्णके पार्श्व-प्रभुकी कमनीयता, महत्ता और प्रभुता भक्तके हृदयमें सन्तोष और शीलताका संचार किये विना नहीं रह सकती। शब्दोंकी मधुरिमाका कवि बनारसीदासको अच्छा परिज्ञान था। वस्तुतः ह्रस्व वर्णोंमें जितनी कोमलता और कमनीयता होती है, उतनी दीर्घ वर्णोंमें नहीं। इसी कारण कवि अगले पद्यमें भी लघुस्वरान्त अक्षरोंको प्रयोग करता हुआ कहता है—

सकल करमखल दलत, कमठ सठ पवन कनक नग।
धवल परमपद रमन जगत जन अमल कमल खग॥
परमत जलधर पवन, सजल घन सम तन समकर।
पर अघ रजहर जलद, सकल जन नत भव भय हर॥
यम दलन नरक पद छय करन, अगम अतट भवजल तरन।
वर सबल मदन वन हर दहन, जय जय परम अभय करन॥

इस छप्पयमें कविने भाषाकी जिस कारीगरीका परिचय दिया है, वह अद्वितीय है। जिस प्रकार कुशल शिल्पी छैनी और हथौड़े द्वारा अपने भावोंको पाषाण-खण्डोंमें उत्कीर्ण करता है, उसी प्रकार कविने अपनी शब्द-साधना द्वारा कोमलानुभूतिको अंकित किया है।

कविने भाषाको भाव-प्रवण बनानेके लिए कथोपकथनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। संसारी जीवको सम्बोधन कर वार्तालाप करता हुआ कवि किस प्रकार समझाता है, यह निम्नपद्यसे स्पष्ट है—

भैया जगवासी, तू उदास ह्वैके जगतसौं
एक छै महीना उपदेश मेरो मानु रे।
और संकलप विकलपके विकार तजि
बैठिके एकंत मन एक ठौर आनु रे॥
तेरौ घट सर तामैं तू ही ह्वै कमल वाकौ
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछू ऐसौ तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यौं ही जानु रे।

शब्दोंको तोड़-मरोड़े बिना ही भाव को भीतर तक पहुँचानेका कविने पूरा यत्न किया है। कवि बनारसीदासके सिवा भैया भगवतीदास, रूपचन्द, भूधरदास, बुधजन, द्यानतराय, दौलतराम और वृन्दावनका भी भाषाकी परखमें विशेष स्थान है। भैया भगवतीदासकी भाषा तो और भी प्राञ्जल, धारावाहिक और प्रसादगुणसे युक्त है। भाषाको भावानुकूल बनानेका इन्हें पूरा मर्म ज्ञात था, इसी कारण इनके काव्यमें विषयोंके अनुसार भाषा गम्भीर और सहज होती गयी है। निम्न पद्यमें भाषाकी स्वच्छता दर्शनीय है—

जबते अपनो जी आपु लख्यो, तबतें जु मिटी दुविधा मन की।
यों शीतल चित्त भयो तबही सब, छाँड़ दई ममता तन की॥
चिन्तामणि जब प्रगट्यौ घर में, तब कौन जु चाह करै धन की।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जन की॥

'मिटी दुविधा मनकी' और 'छाँड़ दई ममता तनकी' इन वाक्योंमें कविने भाषाकी मधुरिमाके साथ जिस भावको व्यक्त किया है, वह वास्तवमें भाषाके पूर्ण पाण्डित्यके विना संभव नहीं। इन वाक्योंका गठन भी इतनी कुशलता और सूक्ष्मतासे किया है, जिससे भावाभिव्यञ्जनमें चार चाँद लग गये हैं। वास्तवमें इनके काव्यमें भावके साथ भाषा भी

कुछ कहती-सी जान पड़ती है। नादविशेष सौन्दर्यके साथ माधुर्यको भी प्रवाहित करनेमें सक्षम है—

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूँ तोहि चेत न होत कहा रे॥
भूलि गयो गतिको फिरवो, अव तो दिन च्यारि भये ठकुरारे।
लागि कहा रह्यो अक्षनिके संग, चेतत क्यों नहिं चेतनहारे॥

इस पद्यमें 'दिन च्यारि भये ठकुरारे' का ध्वन्यर्थ काव्य-रसिकोंके लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतः संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि इनकी भाषामें बोधात्मिका शक्तिकी अपेक्षा रागात्मिका शक्तिकी प्रवलता है; पर इनका राग सांसारिक नहीं, आत्मिक अनुरक्ति है।

कवि भूधरदासने भाषाको सजाने, सँवारने और चमकीला बनानेमें अपनी पूर्ण पटुता प्रदर्शित की है। इनकी भाषामें भाव-प्रवणताके साथ मनोरंजकता भी है। इनके काव्यमें कहीं प्रसाद माधुर्य है तो कहीं ओज माधुर्य।

भावोंको तीव्रतर बनानेके लिए नाटकीय भाषाशैलीका प्रयोग भी कवि भूधरदासने किया है। आत्मानुभूतिकी अभिव्यञ्जना इस शैलीमें किस प्रकार की जा सकती है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है—

जोई दिन कटै सोई आयुमें अवसि घटै,
बूँद बूँद वीतै जैसे अन्जुलीको जल है।
देह नित छीन होत नैन तेज हीन होत,
जोवन मलीन होत छीन होत वल है॥
आवै जरा नेरी तकै अन्तक अहेरी आय,
परभौ नजीक जात नरभौ विफल है।
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहीं मित्र काहे की कुशल है॥

इस पद्यमें 'ऐसी दशा माहीं मित्र काहे की कुशल है' में सम्बोधनपर जोर देकर भाषाको भावप्रवण बनानेमें कविने कुछ उठा न रखा है।

बुधजन कविकी भाषामें भी चमकीलापन पाया जाता है "धर्म बिन कोई नहीं अपना, सब सम्पति धन थिर नहिं जगमें, जिसा रैन सपना" में भाषाका स्वच्छ और स्वस्थरूप है।

कवि दौलतरामने संगीतकी अवतारणा करते हुए भाषाके आभ्यन्तरिक और बाह्यरूपको सँवारनेकी पूरी चेष्टा की है। कहीं-कहीं तो भाषा परेड करते हुए सैनिकोंके समान चहलक़दमी करती हुई प्रतीत होती है। निम्नपद दर्शनीय है—

छाँड़त क्यों नहिं रे नर, रीति अयानी।
बार-बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी॥
विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुख-सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यों, घृत देत बिलोवत पानी॥
छाँड़त क्यों नहिं रे नर, रीति अयानी।

जैन कवियोंकी सामाजिक पदावलियाँ संगीतके उपकूलोंमें बँधकर कितनी वेगवती हुई हैं, यह उपर्युक्त पदसे स्पष्ट है। अपूर्व शब्दलालित्य, नवीन अन्तःसंगीत और भावाभिव्यक्तिकी नूतन शक्ति जैन कवियोंकी भाषामें विद्यमान है। निम्न पंक्तियोंमें तत्सम शब्दोंने भाषामें कितनी मिठास और लचक उत्पन्न की है, यह दर्शनीय है—

नवल धवल पल सोहैं कलमें, क्षुधतृष व्याधि टरी।
हलत न पलक अलक नख बढ़त न, गति नभमाँहि करी॥
ध्यानकृपान पानि गहि नाशी त्रेसठ प्रकृति अरी।
जा-बिन शरन भरन जर घर घर महा असात भरी।
दौल तास पद दास होत है, वास-मुक्ति-नगरी।
ध्यानकृपान पानि गहि नाशी, त्रेसठ प्रकृति अरी।

जैनकवियोंकी वर्ण-साधना भी अद्वितीय है। च त न र ल व आदि कोमल वर्णोंकी आवृत्तिने काव्यमें संगीत-सौन्दर्य उत्पन्न करनेमें बड़ी सहायता प्रदान की है। इन वर्णोंके उच्चारणसे श्रुति-मधुरता उत्पन्न होती है। री, रे आदि सम्बोधनोंकी आवृत्तिने तो भाषाका रूप और भी निखार दिया है। शब्दचित्र पाठकोंके समक्ष एक साकार मूर्ति प्रस्तुत करते हैं। निम्न पद्यमें 'च' की आवृत्ति दर्शनीय है—

चितवत वदन अमल चन्द्रोपम तज चिन्ता चित होय अकामी।
त्रिभुवनचंद पाप तप चन्दन, नमत चरन चन्द्रादिक नामी॥
तिहुँ जग छई चन्द्रिका कीरति चिह्न-चन्द्र चिंतत शिवगामी।
वन्दों चतुर-चकोर चन्द्रमा चन्द्रवरन चन्द्रप्रभ स्वामी॥

शब्दसाधना और शब्द योजना भी जैन कवियोंकी अनूठी हुई है। सहानुभूति, अनुराग, विराग, ईर्ष्या, घृणा आदि भावनाओंको तीव्र या तीव्रतर बनानेमें शब्द-चयन और शब्दयोजनाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक शब्दमें इस प्रकारकी लहरें विद्यमान हैं, जिनसे पाठकका हृदय स्पन्दित हुए बिना नहीं रह सकता। अतः पाठक देखेंगे कि कवि भगवतीदासने भाव और विषयके अनुकूल भाषाके पट-परिवर्तनमें कितनी कुशलता प्रदर्शित की है—

अचेतनकी देहरी, न कीजे यासों नेह री,
ये औगुनकी गेहरी परम दुख भरी है।
याहीके सनेहरी न आवै कर्म छेहरी,
सुपावे दुःख तेहरी जे याकी प्रीति करी है।
अनादि लगी जेहरी जु देखत ही खेहरी,
तू यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है।
कामगज केहरी, सुराग द्वेष केहरी,
तू यामें हग देहरी जो मिथ्या मति दरी है।

उपर्युक्त पद्यमें 'री'की आवृत्ति प्रवाहमें तीव्रता प्रदान कर रही है। मानवीय भूलोंका परिणाम कवि अंगुलि-निर्देश द्वारा वतला रहा है। लम्बी कविताओंमें एकरसता दूर करनेके लिए छन्दपरिवर्तनके साथ पद या अक्षरावृत्ति भी की गयी है। लयमें परिवर्तन होते ही मानस के भावलोकमें सिहरन आ जाती है और अभिनव लहरियों द्वारा नव-रूपका संचार होता है। भाव और छन्दोंका परिवर्तन मणिकांचन संयोग उपस्थित कर रहा है। कवि दौलतरामने निम्न पद्यमें भाषाका रंगरूप कितना सँवारा है। ग्रहशीलता और प्रसाद गुण कूट कर भरे गये हैं। फालतू और भरतीके शब्द नहीं मिलेंगे, वाक्य भावानुकूल बड़े और छोटे होते गये हैं।

अब मन मेरा वे, सीख वचन सुन मेरा।
भजि जिनवरपद वे, जो विनशै दुख तेरा॥
विनशै दुख तेरा भवघन केरा, मनवचतन जिन चरन भजो।
पंचकरन वश राख सुज्ञानी मिथ्यामतमग दौर तजो॥
मिथ्यामतमगपगि अनादितैं, तैं चहुँगाति कीन्हा केरा।
अवहूँ चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुनि मेरा॥

वाक्ययोजना और पदसंघटनकी दृष्टिसे भी जैन हिन्दी साहित्यमें भाषाका प्रयोग उत्तम हुआ है। 'आँख भर लाना', 'धुन लगना', 'चित्र वन जाना', 'दमपर आ बनना' 'पत्थरका पानी होना', "जब झोंपरी जरन लागी, कुँआके खुदाये तब कौन काज सरि है", 'टचर बैठना', 'ढेर हो जाना', तीन-तेरह आदि मुहावरोंके प्रयोग द्वारा भाषाको शक्तिशाली बनाया गया है।

इस शताब्दीके कवियोंकी भाषा विशुद्ध, संयत और परिमार्जित खड़ी बोली है। कवियोंने भाषाको प्रवाहपूर्ण, सरस, सरल, प्रसादगुणयुक्त, चुटीली और बोधगम्य बनानेकी पूरी चेष्टा की है। लाक्षणिकता और चित्रमयता भी आजकी भाषामें पायी जाती है।

छन्द-विधान

मानवकी भावनाओं और अनुभूतियोंकी सजीव अभिव्यंजना साहित्य है और ये भावनाएँ तथा अनुभूतियाँ कल्पना लोककी वस्तु नहीं है, किन्तु हमारे अन्तर्जगत्‌की प्रच्छन्न वस्तु हैं। साहित्यकार लय और छन्दके माध्यमसे अपनी अनुभूतियोंकी अचल तन्मयतामें, एकात्म अनुभवकी भावनामें विभोर हो कलाको चिरन्तन प्राणतत्त्वका स्पर्श कराता है। अतएव छन्द कविके अन्तर्जगत्‌की वह अभिव्यक्ति है, जिसपर नियमका अंकुश नहीं रखा जा सकता, फिर भी भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभि-व्यक्तियोंके लिए स्वरके आरोह और अवरोहकी परम आवश्यकता है। स्पन्दन, कम्पन और धमनियोंमें रक्तोष्णका संचार लय और छन्दके द्वारा ही सम्भव है। गानके स्वर और लयको सुनकर अन्तरकी रागिनीका उद्रेक इतना अधिक हो जाता है, भावनाएँ इतनी सघन हो जाती हैं कि अगले पद या चरणको सुनने अथवा पढ़नेकी उत्कंठा जागृत हुए बिना नही रह सकती। गूँजते स्वरकी पृष्ठभूमिपर नूतन मसृण भावनाएँ अभिनव रमणीय विश्वका सृजन करने लगती हैं। अतः आत्मविभोर करने या होनेके लिए काव्यमें छन्द विधान किया गया है।

छन्द-विधान नाद-सौन्दर्यकी विशेषतापर अवलम्बित है। यह कोई बाहरी वस्तु नहीं, प्रत्युत जीवन तत्त्वोंकी सजीव अभिव्यञ्जनाके लिए भाषाका विधान है। यह विधान काव्यके लिए बन्धन कभी नहीं होता, अपितु लय-सौन्दर्यकी वृद्धि और पोषण करनेके निमित्त एक ऐसी आधार-शिला है, जो नाद-सौन्दर्यको उच्च, नम्र, समतल, विस्तृत और सरस बनानेमें सक्षम है। साधारण वाक्यमें जो प्रवाह और क्षमता लक्षित नहीं होती, वह छन्द व्यवस्थासे पैदा कर ली जाती है। भाषाका भव्य-प्रयोग छन्द-विधान कविताका प्राणापहारक नहीं अपितु धनुषपर चढ़ी प्रत्यंचाके तुल्य उसकी शक्तिका वर्धक है। जिस प्रकार नदीकी स्वाभाविक धाराको तीव्र और प्रवहमान बनानेके लिए पक्के घाटोंकी आवश्यकता होती है,

उसी प्रकार भावनाओं और अनुभूतियोंको प्रभावोत्पादक बनानेके लिए छन्दोंकी आवश्यकता है। सीधे-सादे गद्यके वाक्योंमें जोश नहीं रहता और न प्रेषणीयतत्त्व ही आ पाता है, अतएव भाषाके लाक्षणिक प्रयोगके लिए लय और छन्दका उपयोग प्राचीन कालसे ही मनीषी करते आ रहे हैं। स्वर-माधुर्य और काव्य चमत्कारके लिए भी लयात्मक-प्रवृत्तिका होना आवश्यक है। पदावलियोंको भावुकतापूर्ण और स्मरणीय बनानेके लिए भी छन्दके साँचेमें भावनाओंको ढालना ही पड़ता है; अन्यथा प्रेषणीय-तत्त्वका समावेश नहीं हो सकता। यों तो बिना छन्दके भी कविता की जा सकती है, पर वह निष्प्राण कविता होगी। उसमें जीवन या गति नहीं आ सकेगी। अतएव इच्छित स्वरसाधनके लिए छन्द आज भी आवश्यक विधान है। यह स्वाभाविक लयके स्वरैक्य और समरूपताकी रक्षाके लिए अनिवार्य-सा है। भाषाकी स्वाभाविक लय-प्रवहणताके लिए छन्दका बन्धन भी अकृत्रिम और अनिवार्य-सा है। चुस्त भावनाओंकी अभि-व्यञ्जनाके लिए यह विधान उतना ही आवश्यक है, जितना शरीरके स्वरयन्त्रको शक्तिशाली बनानेके लिए उच्चारणोपयोगी अवयवोंका सशक्त रहना।

जैन कवियोंने अपने काव्यमें वार्णिक और मात्रिक दोनों ही प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है। वार्णिक छन्दमें वर्णोंके लघु-गुरुके अनुसार क्रम और संख्या आदिसे अन्ततक समरूपमें रहती है और मात्रिक छन्दमें मात्राओंकी संख्या, यति नियमके साथ निश्चित रहती है, अक्षरोंकी न्यूना-धिकताका ख़याल नहीं किया जाता है।

जैनकाव्योंमें दोहा, चौपाई, छप्पय, कवित्त, सवैया इकतीसा, सवैया तेईसा, अडिल्ल, सोरठा, घत्ता, कुसुमलता, व्योमावती, घनाक्षरी, पद्धरी, तोमर, कुंडलिया, वसन्ततिलका आदि सभी छन्दोंका प्रयोग किया है। दूहा, दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैये और घनाक्षरी जैनकवियोंके विशेष छन्द रहे हैं। अपभ्रंश कालसे लेकर १९ वीं सतीके अन्ततक जैनकवियोंने

छप्पय, कवित्त और सवैयोंका बड़ी ही बारीकीसे प्रयोग किया है। एक सच्चे कलाकारके समान मीनाकारी और पच्चीकारी जैनकवि करते रहे हैं। अपभ्रंश कविताओंमें दोहाके सैकड़ों भेद-प्रभेदकर नवीन प्रयोग किये गये हैं। सन्तयुगमें लावनी और पद भी विपुल परिमाणमें लिखे गये हैं। इन सभी पदोंमें संगीतका प्रभाव इतनी प्रचुर मात्रामें विद्यमान है, जिससे आध्यात्मिक रस बरसता है। मधुर रस काव्यमें सुन्दर ध्वनि योजनासे ही निष्पन्न होता है। कोमलपदरचनाने नादविशेषका सन्निवेश करके आनन्दको और भी आह्लादमय बनानेका प्रयास किया है।

संस्कृत छन्द वसन्ततिलका, मालिनी, भुजंगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित और मंदाक्रान्ताका प्रयोग भी जैनकवियोंने काव्यके भावोंको बाँधनेके लिए ही नहीं किया, किन्तु राग और तालपर कोमलकान्तपदावलियोंको बैठ कर अमृतकी वर्षा करनेके लिए किया है। अतएव यहाँ एकाध संगीतका लययुक्त उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

भुजंगप्रयात

तुमी कल्पनातीत कल्यानकारी। कलंकापहारी भवांभोधितारी।
रमाकंत अरहंत हंता भवारी। कृतांतांतकारी महा ब्रह्मचारी॥
नमो कर्मभेत्ता समस्तार्थ वेत्ता। नमो तत्त्वनेता चिदानन्दधारी।
प्रपद्ये शरण्यं विभो लोक धन्यं। प्रभो विघ्ननिघ्नाय संसारतारी॥

—वृन्दावन विलास पृ० ६८

शार्दूलविक्रीडितको गारवा राग और झंपा तालमें, भुजंगप्रयातको बिलावल राग और दादरा तालमें एवं वसन्ततिलकाको भैरव राग और झुमरा तालमें कवि मनरंगलालने गाया है। मनरंगका चौबीसी पूजापाठ संगीतकी दृष्टिसे अद्भुत है। इसमें प्रायः सभी प्रमुख संस्कृतके छन्दोंका प्रयोग कविने बड़ी निपुणतासे किया है। वार्णिकवृत्तोंको श्रुतिमधुर बनानेका कविने पूरा प्रयास किया है। न, म, त, र, ल और व वर्णोंकी

आवृत्ति द्वारा अनेक छन्दोंमें अपूर्व मिठास विद्यमान है। कर्णकटु, कर्कश और अर्थहीन शब्दोंका प्रयोग बिल्कुल नहीं किया है। छन्दोंकी लय और तालका पूरा ध्यान रखा है।

पुरातन छन्दोंके अतिरिक्त जैनकवियोंने कतिपय नवीन छन्दोंका भी उपयोग किया है, वाला छन्दके अनेक भेद-प्रभेदोंका प्रयोग जैनकवियोंके काव्योंमें विद्यमान है। कवि भूधरदासने अपने पार्श्वपुराणमें चार चरण-वाले इस छन्दमें पहला, दूसरा और तीसरा चरण इन्द्रवज्राका और चौथा चरण उपेन्द्रवज्राका रखा है। पद्यमें माधुर्य लानेके लिए प्रत्येक चरणके मध्य भागमें हल्का-सा विराम रखा है; जिससे स्वराघात होनेके कारण मधुरिमा द्विगुणित हो गयी है।

मात्राछन्दकी उद्भावना तो बिल्कुल नवीन है। कवि भूधरदासने बताया है कि इसके प्रथम और तृतीय चरणमें ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ, अन्तमें लघु और लघुका पूर्ववर्ती अर्थात् उपान्त्य वर्ण गुरु होता है। दूसरे और चौथे चरणमें बारह-बारह मात्राएँ और अन्तके दो वर्ण गुरु होते हैं। इस छन्दके अनेक भेद-प्रभेदोंका प्रयोग भी कविने सुन्दर रूपमें किया है। यद्यपि यह मात्रिक छन्द है,पर माधुर्यके लिए इसमें ह्रस्व-वर्णोंका प्रयोग ही अच्छा माना जाता है।

कवि बनारसीदासने अपने नाटक समयसारमें सवैया छन्दके विभिन्न भेद-प्रभेदोंका प्रयोग किया है। यति और गणके नियमोंने छन्दोंमें लयकी तरंगोंका तारतम्य रखा है। लम्बे पद या चरण नहीं रखे हैं, जिससे श्वास क्रियाकी सुगमतामें किसी प्रकारकी रुकावट हो और पदका क्रम अना-यास ही भंग हो जाय। यहाँ एक-दो उदाहरण कलाकारकी सूक्ष्म कारी-गरीको प्रदर्शित करनेके लिए दिये जाते हैं। पाठक देखेंगे कि ध्वनि-विश्लेषणके नियमानुसार लय-तरंगका समावेश कितने अद्भुत ढंगसे किया है। गुरु-लघुके तारतम्यने राग और तालको अद्भुत संतुलन प्रदान कर रस वर्षा करनेमें कुछ उठा नहीं रखा है।

सवैया तेईसा—

या घटमें भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो।
तामँहि और सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करै अतिभारो॥
फेरत भेष दिखावत कौतुक, सो जलिये वरनादि पसारो।
मोहसुँ भिन्न जुदो जड़ सों, चिनमूरति नाटक देखन हारो॥

—नाटक समयसार २।९९

सैवया इकतीसा—

जैसे गजराज नाज घासके गरास करि,
भक्षत सुभाय नहि भिन्न रस लियो है।
जैसे मतवारो नहि जानै सिखरनि स्वाद,
जुंगमें मगन कहै गऊ दूध पियो हैं॥
तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव,
पग्यो पाप पुन्यसों सहज सुन्न हियो है।
चेतन अचेतन दुहूको मिश्र पिण्ड लखि,
एकमेक मानै न विवेक कछु कियो है॥

पद्मावती छन्दका प्रयोग कवि बनारसीदासने हृत्तरंगोंको किस प्रकार आलोकित करनेके लिए किया है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है। जिस प्रकार वायुके झोंकेसे नदीमें कभी हल्की तरंगें और कभी उत्ताल तरंगें तरंगित होती हैं, उसी प्रकार कविने बलाघात द्वारा लयात्मक पदाविधानको प्रदर्शित किया है—

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो सुरलोक सम्पदा पावै॥
ताकी दृष्टि लखै शिवमारग, सो निरबन्ध भावना भावै।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कह, विधिसों सप्तखेत धन वावै॥

—बनारसी-विलास पृ० ५७

घनाक्षरी छन्दका प्रयोग भी कवि बनारसीदासने लयविधानके नियमोंका प्रदर्शन करनेके लिए किया है। लयात्मक तरंगें इस कठोर छन्दमें भी किस प्रकार स्वरकी मध्यरेखाके ऊपर-नीचे जाकर लचक उत्पन्न करती हैं, यह दर्शनीय है।

घनाक्षरी

ताही को सुबुद्धि वरै रमा ताकी चाह करै,
चन्दन सरूप हो सुयश ताहि चरचै।
सहज सुहाग पावै, सुरग समीप आवै,
बार बार मुकति रमनि ताहि अरचै।
ताहिके शरीर को अलिंगन अरोगताई,
मंगल करै मिताई प्रीत करै परचै।
जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरम के हेतको सुखेत धन खरचै॥

—बनारसी विलास पृ० ५६

कवि बनारसीदासने वस्तुछन्द नामके एक नये छन्दका भी प्रयोग किया है। यद्यपि इस छन्दमें कोई विशेष लोच-लचक नहीं है, तो भी संगीतात्मकता अवश्य है।

कवित्त छन्दमें लय और तालका सुन्दर समावेश भैया भगवतीदासने किया है। मात्राओं और वर्णोंकी संख्याकी गणनाके सिवा विराम और गति विधिपर भी ध्यान रखा है, जिससे पढ़ते ही पाठककी हृदय-वीनके तार झनझना उठते हैं। ध्वनि और अर्थमें साम्यका विधान भी इस छन्द द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मधुर ध्वनियोंकी योजना भी प्रायः कवित्तोंमें की गयी है।

कवित्त

कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझि-रीझि,
वाहीसों सनेह करै काम राग अङ्ग में।

कोउ तो लहै आनन्द लक्ष कोटि जोरि-जोरि
लक्ष लक्ष मान करै लच्छि की तरङ्ग में ॥
कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै,
मो समान दूसरो न देखो कोऊ जङ्ग में।
कहैं कहा 'भैया' कछु कहिवै की वात नाहिं,
सब जग देखियतु राग रस रङ्ग में ॥
—ब्रह्मविलास पृ० १७

मात्रिक कवित्त

चेतन नींद बड़ी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय।
काल अनादि भये तोहि सोवत, विन जागे समकित क्यों होय ॥
निहचै शुद्ध जयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय।
हंस अंश उज्वल है जबही, तबही जीव सिद्धसम होय ॥
—ब्रह्मविलास पृ० २६-२७

छप्पय छन्दमें इसी कविने अनुभूति, कल्पना और बुद्धि इन तत्त्वोंका अच्छा समन्वय किया है। रूप सौन्दर्यके साथ भावसौन्दर्य भी अभिव्यक्त हुआ है। अपने अन्तस्तलके ज्वारको मानवके मंगलके लिए बड़े ही सुन्दर ढंगसे कविने अभिव्यंजित किया है। कविकी कविताविलासके खारे समुद्रको अपेय समझकर विपथगाके मधुर तीरको प्राप्त करनेके लिए साधन प्रस्तुत करते हैं। कई छप्पयमें तो कविने उल्लास और आह्लादकी मादकताका अच्छा विश्लेषण किया है। जैन तीर्थंकरोंकी स्तुतियोंके सिवा अन्य रसोंकी व्यंजनामें भी छप्पयका प्रयोग किया गया है। द्वित्व वर्णोंने संगीतात्मकताको और बढ़ा दिया है—

जो अरहंत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे।
आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिज्जे ॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पर राजै।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्धि विराजै ॥

सब जीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूपमय।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय॥

कवि भूधरदासके काव्य-ग्रन्थोंमें छन्दवैचित्र्यका उपयोग सर्वत्र मिलेगा। इन्होंने सभी सुन्दर छन्दोंका प्रयोग रसानुकूल किया है। वैराग्यका निरूपण करनेके लिए नरेन्द्र छन्दको चुना है, इसमें अन्तके गुरुवर्णपर जोर देनेसे सारी पंक्ति तरंगित हो जाती है। संसारके कुत्सित और घृणित स्वार्थ सामने नग्न नृत्य करते हुए उपस्थित हो जाते हैं।

इहि विधि राज करै नरनायक, भोगै पुन्न विशाला।
सुखसागर में रमत निरंतर, जात न जानै काला।

एक दिना शुभकर्म संजोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे॥

× × ×

किसही घर कलहारी नारी, कै वैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहर दीखे, किसही उर दुचिताई॥

व्योमवती छन्दका प्रयोग तो कवि भूधरदासने बहुत ही उत्तम ढंगसे किया है। अमूर्त भावनाएँ मूर्त्तिमान होकर सामने प्रस्तुत हो जाती हैं। संगीतकी लयने रस वर्षा करनेमें और भी अधिक सहायता की है—

भूखप्यास पीड़ै उर अंतर, प्रजलै आंत देह सब दागै।
अग्निसरूप धूप ग्रीपम की, ताती बाल झालसी लागै॥
तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक ग्रीपमकी बाधा, सहत साधु धीरज नहीं त्यागै॥

× × ×

जे प्रधान केहरि को पकरैं, पन्नग पकर पाँवसों चापै।
जिनकी तनक देख भौं बाँकी, कोटक सूरदीनता जापै॥

ऐसे पुरुष पहार उड़ावन, प्रलय पवन तिय वेद पयापै।
धन्य धन्य ते साधु साहसी, मन सुमेरु जिनको नहिं काँपै॥

चौदह मात्राके चाल छन्दमें कविने भावनाओंके आरोह-अवरोहका कितना सजीव और हृदय-ग्राह्य निरूपण किया है, यह निम्न पदमें दर्शनीय है।

यों भोग विषै अति भारी, तपतैं न कभी तनधारी।
जो अधिक उदै यह आवै, तौ अधिकी चाह बढ़ावै॥

लयात्मक छन्दोंमें हरिगीतिका छन्दका स्थान प्रमुख है। इसमें सोलह और बारह मात्राओंके विरामसे अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरणमें लयके संचरणके लिए ५ वीं, १२ वीं, १९ वीं और २६ वीं मात्राएँ लघु होती हैं। अन्तिम दो मात्राओंमें उपान्त्य लघु और अन्त्य दीर्घ होती है। लय-विधानके लिए आवश्यक नियमोंका पालन करना भी छन्द-माधुर्यके लिए उपयोगी होता है। कवि दौलतरामने अपनी 'छहढाला'में हरिगीतिका छन्दोंका सुन्दर प्रयोग किया है। निम्न पद्यका श्रुति-माधुर्य काव्यको कितना चमत्कृत कर रहा है, यह स्वयमेव स्पष्ट है—

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर संग दशधातैं टलैं।
परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर श्रुतिसुखद सबसंशय हरैं।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचन्द्रतैं अमृत झरैं॥

—छहढाला, छठीं ढाल

जैन साहित्यमें संस्कृत छन्द और पुरातन हिन्दी छन्दोंके साथ आधुनिक नवीन छन्दोंका प्रयोग भी पाया जाता है। मुक्तकछन्द और गीतोंका प्रयोग आज अनेक जैन कवि कर रहे हैं।

मुक्तकछन्द लिखनेवाले श्री कवि चैनसुखदास न्यायतीर्थ, श्री पं० दरबारीलाल सत्यभक्त, कवि खूबचन्द पुष्कल, कवि वीरेन्द्रकुमार, कवि

ईश्वरचन्द्र प्रभृति हैं। भावनाओंकी समुचित अभिव्यंजनाके लिए अनेक नवीन छन्दोंका प्रयोग किया है। आज जैन प्रबन्धकाव्योंमें सभी प्रचलित छन्दोंका व्यवहार किया जा रहा है। गीतोंमें भावनाकी तरह छन्द भी अत्याधुनिक प्रयुक्त हो रहे हैं।

हिन्दी-जैन-साहित्यमें अलंकार-योजना

काव्यके दो पक्ष हैं—कलापक्ष और भावपक्ष। जैसे मानव-शरीर और प्राणोंका समवाय है, उसी प्रकार कलापक्ष काव्यका शरीर और भावपक्ष प्राण है। दोनों आपसमें सम्बद्ध हैं। एकके अभावमें दूसरेकी सुस्थिति सम्भव नहीं। भाषा अलंकार, प्रतीक योजना प्रभृति कलापक्षके अन्तर्गत हैं और अनुभूति भावपक्षके। कोई भी कवि भावको तीव्र करने, व्यञ्जित करने तथा उनमें चमत्कार लानेके लिए अलंकारोंका प्रयोग करता है। जिस प्रकार काव्यको चिरन्तन बनानेके लिए अनुभूतिकी गहराई और सूक्ष्मता अपेक्षित है उसी प्रकार उस अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेके लिए चमत्कारपूर्ण अलंकृत शैलीकी भी आवश्यकता है।

हिन्दी-जैन कवियोंकी कविता-कामिनी अनाड़ी राजकुलाङ्गनाके समान न तो अधिक अलंकारोंके बोझसे दबी है और न ग्राम्यबालाके समान निराभरणा ही है। इसमें नागरिक रमणियोंके समान सुन्दर और उपयुक्त अलंकारोंका समावेश किया गया है। कवि बनारसीदास, भैया-भगवतीदास और भूधरदास जैसे रससिद्ध कवियोंने अभिव्यंजनाकी चमत्कारपूर्ण शैलीमें बड़ी चतुराईसे अलंकार योजना की है। वास्तविकता यह है कि प्रस्तुत वस्तुका वर्णन दो तरहसे किया जाता है—एकमें वस्तुका यथातथ्य वर्णन—अपनी ओरसे नमक मिर्च मिलाये बिना और दूसरीमें कल्पनाके प्रयोग द्वारा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदिसे अलंकृत करके अंग-प्रत्यंगके सौन्दर्यका निरूपण किया जाता है। कविकी प्रतिभा प्रस्तुत-

की अभिव्यंजनापर निर्भर है। अलंकार इस दिशामें परम-सहायक होते हैं। मनोभावोंको हृदय-स्पर्शी बनानेके लिए अलंकारोंकी योजना करना प्रत्येक कविके लिए आवश्यक है।

जैन-कवियोंने प्रस्तुतके प्रति अनुभूति उत्पन्न करानेके लिए जिस अप्रस्तुत की योजनाकी है, वह स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी है; साथ ही प्रस्तुतकी भाँति भावोद्रेक करनेमें सक्षम भी। कवि अपनी कल्पनाके बलसे प्रस्तुत प्रसंगके मेलमें अनुरंजक अप्रस्तुतकी योजना कर आत्माभिव्यंजनमें सफल हुए हैं। वस्तुतः जैन कवियोंने चर्म-चक्षुओंसे देखे गये पदार्थोंका अनुभव कर कल्पना द्वारा एक ऐसा नया रूप दिया है, जिससे वाह्य-जगत् और अन्तर्जगत्का सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने बाह्य जगत्के पदार्थोंको अपने अन्तःकरणमें ले जाकर उन्हें अपने भावोंसे अनुरंजित किया है और विधायक कल्पना-द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी सुन्दर अभिव्यंजना की है। आत्माभिव्यंजनमें जो कवि जितना सफल होता है, वह उतना ही उत्कृष्ट माना जाता है और यह आत्माभिव्यंजन तबतक सम्भव नहीं जबतक प्रस्तुत वस्तुके लिए उसीके मेलकी दूसरी अप्रस्तुत वस्तु की योजना न की जाय। मनीषियोंने इस योजनाको ही अलंकार कहा है। काव्यानन्दका उपभोग तभी सम्भव है, जब काव्यका कलेवर कलामय होनेके साथ अनुभूतिकी विभूतिसे सम्पन्न हो। जो कवि अनुभूतिको जितना ही सुन्दर बनानेका प्रयास करता है उसकी कविता उतनी ही निखरती जाती है। यह तभी सम्भव है जब उपमान सुन्दर हों। अतएव अलंकार अनुभूतिको सरस और सुन्दर बनाते हैं। कवितामे भाव-प्रवणता तभी आ सकती है, जब रूप-योजनाके लिए अलंकृत और सँवारे हुए पदोंका प्रयोग किया जाय। दूसरे शब्दोंमें इसीको अलंकार कहते हैं।

शब्दालंकारोंमे शब्दोंको चमत्कृत करनेके साथ भावोंको तीव्रता-प्रदान करनेके लिए अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति आदिका प्रयोग सभी जैन काव्योंमें मिलता है। "**सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन**

कनक नग। धवल परम पद-रमन जगत-जन अमल कमल खग", में अनुप्रासकी सुन्दर छटा है। भैया भगवतीदासके निम्न पद्यमें कितना सुन्दर अनुप्रास है। इसने अनुभूतिको तीव्रता प्रदान की है।—यह देखते ही बनता है।

झटाक कर्म तोरिके छटाँक गाँठ छोरके,
पटाक पाप मोरके तटाक दै मृषा गई।
चटाक चिन्ह जानिके, भटाक हीय आनके,
नटाकि नृत्य मानके खटाकि तै खरी ठई॥
घटाके घोर फारिके तटाक वन्ध टारके,
अटाके रामधारके रटाक रामकी जई।
गटाक शुद्ध पानके हटाकि आव आनको,
घटाकि आप दानको सटाक ज्यों वधू लई॥

कवि बनारसीदासने यमकालंकार की—"केवल पद महिमा कहो, कहो सिद्ध गुणगान" में कितनी सुष्ठु योजना की है। भैया भगवतीदासकी कवितामें तो यमकालंकारकी भरमार है। निम्न पद्यमें यमककी कितनी सुन्दर योजना की गई है।

एक मतवाले कहें अन्य मतवारे सब,
एक मतवारे पर वारे मत सारे हैं।
एक पंच तत्व वारे एक-एक तत्व वारे,
एक भ्रम मतवारे एक एक न्यारे हैं।
जैसे मतवारे बकें तैसे मतवारे बकें,
तासों मतवारे तकें विना मतवारे हैं।
शान्तिरस वारे कहैं मतको निवारे रहैं,
तेई प्रान प्यारे रहें और सब वारे हैं॥

इस पद्यमें प्रथम मतवारेका अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारेका

अर्थ मदोन्मत्त है, दूसरी पंक्तिमें प्रथम मतवारेका अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारेका अर्थ मतन्योछावर है।

भैया भगवतीदासने 'परमात्म शतक'में आत्माको सम्बोधित करते हुए परमात्माका रूप यमकालंकारमें बहुत ही सुन्दर दिखलाया है।

पीरे होहु सुजान, पीरे कारे है रहे।
पीरे तुम विन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ॥

इस पद्यमें प्रथम पीरेका अर्थ पियरे अर्थात् हे प्रिय है और द्वितीय पीरेका अर्थ पीले है। द्वितीय पंक्तिमें प्रथम पीरेका अर्थ पीड़े और द्वितीय पीरेका अर्थ पी-रे अर्थात् पियो है। इसी प्रकार निम्न पद्यमें भी यमकालंकार भावोंकी उत्कर्ष व्यंजनामें कितना सहायक है। साधक संसारके विषयोंसे ग्लानि प्राप्त करनेके अनन्तर कहता है कि मैं बलवान कामको न जीत सका, व्यर्थ ही विषया-सक्त रहा। आत्म-साधना न कर मैं कामदेवके आधीन बना रहा अतः मुझसे मूर्ख और कौन होगा। जब विषयोंसे पूर्ण विरक्ति हो जाती है, उस समय इस प्रकारके भाव या विचारोंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि आत्मभर्त्सना या आत्मालोचनाकी अग्नि-के विना विकार भस्म नहीं हो सकते हैं।

मैं न काम जीत्यो बली, मैं न काम रसलीन।
मैं न काम अपनो कियो, मैं न काम आधीन॥

इस पद्यमें प्रथम पंक्तिमें प्रथम न कामका अर्थ है कामदेवको नहीं और दूसरे न कामका अर्थ है व्यर्थ ही, दूसरी पंक्तिमें न कामका अर्थ है कार्य नहीं किया और दूसरे नकामका मैं न काम, इस प्रकारका परि-च्छेदका अर्थ करनेपर कामदेवके आधीन अर्थ निकलता है। इसी प्रकार निम्न पद्यमें "तारी" शब्दके विभिन्न अर्थ कर पदावृत्ति की गई है।

तारी पी तुम भूलकर, तारी तन रस लीन।
तारी खोजहु ज्ञान की, तारी पति वर लीन॥

कवि वृन्दावनदासने भी गुरुकी स्तुतिमें शब्दालंकारोंकी सुन्दर योजना की है। "जिन नामके परभावसों, परभावकों दहो" में प्रथम परभावका अर्थ प्रभाव है और द्वितीय परभावका अर्थ परभाव-भेद बुद्धि या अन्य पदार्थ विषयक बुद्धि है।

कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिकी व्यंजना वक्रोक्ति अलंकारमें भी की है। इस नामरूपात्मक जगत्के बीच परमार्थतत्त्वका शुद्ध स्वरूप भेदबुद्धि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वात्मानुभव ही शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेमें सहायक होता है।

अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, असम, दृष्टान्त, रूपक, विनोक्ति, विचित्र, उल्लेख, सहोक्ति, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, श्लेष, विरोधाभास एवं व्याजस्तुति आदिका प्रयोग जैन काव्योंमें पाया जाता है।

जैन कवियोंने सादृश्यमूलक अलंकारोंकी योजना स्वरूपमात्रका बोध करानेके लिए नहीं की है, किन्तु उपमेयके भावको उद्बुद्ध करनेके लिए की है। स्वरूपमात्र सादृश्यमें उपमान-द्वारा केवल उपमेयकी आकृति या रंगका बोध हो सकता है किन्तु प्रस्तुतके समान ही आकृतिवाले अप्रस्तुतकी योजना कर देने मात्रसे तज्जन्य भावका उदय नहीं हो सकता है। अतएव "गो सदृशो गवयः" के समान सादृश्यबोधक वाक्योंमें अलंकार नहीं हो सकता। जबतक अप्रस्तुतके द्वारा प्रस्तुतके रूप या गुणमें सौन्दर्य या उत्कर्ष नहीं पहुँचता है तबतक अर्थालंकार नहीं माना जा सकता। अर्थालंकारके लिए "सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपकारम्" अर्थात् सादृश्यमें चमत्कृत्याधायकत्वका रहना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि जिस अप्रस्तुतकी योजनासे भावानुभूतिमें वृद्धि हो वही वास्तवमें आलंकारिक रमणीयता है। कवि बनारसीदासने निम्न पद्यमें उपमालंकारकी कितनी सुन्दर योजना की है।

आतमको अहित अध्यातम रहित रसो,
आसव महातम अखण्ड अण्डवत है।
ताको विसतार गिलिवेको परगट भयो,
ब्रहमंडको विकासी ब्रह्म मंडवत है॥
जामै सब रूप जो सबमें सब रूप सोयें,
सबनिसों अलिप्त अकाश खंडवत है।
सोहै ज्ञानभानु शुद्ध संवरको भेष धरे,
ताकी रुचि रेखको हमारे दण्डवत है॥

समदृष्टिकी प्रशंसा करते हुए कवि बनारसीदासने उपमालंकारकी अद्भुत छटा दिखलायी है। कवि कहता है—

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिव मारगमें जगमाँहि जिनेश्वरके लघुनन्दन॥

इस पद्यमें कविने चित्तकी उपमा चन्दनसे दी है। जिस प्रकार चन्दन शीतल होता है, आतापको दूर करता है, उसी प्रकार भेदविज्ञानी हृदय भी। अतएव यहाँ चाँदनी उपमान और हृदय उपमेय है। समान धर्म शीतलता है तथा उपमानवाची शब्द जिमि है। कवि कहता है कि जिनके मनमन्दिरमें आत्मविज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हो गया, उनका हृदय चन्दनके समान शीतल हो जाता है।

कवि मनरंगलालने निम्न पद्योंमें उपमालंकारकी योजना-द्वारा रसोत्कर्ष करनेमें कितनी विलक्षणता प्रदर्शित की है। भावना और चिन्तनमें कितना संतुलन है, यह उदाहरणोंसे स्पष्ट है।

गिरिसम वेंच गयन्द सुभनकों खरपर चित्त चलावे।
पाय धरम लब्धि त्यागि शठ विषय-भोगको ध्यावे॥
मुसिक्याय कही अब जावो। जन्मान्तर लौ अब खावो॥
ले हार मने मुसिक्याना। जिमि पावत भूखो दाना॥

कवि वृन्दावनदासने भगवद्भक्तिकी विशेषता बतलाते हुए उपमालंकारकी कितनी सुन्दर योजना की है। यद्यपि यह पूर्णोपमा है, पर इसमें आत्म-भावनाको अभिव्यक्त करनेके लिए कविने "सुन्दर नारी की नाक कटी है" को उपमान बनाकर "जिनचन्द पदाम्बुज प्रीति विना" जीवनको उपमेय मानकर भावोंको मूर्तिक रूप प्रदान करनेका आयास किया है।

सब ही विधिसों गुणवान बड़े, बलबुद्धि विभा नहीं टेक हटी है।
जिनचन्द पदाम्बुज प्रीति विना, जिमि सुन्दर नारीकी नाक कटी है॥

जैन कवियोंने अप्रस्तुत-द्वारा प्रस्तुतके भावोंकी सुन्दर अभिव्यंजना करनेका पूरा यत्न किया है। प्रतीकों-द्वारा, साम्य रूपमें, मूर्त्तके लिए अमूर्त्त रूपमें आधारके लिए आधेय रूपमें और मानवीकरणके रूपमें उपमालंकारकी योजना की गई है। कई कवियोंने निर्जीव वस्तुओंके वर्णनमें या सूक्ष्म भावोंकी गम्भीर अभिव्यंजनामें ऐसे उपमानोंका भी प्रयोग किया है, जिनसे मानवके सम्बन्धमें अभिव्यक्ति की गई है। साहित्यिक दृष्टिसे ये पद्य और भी महत्त्व रखते हैं।

सौन्दर्य और दृश्य चित्रणके लिए भी जैन काव्योंमें उपमा और उत्प्रेक्षाका अधिक व्यवहार किया है। इन अलंकारोंके सहारे इन्होंने अपनी कल्पनाका विस्तार बहुत दूरतक बढ़ाया है। कवि-समय-सिद्ध उपमानोंके अलावा नूतन उपमानोंका भी प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध उपमानोंके व्यवहारमें भी अपनी कलाका पूरा परिचय ये कवि दे सके हैं। चन्द्रप्रभ पुराणमें नेत्रोंकी उपमा कमलसे दी गयी है। कमलके तीन वर्ण प्रसिद्ध हैं—लाल, नीला, और श्वेत। बचपनमें नेत्र नीले वर्णके होते हैं अतएव उस समयके नेत्रोंकी उपमा नील कमलसे तथा युवावस्थामें नेत्र अरुण वर्णके होनेसे "कंजारुण लोचन" कहकर वर्णन किया गया है। वृद्धावस्थामें नेत्रका रंग कुछ श्वेत हो जाता है अतः "कंजश्वेत इव राजत" कहकर निरूपण किया है।

कविकी पहुँच कितनी दूरतक है यह उपर्युक्त उपमानोंकी योजनासे स्पष्ट है।

कज्जलयुक्त बालकोंकी बड़ी-बड़ी आँखें चित्तको हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। श्यामरंग भी चित्ताकर्षक और हृदयको शीतल करनेवाला होता है। अतएव केवल कमलकी उपमा यहाँ उपयुक्त नहीं हो सकती थी। इसी प्रकार युवावस्थामें अरुण नेत्र रहनेसे लाल कमलकी उपमा सौन्दर्यका पूरा चित्र सामने प्रस्तुत करनेमें सक्षम है। अरुणनेत्र प्रलाप, शूरता और दुस्साहसके सूचक हैं। वीर वेषके वर्णनमें अरुण कमलवत् नेत्रोंको कहना अधिक सौन्दर्य द्योतक है।

वृद्धावस्थामें शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है। तथा रक्तकी कमी होनेसे नेत्र भी स्वभावतः कुछ श्वेत हो जाते हैं। कविने वृद्धावस्थाका पूरा चित्र सामने लानेके लिए श्वेत कमलके समान नेत्रोंको बतलाया है। कवि वृन्दावनने जिनेन्द्रके नेत्रोंकी निम्न छप्पयके प्रथम चरणमें छह उपमाएँ दी हैं। और शेष पाँच चरणोंमें प्रत्येक उपमाके छः छः विशेषण दिये हैं। नेत्रोंकी दूसरी उपमा भी कमलसे ही है, पर यह उपमा साधारण नहीं है छः विशेषण युक्त है; अर्थात् सदल-पत्र सहित, विकसित, दिवसका, सजल-सरोवरका और मलयदेशका है। तात्पर्य यह है कि भगवान्के नेत्र मलयदेशमें विकसित दैवसिक सदल अरुण कमलके तुल्य हैं। साधारण कमलकी उपमा देनेसे यह अभिव्यंजना कभी नहीं हो सकती थी। कोमलता, दयालुता, सर्वज्ञता, हितोपदेशिता और वीतरागताकी भावनाएँ उक्त उपमानोंसे ही यथार्थमें अभिव्यंजित हो सकी हैं।

मीन कमल मद घनद अमिय अंतकु छवि छज्जै।
जुगल सदल अति अरुन, सघन उज्जव भय सज्जै॥
हुलसित्त विकसित समद, दानि नाकी अति क्रूरे।
केलि दिवस शुचि अति उदार, पोपक अरि चूरे॥

सम सरज नीत चित चिन्त दे, वृन्द सिण्ट अनशस्वर।
जल मलय महत अकहत अकृत, देवदृष्टि दुःखदृष्टि हर॥

उपर्युक्त पद्यसे स्पष्ट है कि कविका हृदय उपमानोंका अक्षय भण्डार है। ये उपमान प्रकृतिसे तो लिये ही गये हैं, पर कुछ परम्परा भुक्त भी हैं। ज्योंही कवि सौन्दर्यकी अभिव्यंजना करनेकी इच्छा करता है, त्योंही उपमान उसकी कल्पनाकी पिटारीसे निकलने लगते हैं। कवि दौलतरामने भी उपमानोंकी झड़ी लगा दी है। एक ही उपमेयका सर्वाङ्गीण चित्रण करनेके लिए अनेकानेक उपमानोंका एक ही साथ व्यवहार किया है।

पद्मासद्म पद्मपद पद्मा—मुक्त सद्म दरशावन है।
कलिमय-गंजन मन अलि रंजन मुनिजन सरन सुपावन है।

× × ×

जाको शासन पंचानन सो, कुमति मतंग-नशावन है।

जैन कवियोंकी एक विशेषता है कि उनके उपमान किसी न किसी भावको पुष्ट करनेके लिए ही आते हैं। विश्वमें मोहका बन्धन सबसे सबल होता है, संसारमें ऐसा कोई प्राणी नहीं, जिसे मोहका विष व्याप्त न हो। मोहका तीक्ष्ण विष प्राणीको सदा मूर्छित रखता है। अतः कवि दौलतराम और भैया भगवतीदासने इस मोहका चार उपमानों-द्वारा विश्लेषण किया है। व्याल, शराब, गरल और धतूरा। इन चारों उपमानोंसे भिन्न-भिन्न भावनाओंकी अभिव्यंजना होती है। व्याल–सर्प जिस प्रकार व्यक्तिको काट लेता है तो वह व्यक्ति सर्पके विषके प्रभावसे मूर्छित हो जाता है तन-बदनका उसको होश नहीं रहता; उसी प्रकार मोहाभिभूत हो जानेसे प्राणी भी विवेक शून्य हो जाता है। रात-दिन संसारके विषय साधनोंमें अनुरक्त रहता है। अतएव सर्प-विष द्वारा प्रस्तुत मोहके प्रभावका विश्लेषण किया गया है। इसी प्रकार अवशेष तीन उपमान भी मोहाभिभूत दशाकी अभिव्यंजना करनेमें समक्ष हैं।

मिथ्यात्वकी भावाभिव्यक्तिके लिए कवि बनारसीदासने तीन उपमानोंका प्रयोग किया है—मतंग, तिमिर और निशा। इन तीनों उपमानोंके द्वारा कविने मिथ्यात्वके प्रभावका निरूपण करनेमें अपूर्व सफलता प्राप्त की है। मिथ्यात्वको मदोन्मत्त हाथी इसलिए बताया गया है कि विवेकशून्य हो जानेपर व्यक्तिकी अवस्था मत्त हाथीसे कम नहीं होती। उसमें स्वेच्छाचारिता, अनियन्त्रित ऐन्द्रियक विषयोंका सेवन एवं आत्मज्ञानाभाव हो जाता है। इसी प्रकार अन्धकारके घनीभूत हो जानेसे पदार्थोंका दर्शन नहीं हो पाता है, पासमें रखी हुई वस्तु भी दिखलायी नहीं पड़ती है, और किसी अभीष्ट स्थानकी ओर गमन करना असम्भव हो जाता है। कविने उपमानके इन गुणों द्वारा उपमेय मिथ्यात्वकी विभिन्न विशेषताओंका विश्लेषण किया है। वस्तुतः उक्त उपमान प्रस्तुतके स्वारस्यका सुन्दर विश्लेषण करते हैं।

सम्यक्त्वकी विशेषता और विश्लेषणके लिए कवि भैया भगवतीदास, भूधरदास और द्यानतरायने चार उपमानोंका प्रयोग किया है—सिंह, सूर्य, प्रदीप और चिन्तामणि रत्न। जिस प्रकार सिंहके वनमें प्रवेश करते ही इतर जन्तु भयभीत हो जाते हैं और वे सिंहकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व-आत्मविश्वास गुणके आविर्भूत होते ही व्यक्तिकी सभी कमजोरियाँ समाप्त हो जाती हैं। मिथ्यात्व-अनात्मा विषयक श्रद्धान रूपी मदोन्मत्त हाथी सम्यक्त्वरूपी सिंहको देखते ही पलायमान हो जाता है। विषयकांक्षाएँ और राग-द्वेषाभिनिवेश सम्यक्त्वके पहलेतक ही रहते हैं, आत्म श्रद्धानके उत्पन्न होनेपर व्यक्तिकी समस्त क्रियाएँ आत्म-कल्याण के लिए ही होने लगती हैं। अतएव सम्यक्त्वके प्रभाव, प्रताप, सामर्थ्य और अन्य दिव्य विशेषताओंको दिखलानेके लिए सिंह उपमानका व्यवहार किया है। इसी प्रकार अवशेष उपमान भी सम्यक्त्वकी विशेषताका पूरा चित्र सामने प्रस्तुत करते हैं।

पञ्चेन्द्रियके विषयोंकी सारहीनता कानीकौड़ी, जलमन्थन कर घृत

निकालना, कुत्तेका सूखी हड्डी चबाकर स्वाद लेना आदि उपमानोंके द्वारा अभिव्यक्त की है। उपमालंकारका वर्णन हिन्दी जैन साहित्यमें बहुत विस्तारके साथ मिलता है। उपमाके पूर्णोपमा और लुप्तोपमा इन दोनों प्रधान भेदोंके साथ आर्थी, श्रौती, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता इन उपभेदोंका व्यवहार भी किया गया है। सादृश्य सम्बन्ध वाचक शब्द इव, यथा, वा, सी, से, सो, लो, जिमि आदि का प्रयोग भी यथा स्थान मिलता है।

कवि बनारसीदास उपमा और उत्प्रेक्षाके विशेषज्ञ हैं। आपके नाटक समयसारमें इन दोनों अलंकारोंके पर्याप्त उदाहरण आये हैं। निम्न पद्यमें कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है, कल्पनाकी उड़ान कितनी ऊँची है, यह देखते ही बनेगा।

ऊँचे-ऊँचे गढ़के कंगुरे यों विराजत हैं,
मानों नभ लीलवेकों दाँत दियो है।
सोहे चिहों उर उपवनकी सघनताई,
घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है॥
गहरी गम्भीर खाई ताकी उपमा बनाई,
नीचो करि आनत पताल जल पियो है।
ऐसो है नगर यामें नृप को न अंग कोऊ,
यों ही चिदानन्दसों शरीर भिन्न कियो है॥

उत्प्रेक्षा अलंकारका कवि बनारसीदासने कितने अनूठे ढंगसे प्रयोग किया है, भावोत्कर्ष कितना सुन्दर हुआ है—यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है।

थोरे से धक्का लगे ऐसे फट जाये मानों,
कागदकी पूरी कीधो चादर है चैल की।

संसारके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ कवि रूपचन्द पाण्डे और नयसूरिने की है। भागचन्द और बुधचन्दके पदोंमें भी उत्प्रेक्षाओंकी

भरमार है। कवि भूधरदासने हेतूत्प्रेक्षाका कितना सुन्दर समावेश किया है। कल्पनाकी उड़ानके साथ भावोंकी गहराई भी आश्चर्यजनक है।

काउसग्गा-मुद्रा धरि वनमें, ठाढ़े रिषभ रिद्धि तज दीनी।
निहचल अंग मेरु है मानों, दोऊ भुजा छोर जिन दीनी॥
फँसे अनन्त जन्तु जग-चहले, दुःखी देख करुना चित लीनी।
काटन काज तिन्हें समरथ प्रभु, किधौं बाँह ये दीरघ कीनी॥

भगवान्की कायोत्सर्ग स्थित मुद्राको देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि हे प्रभो! आपने अपनी दोनों विशाल भुजाओंको संसारकी कीचड़में फँसे प्राणियोंके निकालनेके लिए ही नीचेकी ओर लटका रखा है। ऊपरके पद्यमें इसी भावको दिखलाया गया है।

भगवान् शान्तिनाथकी स्तुति करता हुआ कवि कहता है कि देवलोग भगवान्को प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, उनके मुकुटोंमें लगी नीलमणियोंकी छाया भगवान्के चरणोंपर पड़ती है जिससे ऐसा मालूम पड़ता है मानो भगवान्के चरण-कमलोंकी सुगन्धका पान करनेके लिए अनेक भ्रमर ही एकत्र हो गये हैं—कवि कहता है—

शान्ति जिनेश जयो जगतेश हरे अघताप निशेश की नाईं।
सेवत पाँय सुरासुरराय नमैं सिरनाय महीतलताईं॥
मौलि लगे मनिनील दिपैं प्रभुके चरनो झलकै वह झाईं।
सूँघन पाँय सरोज-सुगन्धि किधौं चलिये अलि पंकति आईं॥

जैन कवियोंने एक ही स्थानपर उपमेयमें उपमानकी उत्कटताकी सम्भावना कर वस्तूत्प्रेक्षा या स्वरूपोत्प्रेक्षाका सुन्दर प्रयोग किया है। वाच्या और प्रतीयमाना दोनों ही प्रकारकी उत्प्रेक्षाओंके उदाहरण वर्द्धमान चरित्रमें आये हैं। कविने वर्द्धमान स्वामीके रूप सौन्दर्यका निरूपण नाना कल्पनाओं द्वारा अलंकृत रूपमें किया है।

रूपकालंकारकी योजना करते हुए कवि बनारसीदासने कहा है कि

कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलंग बिछाया है। उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या कल्पनाका चादर डाला गया है। इसपर अचेतनाकी नींदमें चेतन सोता है। मोहको मरोड़ नेत्रोंका बन्द करना है, कर्मके उदयका बल ही श्वासका घोर शब्द है और विषय-सुखकी दौर ही स्वप्न है। कविने यहाँ उपमेयमें उपमानका आरोप बड़ी कुशलतासे किया है। कवि कहता है—

कायाकी चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
मायाकी संवारी सेज चादर कलपना।
शैन करे चेतन अचेतन नींद लिए
मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना॥
उदै बल-जोर यहै श्वासको शबद घोर।
विषै सुखकारी जाकी दौर यही सपना।
ऐसी मूढ़ दशामें मगन रहे तिहुँ काल
धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना॥

वस्तुतः कवि बनारसीदासने अप्रस्तुतमें प्रस्तुतका केवल रूपसादृश्य ही नहीं दिखलाया, किन्तु प्रस्तुतके भावको तीव्र बनाया है। निरङ्ग रूपकोंमें सादृश्य, साधर्म्य, तथा प्रभाव इन तीनोंका ध्यान रखा है, पर सांग रूपकमें सादृश्य और साधर्म्यका पूरा निर्वाह किया है। कविने कई स्थलोंपर आत्मा और परमात्माके बीचके व्यवधानको दूरकर आत्माको ही अभेदरूपक परमात्मा बतलाया है।

कवि भैया भगवतीदासके सिवा कवि वृन्दावनने भी अपनी कवितामें रूपकोंकी यथास्थान योजना की है। कवि वृन्दावन कहता है—

आदि पुरान सुनो भवकानन।
मिथ्यातम गयंद गंजनको, यह पुरान साँचो पंचानन।
सुरगमुक्तिको मग दरसावत, भविक जीवको भवभय भानन॥

यहाँपर आदि पुराणको सिंह और मिथ्यातमको गयन्दका रूपक दिया गया है। आदि पुराणके अध्ययन और चिन्तनसे मिथ्यात्व बुद्धिका दूर हो जाना दिखलाया गया है। मिथ्यात्वका निराकरण सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर ही होता है। इसी कारण साम्यक्त्वको सिंह और मिथ्यात्वको मतंग—गज कहा है। आदि पुराणका स्वाध्याय सम्यग्दर्शन उत्पन्न करता है, अतएव सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण होनेसे कविने उसे सिंहका रूपक दिया है।

जैन कवियोंने प्रतिपाद्य विषयको प्रस्तुत करनेके लिए उन्हीं उपमानोंका उपयोग नहीं किया है, जो परम्परागत हैं। काव्यानुभूतिका सर्वांग सुन्दर चित्र वहीं प्रस्फुटित होता है, जहाँ कविकी निजी अनुभूतिका उसके विचारोंसे सामञ्जस्य हो। यह अनुभूति जितनी विस्तृत और गम्भीर होती है, उतना ही प्रतिपाद्य विषय आकर्षक होता है। पुराने उपमानोंको सुनते-सुनते हमें अरुचि उत्पन्न हो गई है, अतएव नवीन उपमान ही हमें अधिक प्रभावित करते हैं तथा चर्वित-चर्वण किये हुए उपमानोंकी अपेक्षा प्रभाव भी स्थायी होता है। कवि बनारसीदासने अनेक नवीन उपमानोंके उदाहरण देकर वर्ण्य विषयको प्रभावशाली बनाया है। कवि बनारसीदासने उदाहरणालंकारका प्रयोग बहुत ही सुन्दर किया है। निम्नपद्य दर्शनीय है—

जैसे तृन काठ बाँस आरनै इत्यादि और,
इंधन अनेक विधि पावकमें दहिये।
आकृति विलोकत कहावै आगि नानारूप,
दीसै एक दाहक सुभाउ जब गहिये॥
तैसे नवतत्वमें भयो है बहु भेखी जीन,
शुद्ध रूप मिश्रित अशुद्ध रूप कहिये।
जाही दिन चेतना शकतिको विचार कीजै,
ताही छिन अलख अभेद रूप लहिये॥

× × ×

यहाँ कविने बतलाया है, कि जैसे तृण, काष्ठ, आदिकी अग्नि भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ही स्वभावकी अपेक्षा एक रूप है, उसी प्रकार यह जीव भी नाना द्रव्योंके सम्पर्कसे नाना रूप होनेपर भी चेतनाशक्तिकी अपेक्षासे अभेद—एक रूप है।

ज्ञानके उदयतें हमारी दशा ऐसी भई
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥

कविने इस पद्यांशमें सूर्यके उदाहरण-द्वारा ज्ञानकी विशेषता दिखलायी है। कवि कहता है कि ज्ञानका उदय होनेसे हमारी ऐसी अवस्था हो गई है, जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रातःकालकी होती है। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोह-अन्धकार दूर हो गया है।

कवि वृन्दावन और भूधरदासने भी उदाहरणालंकार-द्वारा प्रस्तुतका भावोत्कर्ष दिखलाया है। भूधरदासने दृष्टान्तालंकारकी योजना निम्न पद्यमें कितने सुन्दर ढंगसे की है, यह दर्शनीय है—

जनम जलधि जलजान जान जन हंस मानकर।
सरब इन्द्र मिल आन-आन जिस धरहिं शीसपर ॥
पर उपभारी बान, बान उत्थपइ कुनय गन।
गन सरोज बन भान, भान मम मोह तिमिर धन ॥
धन वरन देह दुःख दाह हर, हरखत हेरि मयूर मन।
मनमथ मतंग हरि पास जिन, जिन विसरहु छिन जगत जन ॥

यहाँ भगवान् पार्श्वनाथका ज्ञान उपमेय और सूर्य उपमान है तथा कमलका विकसित होना और अन्धकारका नष्ट होना समान धर्म है। बस, यही बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है।

कवि मनरंगलालने उपमेयकी समताका प्रभाव प्रदर्शित करते हुए असम अलंकारकी कितनी अनूठी योजना की है।

जा सम न दूजी और कन्या देखि रूप लजे रती ॥

इस प्रकार कवि भूधरदासने निम्न पद्यमें हृदयकी भावनाओं और मानसिक विचारोंको कितना साकार करनेका आयास किया है। भावोंके विकासमय आलोककी प्रोज्वल राशि जगमगाती हुई दृष्टिगत होती है।

कृमिरास कुवास सराप दहै, शुचिता सब धीवत जाय सही।
जिह पान किये सुध जात हिये, जननी जन जानत नार यही ॥
मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमें न गही।
धिक है उनको वह जीभ जले, जिन मूढ़नके मत लीन कही।

इस पद्यमें कविने मदिराके समान अन्य हेय पदार्थका अभाव दिखलाकर मदिराकी अशुचिताका दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार आखेटका निषेध करते हुए कवि कहता है कि—"काननमें बसै ऐसो आन न गरीब जीव, प्राननसों प्यारे प्रान पूँजी जिस परै है ॥" अर्थात् हिरणके समान अन्य कोई भी प्राणी दीन नहीं होता है।

एकके बिना दूसरेके शोभित अथवा अशोभित होनेका वर्णन कर विनोक्ति अलंकारकी योजना बड़ी ही चतुराईसे की गयी है। भैया भगवतीदासने—"आतमके काज बिन रजसम राजसुख, सुनो महाराज कर कान किन दाहिने।" में आत्मोद्धारके बिना राज्यसुखको भी धूल समान बताया है। कवि भूधरदासने रागके बिना संसारके भोगोंकी सारहीनताका चित्रण करते हुए विनोक्ति अलंकारकी अनूठी योजना की है

राग उदै भोगभाव लागत सुहावनेसे
बिना राग ऐसे लागे जैसे नाग कारे हैं।
राग हीनसों पाग रहे तनमें सदीव जीव
राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं ॥
रागसों जगत रीति झूठी सब साँच जाने
राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं।

रागी विन रागीके विचारमें बड़ो ही भेद
जैसे भटा पथ्य काहु काहुको वयारे हैं ॥

कवि मनरंगलालने विनोक्ति अलंकारकी योजना द्वारा अपने अन्तरालकी व्यापकता और गहराईको बड़े ही अच्छे ढंगसे व्यक्त किया है।

नेमि विना जो नर पर्याय। पशु समान होती नर राय ॥

× × ×

नाथ तिहारे साथ विन, तनक न मोहि करार।
ताते हमहूँ साथ तुम, चलसीं तजि घरवार ॥

× × ×

हे पुत्र चलो अब घेरे हाल। तुम विन नगरी सब है विहाल ॥

कवि मनरंगलालने एक ही क्रिया शब्दको दो अर्थोंमें प्रयुक्त कर सहोक्ति अलंकारका भी समावेश किया है। कविने प्रत्येक अंगमें कामदेव और सुषमाको साथ-साथ रखा है—

अंग अंगमें छायो अनंग। जहँ देखो तहँ सुखमा संग ॥

भैया भगवतीदासने हंसकी उक्ति देकर निम्न पद्यमें कितने ढंगसे चैतन्यका फन्देसे फाँसना दिखलाया है। आपका अन्योक्ति अलंकारपर विशेष अधिकार है। तोता, मतंग आदिकी उक्तियोंसे आत्माकी परतन्त्रताकी विवेचना की है।

हंस हंस हंस आप मुझ, पूर्व सँवारे फन्द।
तिहिं कुदाव में वंधि रहे, कैसे होहु सुछन्द ॥

× × ×

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आम के, यापै पूरण इच्छ ॥

कवि मनरंगलालने निम्न पद्यमें अतिशयोक्ति अलंकारका समावेश कितने अनूठे ढंगसे किया है—

नासा लोल कपोल मझार। सब शोभाकी राखन हार।
ताहि देखि सुक वनमें जाय। लज्जित ह्वै निवसे अधिकाय॥

कवि बनारसीदासने अपने अर्द्धकथानकमें आत्म-चरितकी अभि-व्यंजना करते हुए आक्षेपालंकारका कितना अच्छा समावेश किया है। कवि कहता है—

शंख रूप शिव देव, महाशंख बनारसी।
दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे॥

भैया भगवतीदास और बनारसीदासने श्लेषालंकारकी भी यथास्थान योजना की है। "अकृत्रिम प्रतिमा निरखत सु "करी न घरी न भरी न धरी" में करीन भरीन और धरीन पदके तीन तीन अर्थ हैं। मोह अपने जालमें फँसाकर जीवोंको किस प्रकार नचाता है, कविने इसका वर्णन विचित्रालंकारमें कितना अनूठा किया है।

नटपुर नाम नगर अति सुन्दर, तामें नृत्य होंहि चहुँ ओर।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित ओर॥
उछरत गिरत फिरत फिरका दै, करत नृत्य नाना विधि घोर।
इहि विधि जगत जीव नाचत, राचत नाहिं तहाँ सुकिशोर॥

कवि बनारसीदासने आत्मलीलाओंका निरूपण विरोधाभास अलंकारमें करते हुए लिखा है—

"एकमें अनेक है अनेक हीमें एक है सो,
एक न अनेक कुछ कह्यो न परतु है।"

इसी प्रकार वृन्दावन और द्यानतरायने भी विरोधाभासकी सुन्दर योजना की है। परिकर, समासोक्ति, उल्लेख, विभावना और यथासंख्य अलंकारोंका प्रयोग जैन काव्योंमें यथेष्ट हुआ है।

हिन्दी जैन काव्योंमें प्रकृति-चित्रण

कविताको अलंकृत करने और रसानुभूतिको बढ़ानेके लिए कवि प्रकृतिका आश्रय ग्रहण करता है। अनादिकालसे प्रकृति मानवको सौन्दर्य

प्रदान करती चली आ रही है। इसके लिए वन, पर्वत, नदी, नाले, उषा, संध्या, रजनी, ऋतु, सदासे अन्वेषणके विषय रहे हैं। हिन्दीके जैन कवियोंको कविता करनेकी प्रेरणा जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताके अनुभवसे ही प्राप्त हुई है। इसीलिए हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, घृणा-प्रेमका जीवनमें अनुभवकर उसके सारको ग्रहण करनेकी ओर कवियोंने संकेत किया है।

भावोंकी सचाई (Sincerity) या सद्यः रसोद्रेककी क्षमता कोई भी कलाकार प्रकृतिके अंचलसे ही ग्रहण करता है। इसी कारण जीवनके कवि होनेपर भी जैन कवियोंकी सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि प्रकृतिकी ओर भी गई है और उन्होंने प्रकृतिके सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। शान्त-रसके उद्दीपन और पुष्टिके लिए जैन कवियोंने प्रकृतिकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर ऐसे रमणीय चित्र खींचे हैं जो विश्वजनीन भावोंकी अभिव्यक्तिमें अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। प्रकृतिकी पाठशाला प्रत्येक सहृदयको निरन्तर शिक्षा देती रहती है। यही कारण है कि मानव और मानवेतर प्रकृतिका निरूपण कुशल कलाकार तल्लीनता और रसमग्नताके साथ करता ही है।

त्यागी जैन कवियोंमें अनेक कवि ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी साधना के लिए वनाश्रम ग्रहण किया है। प्रकृतिके खुले वातावरणमें रहने के कारण संध्या, उषा और रजनीके सौन्दर्यसे इन्होंने अपने भीतरके विराग को पुष्ट ही किया है। इन्हें संध्या नवोढ़ा नायिकाके समान एकाएक वृद्धा, कलूटी रजनीके रूपमें परिवर्तित देखकर आत्मोत्थानकी प्रेरणा प्राप्त हुई और इसी प्रेरणाको अपने काव्यमें अंकित किया है। प्रकृतिके विभिन्न रूपोंमें सुन्दरी नर्त्तकीके दर्शन भी अनेक कवियोंने किये हैं, किन्तु वह नर्तकी दूसरे क्षणमें ही कुरूपा और बीभत्सरूपी प्रतीत होने लगती है। रमणीके केश कलाप, सलज्ज कपोलकी लालिमा और लाजलज्जाके विभिन्न रूपोंमें विरक्तिकी भावनाका दर्शन करना कवियोंकी अपनी विशेषता है।

परन्तु यह विरक्ति नीरस नहीं है, इसमें भी काव्यत्व है। भावनाओं और कल्पनाओंका सन्तुलन है। महलोंकी चकाचौंध, नगरके अशान्त कोलाहल और आपसके रागद्वेषोंसे दूर हटकर कोई भी व्यक्ति निरावरण प्रकृतिमें अपूर्व शान्ति और आनन्द पा सकता है। मन्द-मन्द पवन, विशाल वन-प्रान्त और हरी हरी वसुन्धरा व्यक्तिको जितनी शान्ति दे सकती है, उतनी जन-संकीर्ण भवन नाना कृत्रिम साधन तथा नूपुरोंकी छुनछुन कभी भी नहीं।

कवि अपने काव्यमें प्रकृतिके उन्हीं रम्य दृश्योंको स्थान देते हैं जो मानवकी हृदय-वीनके तारोंको झनझना दे। ग्राम-सौन्दर्य और वन-सौन्दर्यका चित्रण अपरिग्रही कवि या ग्रहीत परिमाण परिग्रही कवि जितना कर सकते हैं, उतना अन्य नहीं। जैन साहित्यमें वन-विभूति और नदी-नालोंपर, जहाँ दिगम्बर साधु ध्यान करते थे, उन प्रदेशोंकी तस्वीरें बड़ी ही सूक्ष्मता और चतुराईके साथ खींची गयी हैं। ऐसा प्रतीत होगा कि गतिशील प्रकृति स्वयं मूर्त्तमान रूप धारण कर आ गई है। विषयासक्त व्यक्ति प्रकृतिके जिस रूपसे अपनी वासनाको उद्बुद्ध करता है विरक्त उसी रूपसे आत्मानुभूतिकी प्रेरणा प्राप्त करता है।

अपभ्रंश भाषाके जैन कवियोंने अपने महाकाव्योंमें आलम्बन और उद्दीपन विभावके रूपमें प्रकृति चित्रण किया है। षट्ऋतु वर्णन, रणभूमि वर्णन, नदी-नाले-वन पर्वतका चित्रण, उषा-सन्ध्या-रजनी-प्रभातका वर्णन, हरीतिमा आदिका चित्रांकन सुन्दर हुआ है। इस प्रकृति-चित्रणपर संस्कृत काव्योंके प्रकृति-चित्रणकी छाप पड़ी है। अपभ्रंश भाषाके जैन कवियोंने नीति-धर्म और आत्मभावनाकी अभिव्यक्तिके लिए प्रकृतिका आलम्बन ग्रहण किया है। बिम्ब और प्रतिबिम्ब भावसे भी प्रकृतिके भव्य चित्रोंको उपस्थित किया है।

पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और राजस्थानी ढुंढारी भाषामें रचित प्रबन्ध काव्योंमें प्रकृतिका चित्रण बहुत कुछ रीतिकालीन प्रकृति-चित्रणसे

मिलता जुलता है। इसका कारण यह है कि जैन कवियोंने पौराणिक कथावस्तुको अपनाया, जिससे वे परम्परा भुक्त वस्तु वर्णनमें ही लगे रहे और प्रकृतिके स्वस्थ चित्र न खींचे जा सके। शान्तरसकी प्रधानता होनेके कारण जैन चरित काव्योंमें शृङ्गारकी विभिन्न स्थितियोंका मार्मिक चित्रण न हुआ, जिससे प्रकृतिको उन्मुक्त रूपमें चित्रित होनेका कम ही अवसर मिला।

परवर्ती जैन साहित्यकारोंमें बनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, दौलतराम, बुधजन, भागचन्द, नयनसुख आदि कवियोंकी रचनाओंमें प्रकृतिके रम्यरूपोंको भावों द्वारा सँवारा गया है। कवि बनारसीदासने कुबुद्धिकी तुलना कुब्जासे और सुबुद्धिकी तुलना राधिकाके साथ की है। यहाँ रूप चित्रणमें प्रकृतिका बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव देखने योग्य है।

कुटिल कुरूप अंग लगीहै पराए संग,
अपनो प्रवान कारे आपुहि विकाई हैं।
गहे गति अंधकी-सी सकती कमंधकी-सी,
बंधको बढ़ाऊ करे धंधहीमें धाई है॥
राँडकीसी रीति लिए माँडकीसी मतवारी,
साँड ज्यों सुछन्द डोले भाँडकीसी जाई है।
घरको न जाने भेद करे परधानी खेत,
याते दुर्बुद्धि दासी कुब्जा कहाई हैं॥

× × ×

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है।
प्राची ज्ञानमानकी अजाची है निदानकी
सुराची नरवाची ठौर साची ठकुराई है॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधारस पंथिनीमें ग्रन्थनिमें गाई है।

संतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी,
यातैं सद्‌बुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

कवि बनारसीदासने प्रकृतिको उपमान और उत्प्रेक्षा अलंकारों-द्वारा चित्रमय रूपमें प्रस्तुत किया है। कविने शारीरिक मांसलताके स्थान पर भावात्मकता, विचित्र कल्पना और स्थूल आरोपवादिताके स्थान पर चित्रमयता और भावप्रवणताका प्रयोग किया है। प्रकृतिके एक चित्रको स्पष्ट करनेके लिए दूसरे दृश्यका आश्रय लिया गया है फिर भी रंग-रूपों, आकार-प्रकार एवं मानवीकरणमें कोई बाधा नहीं आई है। सादृश्य और संयोगके आधारपर सुन्दर और रमणीय भावोंकी अभिव्यंजना सौन्दर्यानुभूतिकी वृद्धिमें परम सहायक है। प्रकृतिके विभिन्न रूपोंके साथ हमारा भावसंयोग सर्वदा रहता है, इसी कारण कवि बनारसीदासने असंलक्ष्य क्रमसे प्रकृतिका सुन्दर विवेचन किया है।

उदाहरणालंकारके रूपमें प्रकृतिका चित्रण बनारसीदासके नाटक 'समयसार'में अनेक स्थलों पर हुआ है। ग्रीष्मकालमें पिपासाकुल मृग बालूके समूहको ही भ्रमवश जल समझकर इधर-उधर भटकता है, अथवा पवनके संचारसे स्थिर समुद्रके जलमें नाना प्रकारकी तरंगें उठने लगती हैं और समुद्रका जल आलोडित हो जाता है। इसी प्रकार यह आत्मा भ्रमवश कर्मोंका कर्त्ता कही जाती है और पुद्‌गलके संसर्गसे इसकी नाना प्रकारकी स्वभाव विरुद्ध क्रियाएँ देखी जाती हैं। कवि कहता है—

जैसे महाधूपकी तपतिमें तिर्सा यो मृग,
भ्रमनसों मिथ्याजल पिवनको धाये है।
जैसे अन्धकार माँहि जेवरी निरखि नर,
भरमसों डरपि सरप मानि आयो है ॥
अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा,
पवन संयोग सो उछरि अकुलायो है।

तैसे जीव जड़ जो अव्यापक सहज रूप,
भरमसौं करमको कर्त्ता कहायो है ॥

वर्षा ऋतुमें नदी, नाले और तालावमें बाढ़ आ जाती है, जलके तेज प्रवाहमें तृण-काठ और अन्य छोटे-छोटे पदार्थ वहने लगते हैं। बादल गरजते और बिजली चमकती है। प्रकृति सर्वत्र हरी-भरी दिखलाई पड़ती है। कवि बनारसीदासने आत्मज्ञानीकी रीतिका वर्षाके उदाहरण द्वारा उपदेशात्मक रूपसे कितना सुन्दर चित्रण किया है—

ऋतु बरसात नदी नाले सर जोर चढ़ें,
बढ़े नाँहि मरजाद सागरके फैल को।
नीरके प्रवाह तृण काठ वृन्द वहे जात,
चित्रावेल आई चढ़नाहि कहूँ गैल की ॥
बनारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संक आवे वीर बुद्धि छैल की।
कुछ न अनीत न क्यों प्रीतिपर गुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यात्म शैल की ॥

जब प्रकृति मानवीय भावोंके समानान्तर भावात्मक-व्यंजन अथवा सहचरणके आधारपर प्रस्तुत की जाती है, उस समय उसे विशुद्ध उद्दीपनके अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता। आलम्बनकी स्थितिमें व्यक्ति अपनी मनःस्थितिका आरोप प्रकृति पर करके भावाभिव्यंजन करता है। सौन्दर्यानुभूति जो काव्यका आधार है प्रकृतिसे सम्बन्धित है। यद्यपि इसमें नाना प्रकारकी सामाजिक भावस्थितियोंका योग रहता है तो भी आलम्बन रूपमें यह सौन्दर्यानुभूति कराती ही है। जो रससिद्ध कवि प्रकृतिके मर्मको जितना अधिक गहराईके साथ अवगत कर लेता है वह उतना ही सुन्दर भावाभिव्यंजन कर सकता है।

भैया भगवतीदासने प्रकृतिके चित्रोंको किसी मनःस्थिति विशेषकी पृष्ठभूमिके रूपमें प्रस्तुत किया है। मानवीयभावनाओंको प्रकृतिके समा-

नान्तर उपस्थित करना और प्रकृतिरूप व्यापारोंको आलम्बनके रूपमें अभिव्यक्त करना आपकी प्रमुख विशेषता है। उपमानके रूपमें प्रकृति चित्रण देखिये—

धूमनके धौरहर, देख कहा गर्व करै,
ये तो छिन माहिं जाहि पौन परसत ही।
सन्ध्याके समान रंग देखते ही होय भंग,
दीपक पतंग जैसे काल गरसत ही॥
सुपनेमें भूप जैसे इन्द्रधनु रूप जैसे,
ओस बूँद धूप जैसे दुरै दरसत ही।
ऐसोई भरम सब कर्मजाल वर्गणाको,
तामें मूढ़ मगन होय मरै तरसत ही॥

इन्होंने प्रकृतिको स्थितियोंके प्रसारमें समवायरूपसे आलम्बन मानकर कतिपय रेखाचित्र उपस्थित किये हैं। वर्षा और ग्रीष्म ऋतुका अपनी अभीष्ट मानसिक स्थितिको स्पष्ट करनेके लिए दृष्टान्तके रूपमें इन ऋतुओं का वर्णन किया है—

ग्रीषममें धूप परै, तामें भूमि भारी जरै,
फूलत है आक पुनि अतिहि उमहि कै।
वर्षाऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै,
जरत जवास अध आपुहि तै डहि कै॥

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियोंमें प्रकृतिका स्वच्छ और चमत्कारिक वर्णन नहीं है फिर भी भावको सबल बनानेमें प्रकृतिको सहायक अंकित किया है। कवि भूधरदासने रूपक बाँधकर जीवनकी मार्मिकताको प्रकृतिके आलम्बन-द्वारा कितने अनूठे ढंगसे व्यक्त किया है—

रात दिवस घट माल सुभाव।
भरि-भरि जल जीवनकी जल॥

सूरज चाँद बैल ये दोय।
काल रैहट नित फैरे सोय॥

कवि अनुभूतिके सरोवरमें उतरकर प्रकृतिमें भावनाओंका आरोपकर रहा है कि कालरूपी अरहट सूरज चाँद रूपी बैलों-द्वारा रातदिन रूपी घड़ोंमें प्राणियोंके आयु रूपी जलको भर-भरकर खाली कर देता है।

भावोत्कर्षके लिए कविने प्रकृतिकी अनेक स्थलोंपर भयंकरता दिखलायी है। ऐसे स्थानोंपर कविकी लेखनी चित्रकारकी तूलिका-सी बन गई है। शब्द पिघल-पिघलकर रेखाएँ बन गये हैं और रेखाएँ शब्द बनकर मुखरित हो उठी हैं; कवि कहता है कि शीत ऋतुमें भयंकर सर्दी पड़ती है यदि इस ऋतुमें वर्षा होने लगे, तेज पूर्वी हवा चलने लगे तो शीतकी भयंकरता और भी बढ़ जाती है। ऐसे समयमें नदीके किनारे खड़े ध्यानस्थ मुनि समस्त शीतकी बाधाओंको सहन करते रहते हैं—

शीतकाल सबही जन काँपे, खड़े जहाँ वन विरछ डहे हैं।
झंझावायु बहे वरसा ऋतु, वरसत बादल झूम रहे हैं॥
तहाँ धीर तटनी तट चौपट, ताल पालमें कर्म दहे हैं।
सहैं सँभाल शीतकी बाधा, ते मुनि तारन तरण कहे हैं॥

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुकी भयंकरता दिखलाता हुआ कवि गर्मीका चित्रण करता है—

भूख प्यास पीडे उर अन्तर प्रजले आँत देह सब दागें।
अग्नि स्वरूप धूप ग्रीपम की ताती बाल झालसी लागे॥
तपे पहार ताप तन उपजे कोपे पित्त दाह ज्वर जागें।
इत्यादिक ग्रीपमकी बाधा सहत साधु धीरज नहीं त्यागे॥

ज्ञान वैभवसे युक्त आत्माको वसन्तका रूपक देकर कवि द्यानतरायने कितना सुन्दर चित्र खींचा है यह देखतेही बनता है। कविकी दृष्टिमें प्रकृतिका कण कण एक सजीव व्यक्तित्व लिये हुए है जिससे प्रत्येक मानव

प्रभावित होता है। जिस प्रकार वसन्त ऋतुमें प्रकृति राशि-राशि अपना सौन्दर्य बिखेर देती है उसी प्रकार ज्ञान वैभवके प्राप्त होते ही आत्माका अपार सौन्दर्य उद्‌बुद्ध हो जाता है और वह शर्मीली छुई-मुईसी दुलहिन सामने खड़ी हो जाती है। साधक इसे प्राप्त कर निहाल हो जाता है। कवि इसी भावनाको दिखलाता हुआ कहता है—

तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसों रमन्त।
दिन बड़े भये राग भाव, मिथ्यातम रजनीको घटाव॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसों रमन्त।
वह फूली फैली सुरुचि वेल, ज्ञाता जन समता संग केलि॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसों रमन्त।
द्यानत वाणी दिक मधुर रूप, सुर नर पशु आनन्द घन स्वरूप॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसों रमन्त।

कवि हेमविजयने प्रकृतिको संश्लिष्ट और सजीव रूप में चित्रित किया है। कथा प्रवाहकी पूर्व पीठिकाके रूपमें प्रकृति भावोद्दीपनमें कितनी सहायक है यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है। पाठक देखेंगे कि इस उदाहरण में कथा प्रसंगको मार्मिक बनानेके लिए अलंकार-विधान और उद्दीपन विभावके रूपमें कितना सुन्दर प्रकृतिका चित्रण किया है—

घनघोर घटा उनयी जुनई, इततै उततै चमकी बिजली।
पियुरे-पियुरे पपीहा बिललाती, जुमोर किंगार किरीत मिली॥
बीच विन्दु परे द्दग आँसु फरे, पुनि धार अपार इसी निकली।
मुनि हेम के साहिब देखन कूँ, उग्रसेन लली सु अकेली चली॥
कहि राजिमती सुमती सखियान कूँ, एक खिनेक खरी रहु रे।
सखिरी सगरी अँगुरी मुही बाहि कराति इसे निहुरे॥
अबही तबही कबही जबही, यदुरावकूँ जाय इसी कहुरे।
मुनि हेमके साहिब नेम जी ही अब तुरन्ते तुम्हक्कूँ बहुरे॥

कवि आनन्दघनको भी प्रकृतिकी अच्छी परख है। आपने मानव भावोंकी अभिव्यक्तिके माध्यमके रूपमें प्रस्तुत प्रतीकोंके लिए प्रकृतिका सुन्दर आयोग किया है। ज्ञानरूपी सूर्योदयके होते ही आत्माकी क्या अवस्था हो जाती है कविने इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। प्रातःकालको रूपक देकर ज्ञानोदयका कितना मर्म-स्पर्शी चित्रण किया है।

मेरे घट ज्ञान भाव भयो भोर।
चेतन चकवा चेतन चकवी, भागौ विरह कौ सोर॥
फैली चहुँदिशि चतुर भाव रुचि, मिट्यौं भरम तमजोर।
आपनी चोरी आपहि जानत, औरे कहत न चोर॥
अमल कमल विकसित भये भूतल, मंद विशद शशि कोर।
आनन्दघन एक वल्लभ लागत, ओर न लाख किरोर॥

रूपक अलंकारके रूपमें कवि भागचन्दने अपने अधिकांश पदोंमें प्रकृतिका चित्रण किया है। कविने उपमा और उत्प्रेक्षाकी पुष्टिके लिए प्रकृतिका आश्रय ग्रहण करना उचित समझा है। कुछ ऐसे दृश्य हैं जिनका मानव जीवनसे घना सम्बन्ध है। कुछ ऐसे भी भाव-चित्र हैं जो हमारे सामुदायिक उपचेतन मनमें जन्मकालसे ही चले आते हैं। जिनवाणी, गुरुवाणी, मन्दिर, चैत्य आदि मानवके मनको ही शान्त नहीं करते किन्तु अन्तरंग तृप्तिका परम साधन बनते हैं। प्रत्येक भावुक हृदयकी श्रद्धा-उक्त वस्तुओंके प्रति स्वभावतः रहती है। कवि वीतराग वाणीको गंगाका रूपक देकर कहता है—

साँची तो गंगा यह वीतरागी वाणी,
अविच्छिन्न धारा निज धर्मकी बहानी।
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी,
जहाँ नहीं संशयादि पंककी निशानी॥
सप्त भंग जहं तरंग उछलत सुखदानी,
सन्तचित्त मराल वृन्द रमैं नित्य ज्ञानी।

जाके अवगाहन तै शुद्ध होय प्रानी,
भागचन्द निहचै घटमाहि या प्रमानी ॥

प्रकृतिके अधिक चित्र इनकी कवितामें पाये जाते हैं। यद्यपि विशुद्ध रूपमें प्रकृतिका चित्रण इनकी कवितामें नहीं हुआ है फिर भी उपमानोंका इतना सुन्दर व्यवहार किया गया है कि जिससे प्रस्तुतकी अभिव्यंजनामें चार चाँद लग गये हैं। वर्षा होनेपर चारों ओर शीतलता छा जाती है। निदाघके आतापसे सन्तप्त मेदिनी शान्त हो जाती है। सूर्य अपना पराजय देखकर ग्लानिके कारण अपना मुँह बादलोंमें छिपा लेता है। आकाशमण्डल घन-तिमिरसे आच्छादित हो जाता है। जहाँ तहाँ बिजली चमकती हुई दिखलाई पड़ती है। नदी नालोंमें बाढ़ आ जाती है। वर्षासे धूल दब जाती है और नवीन धानोंके पौधे लहलहाने लगते हैं। मेदिनी सर्वत्र हरी भरी दिखलाई पड़ती है। कवि इस रूपक द्वारा जिनवाणीकी महत्ताका रहस्योद्घाटन करता है।

बरसत ज्ञान सुनीर हो, श्रीजिन मुख घन सों।
शीतल होत सुबुद्धमेदिनी, मिटत भवातपपीर ॥
स्याद्वाद नय दामिनी दमकहीं होत निनाद गम्भीर।
करुणा नदी बहै चहुँदिशि तैं, भरी सो दोई नीर ॥

× × ×

मेघ घटा सम श्री जिनवानी।
स्यात्पद चपला चमकत जामैं, बरसत ज्ञान सुपानी ॥
धर्मसस्य जातें बहु बाढै, शिव आनन्द फलदानी।
मोहन धूल दबी सब यातै, क्रोधानल सुबुझानी ॥

आधुनिक जैन काव्योंमें कविताकी पृष्ठभूमिके रूपमें तथा सत्योन्मीलनके रूपमें भी प्रकृतिका चित्रण किया गया है। निराश होनेके पश्चात् सहानुभूतिके रूपमें कोई भी कवि प्रकृतिको पाता है। जैन काव्योंमें

प्रकृतिका यह रूप भी पाया जाता है। जीवनकी समस्याओंका समाधान प्रकृतिके अंचलसे जैन कवियोंने ढूँढ़ा है। अतः उपयोगितावादी और उपदेशात्मक दोनों ही दृष्टिकोण आधुनिक जैन प्रबन्ध काव्योंमें अपनाये गये हैं। 'वर्द्धमान', 'प्रतिफलन' और 'राजुल' में भी प्रकृतिके संवेदनशील रूपोंकी सुन्दर अभिव्यंजना की गई है।

प्रतीक-योजना

कोई भी भावुक कवि तीव्र रसानुभूतिके लिए प्रतीक-योजना करता है। प्रतीक पद्धति भाषाको भाव-प्रवण बनाती ही है, किन्तु भावोंकी यथार्थ अभिव्यञ्जना भी करती है। वर्ण्य विषयके गुण या भाव साम्य-रखनेवाले बाह्य चिह्नोंको प्रतीक कहते हैं। मानव-हृदयकी प्रस्तुत भावनाओंकी अभिव्यक्तिके लिए साम्यके आधारपर अप्रस्तुत प्राकृतिक प्रतीकोंका उपयोग किया जाता है। ये प्रतीक प्रकृतिके क्षेत्रसे चुने हुए होनेके कारण इन्द्रियगम्य होते हैं और अमूर्त भावनाओंकी प्रतीति करानेमें बहुत दूर तक सहायक होते हैं। वास्तविकता यह है कि जब तक हृदयके अमूर्तभाव अपने अमूर्तरूपमें रहते हैं, वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रियोंके द्वारा उनका सजीव साक्षात्कार नहीं हो सकता है। रससिद्ध कवि प्रतीकोंके साँचेमें उन भावनाओंको ढालकर मूर्त रूप दे देता है, जिससे इन्द्रियों द्वारा उनका सजीव प्रत्यक्षीकरण होने लगता है। जो अमूर्त भावनाएँ हृदयको स्पर्श नहीं करती थीं, वे ही हृदयपर सर्वाधिक गम्भीर प्रभाव छोड़ने में समर्थ होती हैं।

प्रतीक-योजनाके प्रमुख साधक उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति तथा सारोपा और साध्यावसाना लक्षणा हैं। सारोपा लक्षणामें उपमान और उपमेय एक समान अधिकरणवाली भूमिकामें उपस्थित रहते हैं तथा साध्यावसानामें उपमेयका उपमानमें अन्तर्भाव हो जाता है। सादृश्यमूलक सारोपाकी भूमिकापर रूपकालंकार द्वारा प्रतीक विधान और सादृश्य-

मूलक साध्यावसानाकी भूमिकापर अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा प्रतीक-विधान किया जाता है। यह प्रतीक विधान कहीं भावोंकी गम्भीरता प्रकट करता है तो कहीं स्वरूपकी स्पष्टता। स्वरूप और भाव दोनोंकी विभूति बढ़ानेवाली प्रतीक-योजना ही अमूर्तको मूर्तरूप देकर सूक्ष्म भावनाओंका साक्षात्कार करा सकती है।

प्रतीक विधानमें प्रतीककी स्वाभाविक बोधगम्यताका खयाल अवश्य रखना पड़ता है। ऐसा न होनेसे वह हमारे हृदयके सूक्ष्म रागों एवं भावोंको उद्दीप्त नहीं कर सकता है। जिस वस्तु, व्यापार या गुणके साहश्यमें जो वस्तु, व्यापार या गुण लाया जाता है उसे उस भावके अनुकूल होना चाहिये। अतः प्रस्तुतकी भावाभिव्यंजनाके लिए अप्रस्तुतका प्रयोग रसोद्बोधक या भावोत्तेजक होनेसे ही सच्चा प्रतीक बन सकता है।

भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंके अनुसार साहित्यमें रसोत्कर्षके लिए कवि भिन्न-भिन्न प्रतीकोंका प्रयोग करते हैं। सभ्यता, शिष्टाचार, आचार-व्यवहार, आत्मदर्शन प्रभृतिके अनुसार ही कलामें प्रतीकोंकी उद्भावना की जाती है। हिन्दी जैन काव्योंमें उपमानके रूपमें प्रतीकोंका अधिक प्रयोग किया गया है। यद्यपि प्रतीक-विधानके लिए साहश्यके आधारकी आवश्यकता नहीं होती, केवल उसमें भावोद्बोधन या भावप्रवणताकी शक्ति रहनी चाहिये, तो भी प्रभाव साम्यको लेकर ही प्रतीकोंकी योजना की जाती है। कोरे साहश्य-मूलक उपमान भावोत्तेजन नहीं करा सकते हैं। आकार-प्रकार या नाप-जोखकी सदृशता सामने एक मूर्त्ति ही खड़ी कर सकती है, पर भावोत्तेजन नहीं। अतएव कवि मार्मिक अन्तर्दृष्टि द्वारा ऐसे प्रतीकोंका विधान करता है, जो प्रस्तुतकी भावाभिव्यञ्जना पूर्णरूपसे कर सकें।

मनीषियोंने भावोत्पादक (Emotional Symbols) और विचारोत्पादक (Intelectual Symbols) ये दो भेद प्रतीकोंके किये हैं। जैनकाव्योंमें इन दोनों भेदोंमेंसे किसी भी भेदके शुद्ध उदाहरण

नहीं मिल सकेंगे। भावोत्पादक प्रतीकोंमें विचारोंका मिश्रण और विचारोत्पादक प्रतीकोंमें भावोंकी स्थिति बनी ही रहती है। विचार और भाव इतने भिन्न भी नहीं हैं, जिससे इन्हें सीमारेखा अंकित कर विभक्त किया जा सके। सुविधाके लिए जैन साहित्यमें प्रयुक्त प्रतीकोंको चार भागोंमें विभक्त किया जाता है—विकार और दुःख विवेचक प्रतीक, आत्मबोधक प्रतीक, शरीरबोधक प्रतीक और गुण और सर्वसुखबोधक प्रतीक। यद्यपि तत्त्वनिरूपण करते समय कुछ ऐसे प्रतीकोंका भी जैन कवियोंने आयोजन किया है, जिनका अन्तर्भाव उक्त चार वर्गोंमें नहीं किया जा सकता है, तो भी भावोत्तेजनमें सहायक उक्त चारों वर्गके प्रतीक ही हैं।

विकार और दुःख विवेचक प्रतीकोंमें प्रधान भुजंग, विष, मतंग, तम, कम्बल, सन्ध्या, रजनी, मधुछत्ता, ऊँट, सीप, वैर, पंचन, तुष, लहर, शूल, कुब्जा आदि हैं।

भुजंग[1] प्रतीकका प्रयोग तीन विकारोंको प्रकट करनेके लिए किया है। राग-द्वेष भाव कर्मको जिनसे यह आत्मा निरन्तर अपने स्वरूपको विकृत करती रहती है; मिथ्यात्व भावको, जिससे आत्मा अपने स्वरूपको विस्मृत हो, पर भावोंको अपना समझने लगती है और तीव्र विषयाभिलाषाको, जिससे नवीन कर्मोंका अर्जन होता रहता है। ये तीनों ही विकार भाव आत्माकी परतन्त्रताके कारण हैं, सर्पके समान भयंकर और दुखदायी हैं। अतएव सर्प प्रतीक द्वारा इन विकारोंकी भयंकरता अभिव्यक्त की गयी है। इस प्रतीकका प्रयोग संस्कृत और प्राकृत जैन साहित्यमें भी पाया जाता है, किन्तु हिन्दी भाषाके जैन कवियोंने राग-द्वेषकी सूक्ष्म भावनाकी अभिव्यक्ति इस प्रतीक द्वारा की है।

विष[2] प्रतीक विषयाभिलाषाकी भयंकरताका द्योतन करानेके लिए आया है। पंचेन्द्रिय विषयोंकी आधीनता विवेक बुद्धिको समाप्त कर देती

---

१. ब्रह्मविलास पृ० २६८। २. नाटक समयसार पृ० १७, २४, ४८।

है। विष मृत्युका कारण माना जाता है, पर विषयाभिलाषा मृत्युसे भी बढ़कर है। यह एक जन्मकी ही नहीं किन्तु जन्म-जन्मान्तरोंकी मृत्युका कारण है। विषयाधीन व्यक्ति ही अपने आचार-विचारसे च्युत होकर आत्मिक गुणोंका ह्रास करता है। जिस प्रकार विषका प्रभाव मूर्छा माना है, उसी प्रकार विषयाभिलाषासे भी मूर्छा आती है। विषयाभिलाषाकी मूर्छा स्थायी प्रभाव रखनेवाली होती है, अतः यह आत्मिक गुणोंको विशेष रूपसे आच्छादित करती है। कवि बनारसीदास और भैया भगवतीदासने विष प्रतीकका प्रयोग विषयेच्छाके कुप्रभावको अभिव्यक्त करनेके लिए किया है। अपभ्रंश भाषाकी कविताओंमें भी यह प्रतीक आया है।

मतंग[१] प्रतीक अज्ञान और अविवेकके भावको व्यक्त करनेके लिए आया है। अज्ञानी व्यक्तिकी क्रियाएँ मदोन्मत्त हाथीके तुल्य ही होती हैं। जो विषयान्ध हो चुका है, वह व्यक्ति विवेकको खो देता है। कवि दौलतरामने मतंग प्रतीकका प्रयोग तीव्र विषयाभिलाषाकी अभिव्यंजनाके लिए किया है। पंचेन्द्रियके मोहक विषय किसी भी प्राणीके विवेकको आच्छादित करनेमें सक्षम हैं। जो इन विषयोंके अधीन रहता है, वह ज्ञानशक्तिके मूर्छित हो जानेसे अज्ञवत् चेष्टाएँ करता है। उसके क्रिया कलाप बहिर्विषयक ही होते हैं।

तम[२] अज्ञान और मोहका प्रतीक है। जिस प्रकार अन्धकार सघन होता है, दृष्टिको सदोष बनाता है, उसी प्रकार अज्ञान और मोह भी आत्मदृष्टिको सदोष बनाते हैं। आत्माके अस्तित्वमें दृढ़ विश्वास न कर अतत्त्वरूप श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। इसके प्रभावसे जीवको स्वपरका विवेक नहीं रहता है। इसके दोषोंकी अभिव्यञ्जना कवि द्यानतरायने

---

१. बनारसी-विलास पृ० १४०–१५२। २. ब्रह्मविलास, द्यानत-विलास, वृन्दावन-विलास आदि।

तम प्रतीक द्वारा की है। तम प्रतीकका प्रयोग आत्माके मोह, मिथ्यात्व और अज्ञान इन तीनोंके भावोंकी अभिव्यंजनाके लिए किया गया है।

कम्बल[1] प्रतीकका प्रयोग आशा-निराशाकी द्वन्दात्मक अवस्थाके विश्लेषणके लिए किया गया है। यह स्थिति विलक्षण है, इस अवस्थामें मानसिक स्थिति एक भिन्न रूपकी हो जाती है।

सन्ध्याका[2] प्रयोग आन्तरिक वेदना, जो राग-द्वेषके कारण उत्पन्न होती है, की अभिव्यक्तिके लिए किया है। रजनीका प्रयोग निराशा और संयम च्युतिकी अभिव्यक्तिके लिए किया गया है। रजनीमें एकाधिक भावोंका मिश्रण है। मोहके कारण व्यक्तिके मनमें अहर्निश अन्धकार विद्यमान रहता है, कवि भूधरदासने इसी भावकी अभिव्यञ्जना रजनी-द्वारा की है।

मधुछत्ता[3] विषयाभिलाषाका प्रतीक है। कंचन और कामिनी ऐसे दो पदार्थ हैं, जिनके प्रलोभनसे कोई भी रागी व्यक्ति अपनेको अछूता नहीं रख सकता है। तृष्णा और विषयाभिलाषाके उत्तरोत्तर बढ़नेसे व्यक्ति असंयमित हो जाता है, जिससे उसे नाना प्रकारके दुःख उठाने पड़ते हैं। इन मनोरम विषयोंको प्राप्त करनेकी वाञ्छासे ही जीवनको कुत्सित और नारकीय बनाया जा रहा है।

ऊँट[4] अहंकारका प्रतीक है। अहंकारके आधीन रहनेसे नम्रता गुण नष्ट हो जाता है, ऐसा कोरा व्यक्ति आत्मविज्ञापन करता है। ऊँट अपनी टेढ़ी गर्दन द्वारा नीचेकी अपेक्षा ऊपरको ही देखता है, इसी प्रकार घमंडी व्यक्ति दूसरोंके छिद्रोंका ही अन्वेषण करता है। उसकी आत्माका मार्दव गुण तिरोहित हो जाता है। उसके आत्मिक गुण भी ऊँटकी गर्दनके समान वक्र ही रहते हैं।

---

१. नाटक समयसार पृ० २९। २.-३. द्यानत-विलास। ४. दोहा पाहुड दो० १५८।

सीप[१] कामिनीके मोहक रूपके प्रति आसक्तिका प्रतीक है। सीप जैसे जलसे उत्पन्न होती है, और जलमें ही संवर्द्धनको प्राप्त होती है। इसी प्रकार आसक्ति वासना जन्य अनुरक्तिसे उत्पन्न होती है और उसीमें वृद्धिगत भी। सीपकी रूपाकृति एक विलक्षण प्रकारकी होती है, उसी प्रकार आसक्ति भी चित्र-विचित्रमय होती है।

खैर[२] द्रव्यकर्मोंका प्रतीक है। द्रव्यकर्मोंका सम्बन्ध कैसे होता है? इनके संयोगसे आत्मा किस प्रकार रक्त-विकृत हो जाती है और कर्मोंके कितने भेद किस प्रकारसे विपच्यमान होते हैं; आदि अनेक अन्तस्की भावनाओंकी अभिव्यञ्जना इस प्रतीकके द्वारा की गयी है।

पंचन[३] विषयका प्रतीक है। पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा विषय सेवन किया जाता है तथा इसी विषयासक्तिके कारण आत्मा अपने स्वभावसे च्युत है। विभाव परिणतिकी अभिव्यञ्जना भी इस प्रतीक द्वारा कवि मनरंगलाल और लालचन्दने की है।

तुप[४] शक्तिका प्रतीक है। यह वह शक्ति है जो आत्मकल्याणसे जीवनको पृथक् करती है, और विषयोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है।

लहर तृष्णा या इच्छाका प्रतीक है; कवि बनारसीदासने नदीके प्रवाहके प्रतीक-द्वारा आत्म-संयोग सहित कर्मकी विभिन्न दशाओंका अच्छा विश्लेषण किया है—

> जैसे महीमण्डलमें नदीको प्रवाह एक,
> ताहीमें अनेक भाँति नीरकी ढरनि है।
> पाथरके जोर तहाँ धारकी मरोर होत,
> काँकरकी खानि तहाँ झागकी झरनि हैं॥
> पौनकी झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै,
> भूमिकी निचानि तहाँ भौंरकी परनि है।

१. दोहा पाहुड दो० १५१। २. दोहा पाहुड दो० १५०। ३. दोहा पाहुड दो० ४५। ४. दोहा पाहुड दो० १५।

तैसो एक आत्मा अनन्त रस पुद्गल,
दोहूके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥

यद्यपि यहाँ उदाहरणालंकार है, परन्तु कविने नदी-प्रवाहके प्रतीक-द्वारा भावोंका उत्कर्ष दिखलानेमें सफलता प्राप्त की है। कवि बनारसी-दासने अपनी प्रतीकोंको स्वयं स्पष्ट करते हुए लिखा है—

कर्म समुद्र विभाव जल, विषय कषाय तरंग।
वड़वानल तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सर्वंग ॥
भरम भवर तामें फिरै, मन जहाज चहुँ ओर।
गिरै, फिरै बूढै तिरै, उदय पवनके जोर ॥

विषयी जीव भ्रमवश संसारके सुखोंको उपादेय समझता है। कवि भगवतीदासने प्रतीकों-द्वारा इस भावका कितना सुन्दर विश्लेषण किया है—

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आमके, यापै पूरण इच्छ ॥
यापै पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो।
रहे विषय लपटाय, मुग्धमति भरम भुलान्यो ॥
फलमाँहि निकसे तूल, स्वाद पुन कछू न हूआ।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा ॥

इस पद्यमें सूवा आत्माका प्रतीक, सेमर संसारके कमनीय विषयोंका प्रतीक, आम आत्मिक सुखका प्रतीक और तूल सांसारिक विषयोंकी सारहीनताका प्रतीक है। कविने आत्माको संसारकी रीति-नीतिसे पूर्णतया सावधान कर दिया है।

आत्मबोधक प्रतीकोंमें सुवा, हंस, शिवनायक प्रतीक प्रधान हैं। इन प्रतीकों-द्वारा आत्माके विभिन्न स्वरूपोंकी अभिव्यंजना की गयी है। सूवा उस आत्माका प्रतीक है, जो विकारों और प्रलोभनोंकी ओर आकृष्ट होती है। विश्वके रमणीय पदार्थ उसके आकर्षणका केन्द्र बनते हैं, पर

वह उन आकर्षणोंको किसी भी समय टुकरा कर स्वतन्त्र हो जाती है, और साधना कर निर्वाणको पाती है। कवि बनारसीदास, भगवतीदास, रूपचन्द, बुधजन, भागचन्द, दौलतराम आदि कवियोंने आत्माकी इसी अवस्थाकी अभिव्यंजना सूवा-प्रतीक द्वारा की है। कवि द्यानतरायने हंस प्रतीक-द्वारा आत्माको समता गुण ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। इस प्रतीकसे आत्माकी उस अवस्थाकी अभिव्यंजना की है, जो अवस्था अणुवेगके धारण करनेसे उत्पन्न होती है। कवि कहता है—

सुनहु हंस यह सीख, सीख मानो सदगुर की।
गुरुकी आन न लोपि, लोपि मिथ्यामति उरकी॥
उरकी समता गहौ, गहौ आतम अनुभौ सुख।
सुख सरूप थिर रहै, रहै जगमें उदास रुख॥

शिवनायक प्रतीक-द्वारा उस शक्तिशाली आत्माका विश्लेषण किया है, जो मिथ्यात्व, राग, द्वेप, मोहके कारण परतन्त्र है। परन्तु अपनी वास्तविकताका परिज्ञान होते ही वह प्रकाशमान हो जाती है। आत्मा अद्भुत शक्तिशाली है, यह स्वभावतः राग, द्वेप, मोहसे रहित है; शुद्ध-बुद्ध और निरंजन है। कवि इसको सम्बोधन कर सुबुद्धि-द्वारा कहलाता है—

इक बात कहूँ शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहाँ भटके।
यह कौन विचक्षण रीति गही, बिनु देखहि अक्षन सौं अटके॥
अजहूँ गुण मानो तो सीख कहूँ, तुम खोलत क्यों न पटै घटके।
चिन सूरति आप विराजत हो, तिन सूरत देखे सुधा गटके॥

शरीरबोधक प्रतीकोंमें चर्खा, पिंजरा, भूसा, काँच और मंजूषा आदि प्रमुख हैं। ये सभी प्रतीक शरीरकी विभिन्न दशाओंकी अभिव्यंजनाके लिए आये हैं। कवि भूधरदासने चर्खेके प्रतीक-द्वारा शरीरकी वास्तविक स्थितिका निरूपण करते हुए कहा है—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदिरा खखराना॥
छीदी हुई पाँखड़ी पसली, फिरै नहीं मनमाना।
चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना॥
रसना तकलीने बल खाया, सो अब कैसे खूटै।
सबद सूत सूधा नहीं निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ई हारे॥
नया चरखला रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखें नहिं भावै॥
मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अंत आगमें ईंधन होगा, भूधर समझ सबेरा॥

गुण या सुख बोधक प्रतीकोंमें मधु,फूल, पुष्प, किसलय, मोती, ऊषा, अमृत, प्रभात, दीप और प्रकाश प्रमुख हैं। इन प्रतीकों द्वारा सुख और आत्मिक गुणोंकी अनेक तरहसे सुन्दर अभिव्यञ्जना की गयी है।

मधु ऐन्द्रियक सुखकी भावनाको अभिव्यक्त करता है। ऐन्द्रियक सुख क्षणविध्वंसी है। जब जीवन उपवनमें बसन्त आता है, उस समय जीवनका प्रत्येक कण सौन्दर्यसे स्नात हो जाता है। उसकी जीवन डाली-पर कोकिल कुहू कुहू करने लगती है। मलयानिलके स्पर्शसे शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है, हृदयमें नवीन अभिलाषाएँ जाग्रत होती हैं। ऐन्द्रियक सुख इस प्राणीको आरम्भमें आनन्दप्रद मालूम पड़ते हैं, परन्तु पीछे दुख मिश्रित दिखलायी पड़ने लगते हैं। मधु प्रतीक-द्वारा कवि बुधजनने सांसारिक विषयेच्छाका सुन्दर विश्लेषण किया है। इस सुखेच्छाकी भावा-नुभूतिके लिए ही कविने मधु प्रतीकका आयोजन किया है।

फूल हर्ष और आनन्दका प्रतीक है। वासन्ती समीर मनमें राशि-राशि अभिलाषाओंको जाग्रत करता है। हृदयमें स्फूर्तियाँ, आँखोंमें मधुर

स्वप्न और अन्तरालमें उन्मत्त आकांक्षा युक्त मानव जीवनका मूर्तिमान रूप पुष्प और फल प्रतीक-द्वारा अभिव्यंजित किया गया है।

किसलय प्रतीक सांसारिक प्रेम, रागमय अनुरक्ति एवं मधुर प्रलोभनोंकी अभिव्यक्तिके लिए प्रयुक्त हुआ है। वसन्त ऋतुके आगमनके समय नवीन कोपलें निकल आती हैं, मस्त प्रभात रक्त किसलयोंको लेकर मदिर भावोंका कूजन करता है। फलतः वासनात्मक प्रेम उत्पन्न होता है। यह अनुरक्ति संसारके विषयोंके प्रति सहज होती है।

अमृत आत्मानन्दकी अभिव्यञ्जनाके लिए व्यवहृत हुआ है। अज्ञान, मिथ्यात्व और राग-द्वेष-मोहके निकल जानेपर ज्ञानकलिका अपनी पंखुड़ियोंमें विकार और वासनाको बन्द कर लेती है कोयल अपनी नीरवतामें उसके अनन्त सौन्दर्यके दर्शन करती है; रजनीके तारे रात भर उस आत्मानन्दकी बाट जोहते रहते हैं। यह आत्मानन्द भी कषायोदयकी मन्दता, क्षीणता और तीव्रोदयके कारण अनेक रूपोंमें व्यक्त होता है। अमृत, प्रदीप और प्रकाश-द्वारा आत्मज्ञान और आत्मानन्दकी अभिव्यञ्जना की गई है।

मोती, प्रभात और ऊषा प्रतीकों-द्वारा जीवन और जगत्के शाश्वत सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना कवियोंने की है। भैया भगवतीदासने आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी ओर संकेत करते हुए कहा है—

लाई हौं लालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूँ तिहुँ लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक बनी है॥
याही तें तोहि कहूँ नित चेतन, याहुकी प्रीति जो तोसों सनी है।
तेरी औराधेकी रीझ अनन्त, सो मोपै कहूँ यह जात गनी है॥

प्राचीन जैन कवियोंने जीवनके मार्मिक पक्षोंके उद्‌घाटनके लिए अलंकार रूपमें ही प्रतीकोंकी योजना की है। नवीन कविताओंमें वैचित्र्य-प्रदर्शनके लिए भी प्रतीकोंका आयोजन किया गया है। अतएव संक्षेपमें

यहाँ कहा जा सकता है कि सूक्ष्म भावोंकी अनुभूति प्रतीक-योजना द्वारा गहराईके साथ अभिव्यक्त हुई है।

रहस्यवाद

ब्रह्मकी---आत्माकी व्यापक सत्ता न माननेपर भी हिन्दी जैन साहित्यमें उच्चकोटिका रहस्यवाद विद्यमान है। हिन्दी जैन काव्य कृष्टाओंने स्वयं शुद्धात्म तत्त्वकी उपलब्धिके लिए रहस्यवादको स्थान दिया है। आत्मा रहस्यमय, सूक्ष्म, अमूर्त, ज्ञान, दर्शन आदि गुणोंका भाण्डार है, इसकी उपलब्धि भेदानुभूतिसे होती है। शुद्धात्मामें अनन्त सौन्दर्य और तेज है। इसकी प्राप्तिके लिए,—स्वयं अपनेको शुद्ध करनेके लिए, उस लोकमें साधक विचरण करता है, जहाँ भौतिक सम्बन्ध नहीं। ऐन्द्रियक विषयोंकी आकांक्षा नहीं, संसार और शरीरसे पूर्ण विरक्ति है। यह प्रथम अवस्था है, यहाँ पर स्वानुभवकी ओर जीव अग्रसर होता है। दोहा पाहुडमें इस अवस्थाका निम्न प्रकार चित्रण किया है—

जो जिहिं लक्खहिं परिभमइ अप्पा दुक्खु सहंतु।
पुत्ताकलत्तइं मोहियउ जाम ण बोहि लहंतु॥

आत्मा और परमात्माकी एकताका जितना सुन्दर चित्रण हिन्दीके जैन कवि कर सके हैं, उतना सम्भवतः अन्य कवि नहीं। जैन सिद्धान्तमें शुद्ध होनेपर यही आत्मा परमात्मा बन जाती है। कवि बनारसीदास इसी कारण आध्यात्मिक विवेचन करते हुए कहते हैं कि रे प्राणी! तू अपने धनीको कहाँ ढूढ़ता है, वह तो तुम्हारे पास ही है—

ज्यों मृग नाभि सुवाससों, ढूढ़त बन दौरे।
त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत औरे॥
करता भरता भोगता, घट सो घट माहीं।
ज्ञान बिना सद्गुरु बिना, तू सूझत नाहीं॥

कवि भगवतीदास आत्मतत्त्वकी महत्ता बतलाता हुआ कहता है कि आँखें जो कुछ भी रूप देखती हैं, कान जो कुछ भी सुनते हैं, जीभ जो कुछ भी रसको चखती हैं, नाक जो कुछ भी गन्ध सूँघती है और शरीर जो कुछ भी आठ तरहके स्पर्शका अनुभव करता है, यह सब तेरी ही करामात है। हे आत्मा! तू इस शरीर मन्दिरमें देवरूपमें बैठी है। मन! तू इस आत्मदेवकी सेवा क्यों नहीं करता, कहाँ दौड़ता है—

याही देह देवलमें केवलि स्वरूप देव,
ताकर सेव मन कहाँ दौड़े जात है।

कवि भगवतीदास अपने घटमें ही परमात्माको ढूढ़नेके लिए कहता है कि हे भाई! तुम इधर-उधर कहाँ घूमते हो, शुद्ध दृष्टिसे देखनेपर परमात्मा तुमको इस घटके भीतर ही दिखलायी पड़ेगा। यह अमृतमय ज्ञानका भाण्डार है। संसार पार होकर नौकाके समान दूसरोंको भी पार करनेवाला है। तीनलोकमें उसकी बादशाहत है। शुद्ध स्वभावमय है, उसको समझदार ही समझ सकते हैं। वही देव, गुरु, मोक्षका वासी और त्रिभुवनका मुकुट है। हे चेतन सावधान हो जाओ, अपनेको परखो।

देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै वसइया।
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा, चेतो चितवइया॥

कवि बनारसीदासने भी बतलाया है कि जो लोग परमात्माको ढूँढ़नेके नानाप्रकारके प्रयत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं तथा उनके सभी प्रयत्न अयथार्थ हैं। उदासीन होकर जंगलोंकी खाक छाननेसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। मूर्ति बनाकर प्रणाम करनेसे और छीकोंपर चढ़कर पहाड़की चोटियोंपर चढ़नेसे भी उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। परमात्मा न ऊपर आकाशमें है और न नीचे पातालमें। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणोंकी धारी यह आत्मा ही परमात्मा है और यह प्रत्येक व्यक्तिके भीतर विद्यमान है। कवि कहता है—

केई उदास रहे प्रभु कारन, केई कहीं उठि जाहिं कहीं के।
केई प्रणाम करे घट सूरति, केई पहार चढ़े चढ़ि छींके॥
केई कहें आसमान के ऊपरि, केई कहें प्रभु हेठ जमींके।
मेरो धनी नहिं दूर दिशांतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके॥

हिन्दी जैन साहित्यमें रहस्यवादकी दूसरी वह स्थिति है जहाँ मन ऐन्द्रियक विषयोंसे मुक्त हो मुक्तिकी ओर तेजीसे दौड़ना आरम्भ करता है। इस स्थितिका वर्णन बनारसीदासके काव्यमें भावात्मक रूपसे किया गया है। हठयोग सम्बन्धी साधनात्मक रहस्यवाद हिन्दी जैन साहित्यमें नहीं पाया जाता है। केवल भावात्मक रहस्यवादका वर्णन ही किया है। साधनाके क्षेत्रमें विकार और कषायोंको दूर करनेके लिए संयम, इन्द्रिय-निग्रह और भेदविज्ञान या स्वानुभूतिको स्थान दिया गया है। परन्तु इनकी यह साधना भी भावात्मक ही है। इस अवस्थाका महाकवि बनारसीदासने निम्न चित्रण किया है।

सूलनबेटा जायोरे साधो, मूलन०।
जाने खोज कुटुम्ब सब खायो रे साधो, मूलन०॥
जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोइ भाई।
काम क्रोध दोइ काका खाए, खाई तृपना दाई॥
पापी पाप परोसी खायो, अशुभ कर्म दोइ मामा।
मान नगरको राजा खायो, फैल परो सब गामा॥
दुरमति दादी विकथा दादो, मुख देखत ही मूओ।
मंगलाचार बधाए बाजे, जब यो बालक हूओ॥
नाम धर्यो बालकको सूधो, रूप बरन कछु नाहीं।
नाम धरन्ते पाण्डे खाए, कहत बनारसि भाई॥

रहस्यवादकी इस दूसरी स्थितिमें गुरुका उपदेश श्रवण करना तथा उस उपदेशके अनुसार भ्रमरूपी कीचड़का प्रक्षालन कर अपने आत्माको

उज्वल करना होता है। कवि बनारसीदास कहता है कि हे भाई ! तूने वनवासी बनकर मकान और कुटुम्ब छोड़ भी दिया, परन्तु स्व-परका भेद ज्ञान न होनेसे तेरी ये क्रियाएँ अयथार्थ हैं। जिस प्रकार रक्तसे रंजित वस्त्र रक्त द्वारा प्रक्षालन करनेपर स्वच्छ नहीं हो सकता है, उसी प्रकार ममत्व भावसे संसार नहीं छूट सकता है। तू अपने धनीको समझ, उससे प्रेम कर और उसीके साथ रमण कर।

> ह्वै वनवासी तैं तजा, घर वार मुहल्ला।
>
> अप्पा पर न विछाणियाँ, सब झूठी गल्ला॥
>
> ज्यों रुधिरादि पुट सों, पट दीसे लल्ला।
>
> रुधिराजलहिं पखलिए, नहीं होय उजला॥
>
> किण तू जकरा साँकला, किण पकड़ा मल्ला।
>
> भिद मकरा ज्यों उरझिया, उर आप उगल्ला॥

तीसरी रहस्यवादकी वह स्थिति है, जिसमें भेदविज्ञान उत्पन्न होने-पर आत्मा अपने प्रियतम रूपी शुद्ध दशाके साथ विचरण करने लगती है। हर्षके झूलेमें चेतन झूलने लगता है, धर्म और कर्मके संयोगसे स्वभाव और विभाव रूप-रस पैदा होता है।

मनके अनुपम महलमें सुरुचि रूपी सुन्दर भूमि है, उसमें ज्ञान और दर्शनके अचल खम्भे और चरित्रकी मजबूत रस्सी लगी है। यहाँ गुण और पर्यायकी सुगन्धित वायु बहती है और निर्मल विवेक रूपी भौंरे गुंजार करते हैं। व्यवहार और निश्चल नयकी डण्डी लगी है, सुमतिकी पटली बिछी है तथा उसमें छः द्रव्यकी छः कीलें लगी हैं। कर्मोंका उदय और पुरुषार्थ दोनों मिलकर झोंटा—धक्का देते हैं, जिससे शुभ और अशुभ की किलोलें उठती हैं। संवेग और संवर दोनों सेवक सेवा करते हैं और व्रत ताम्बूलके बीड़े देते हैं। इस प्रकारकी अवस्थामें आनन्द रूप चेतन अपने आत्म-सुखकी समाधिमें निश्चल विराजमान है। धारणा, समता,

क्षमा और करुणा ये चारों सखियाँ चारों ओर खड़ी हैं; सकाम और अकाम निर्जरा रूपी दासियाँ सेवा कर रही हैं।

यहाँ पर सातों नयरूपी सौभाग्यवती सुन्दर रमणियोंकी मधुर नूपुर ध्वनि झंकृत हो रही है। गुरुवचनका सुन्दर राग आलापा जा रहा है तथा सिद्धान्तरूपी ध्रुपद और अर्थरूपी तालका संचार हो रहा है। सत्य-श्रद्धानरूपी बादलोंकी घटाएँ गर्जन-तर्जन करती हुई बरस रही हैं। आत्मा-नुभव रूपी बिजली जोरसे चमकती है और शीलरूपी शीतल वायु बह रही है। तपस्याके जोरसे कर्मोंका जाल विच्छिन्न हो रहा है और आत्म-शक्ति प्रादुर्भूत होती जा रही है। इस प्रकार हर्ष सहित शुद्धभावके हिंडोले पर चेतन झूल रहा है। कवि कहता है—

सहज हिंडना हरख हिडोलना, झूलत चेतन राव।
जहँ धर्म कर्म संजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव॥
जहँ सुमन रूप अनूप मन्दिर, सुरुचि भूमि सुरंग।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड़ अभंग॥

मरुवा सुगुन पर जाय विचरन, भौंर विमल विवेक।
व्यवहार निश्चय नभ सुदंडी, सुमति पटली एक॥
उद्यम उदय मिलि देहिं झोंटा, शुभ अशुभ कल्लोल।
पट्कील जहाँ पट् द्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल॥

संवेग संवर निकट सेवक, विरत बीरे देत।
आनंद कंद सुछंद साहिब सुख समाधि समेत॥
धारना समता क्षमा करुणा, चार सखि चहुँ ओर।
निर्जरा दोउ चतुर दासी, करहिं खिदमत जोर॥

जहँ विनय मिलि सातों सुहागिन, करत धुनि झनकार।
गुरु वचन राग सिद्धान्त धुरपद, ताल अरथ विचार॥

रहस्यवादकी प्रथम अवस्थासे लेकर तृतीय अवस्था तक पहुँचनेमें

आत्माकी तड़पन और उसकी बेचैनीकी अवस्थाका चित्रण महाकवि बनारसीदासने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें किया है। कवि कहता है—

मैं विरहिन पियके अधीन, यों तलफों ज्यों जल बिन मीन।
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज सनेही जो मिलै॥

अनुभूतिके दिव्य होने पर जब बहिरुन्मुखी वृत्तियाँ अन्तरुन्मुखी हो जाती हैं, तो बहिर्जगत्में कुछ दिखलायी नहीं पड़ता; किन्तु आन्तरिक जगत्में ही दिव्यानुभूति होने लगती है। इसी अवस्थाका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

बाहिर देखूँ तो पिय दूर। घट देखें घटमें भरपूर।

जब अनुभव करते-करते लम्बा अरसा बीत गया और आत्मदर्शन नहीं हुआ तो उसके धैर्यका बाँध टूट गया और मुँहसे अचानक निकल पड़ा—

अलख अमूरति वर्णन कोय। कबधों पियको दर्शन होय॥
सुगम पंथ निकट है ठौर। अन्तर आड विरहकी दौर॥
जहँ देखूँ पियकी उनहार। तन मन सरवस डारों वार॥
होहुँ मगनमें दरशन पाय। ज्यों दरियामें बूँद समाय॥
पियकों मिलों अपनपो खोय। ओला गल पानी ज्यों होय॥

चतुर्थ अवस्थामें पहुँचनेपर, जब कि मोक्षरमासे रमण होने ही वाला है; आत्मानुभूति की निम्न पुकार होने लगती है—

पिय मोरे घट मैं पिय माहिं, जल तरंग ज्यों द्विविधा नाहिं।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति॥
पिय सुख सागर मैं सुख सींव, पिय शिव मंदिर मैं शिव नीव॥
पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम॥
पिय शंकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मैं केवलि बानि॥

पिय भोगी मैं भुक्ति विशेष, पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥
जहँ पिय तहँ मैं पियके संग, ज्यों शशि हरि मैं ज्योति अभंग ।

इसके अनन्तर कविने शुद्धात्म तत्त्वकी प्राप्तिके लिए अनेक भावात्मक दशाओंका विश्लेषण किया है । इस सरस रहस्यवादमें प्रेमकी संयोग वियोगात्मक दशाओंका विश्लेषण भी सूक्ष्मतासे किया गया है ।

ग्यारहवाँ अध्याय

सिंहावलोकन

हिन्दी-जैन-साहित्यका आरम्भ ७वीं शतीसे हुआ है। अपभ्रंश भाषा और पुरानी हिन्दीमें सबसे प्राचीन रचनाएँ जैन-कवियोंकी ही उपलब्ध हैं। इन दोनों भाषाओंमें विपुल परिमाणमें ग्रन्थोंका प्रणयन कर हिन्दी-साहित्यके लिए उपजाऊ क्षेत्र तैयार करना जैन-लेखकोंका ही कार्य है। भले ही संकीर्णता और साम्प्रदायिक मोहमें आकर इतिहास निर्माता इस नग्न सत्यको स्वीकार न करें। साहित्यका अनुशीलन पूर्वोक्त प्रकरणोंमें किया जा चुका है, अतः यहाँपर समयक्रमानुसार कवियोंकी नामावली दी जा रही है।

आठवीं शताब्दीमें स्वयंभूदेवने हरिवंशपुराण, पउमचरिउ (रामायण) और स्वयम्भू छन्द; दशवीं शताब्दीमें देवसेनने सावयधम्म दोहा; पुष्पदन्तने महापुराण, यशोधर चरित और नागकुमार चरित; योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा; रामसिंह मुनिने दोहापाहुड एवं धनपाल कविने भविसयत्तकहा लिखी है। ग्यारहवीं शताब्दीमें कनकामर मुनिने करकण्डु चरित; जिनदत्तसूरिने चाचरि, उपदेश रसायन और कालस्वरूप कुलक रचे हैं। बारहवीं शताब्दीमें हेमचन्द्रसूरिने प्राकृत व्याकरण, छन्दोनुशासन, और देशीनाममाला आदि; हरिभद्रसूरिने नेमिनाथ चरित; शालिभद्र सूरिने बाहुबलिरास; सोमप्रभने कुमारपाल प्रतिबोध; जिनपद्म सूरिने स्थूलभद्र फाग और विनयचन्द्र सूरिने नेमिनाथ चतुष्पदिकाकी रचना की है।

१३ वीं शताब्दीमें रासा ग्रन्थ और कथात्मक चउपई ग्रन्थ रचे

गये हैं। इस शताब्दीके रचयिताओंपर अपभ्रंशका पूरा प्रभाव है। अनेक कवियोंने अपभ्रंश भाषामें भी काव्यग्रन्थोंकी रचना की है। यों तो अपभ्रंश साहित्यकी परम्परा १७वीं शती तक चलती रही, पर इस शताब्दीके जैन रचयिताओंने हिन्दी भाषामें काव्य लिखना आरम्भ कर दिया था। विषयकी दृष्टिसे इस शतीके काव्योंमें हिंसापर अहिंसाकी और दानवतापर मानवताकी विजय दिखलानेके लिए पौराणिक चरितोंके रंग भरकर महापुरुषोंके चरित वर्णित किये गये हैं। कलाकारोंने काव्यकलाको रस, अलंकार और सुन्दर लयपूर्ण छन्द तथा कवित्तों-द्वारा अलंकृत किया है। अपभ्रंशके कलाकारोंमें लक्खण कविका अणुव्रतरत्नप्रदीप; अम्बदेव सूरिका समररास; और राजशेखर सूरिका उपदेशामृत तरंगिणी और नेमिनाथ फाग प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं।

हिन्दी भाषाके काव्योंमें जम्बूस्वामी रासा, रेवंतगिरि रासा, नेमिनाथ चउपई, उपदेशमाला कथानक छप्पय आदि काव्य प्रमुख हैं। यद्यपि इन ग्रन्थोंमें काव्यत्व अल्प परिमाणमें और चरित्र तथा नीति अधिक परिमाणमें है; तो भी हिन्दी काव्य साहित्यके विकासको अवगत करनेके लिए इनका अत्यधिक महत्त्व है।

१४ वीं शताब्दीमें मानवके आचारको उन्नत और व्यापक बनानेके लिए सप्तक्षेत्र रास, संघपति समरा रास और कच्छुलि रासा प्रभृति प्रमुख रचनाएँ लिखी गयी हैं।

१५ वीं शताब्दीमें भट्टारक सकलकीर्त्तिने आराधनासार प्रतिबोध, विजयभद्र या उदवन्तने गौतम रासा, जिनउदय गुरुके शिष्य और ठक्कर माल्हेके पुत्र विद्धणू ने ज्ञानपंचमी चउपई और दयासागर सूरिने धर्मदत्त चरित्र रचा है। अपभ्रंश भाषामें महाकवि रइधूने पार्श्वपुराण, मेहेसर चरित्र, सम्यक्त्वगुणनिधान, सुकौशलचरित, करकण्डुचरित, उपदेशरत्नमाला, आत्मसम्बोध काव्य, पुण्यास्रवकथा और सम्यक्त्वकौमुदीकी रचना की है। काव्यकी दृष्टिसे रइधूके ग्रन्थ उच्चकोटिके हैं।

१६ वीं शताब्दीमें ब्रह्म जिनदास युगप्रवर्तक ही नहीं, युगान्तरकारी कवि हुए हैं। इन्होंने आदिपुराण, श्रेणिक चरित, सम्यक्त्वरास, यशोधर रास, धनपालरास, व्रतकथाकोश, दशलक्षणव्रत कथा, सोलह कारण, चन्दनषष्ठी, मोक्षसप्तमी, निर्दोष सप्तमी आदि मानवताके प्रतिष्ठापक ग्रन्थ रचे। इसी शताब्दीमें चतुरुमलने नेमीश्वर गीत बनाया और धर्मदासने धर्मोपदेश श्रावकाचार रचा।

हिन्दी जैन काव्यके विकासके लिए सत्रहवीं शताब्दी विशेष महत्त्व की है। इस शतीमें गद्य और पद्य दोनोंमें साहित्य लिखा गया। महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द और रायमल जैसे श्रेष्ठ कवियोंको उत्पन्न करनेका गौरव इसी शतीको है। इनके अतिरिक्त त्रिभुवनदास, हेमविजय, कुँवरपाल और उदयराजपतिकी रचनाएँ भी कम गौरवपूर्ण नहीं हैं। गद्य लेखकोंमें पाण्डे राजमल्ल एवं अखराजकी रचनाएँ प्रमुख मानी जाती हैं। राजभूषणने लोक निराकरण रास, ब्रह्मवस्तुने पार्श्वनाथ रासो; मुनिकल्याण कीर्तिने होलीप्रबन्ध; नयनसुखने मेघमहोत्सव; हरिकलशने हरिकलश; रूपचन्दने परमार्थ दोहा शतक, परमार्थगीत, पद संग्रह, गीत परमार्थी, पञ्चमंगल, नेमिनाथ रासो; रायमलने हनुमन्त कथा, प्रद्युम्न चरित, सुदर्शन रासो, निर्दोष सप्तमीव्रत कथा, नेमीश्वर रासो, श्रीपाल रासो, भविष्यदत्त कथा; त्रिभुवनचन्द्रने अनित्यपञ्चाशत्, प्रास्ताविक दोहे, षट्द्रव्य वर्णन और फुटकर कवित्त; बनारसीदासने बनारसीविलास, नाटक समयसार, अर्द्धकथानक और नाममाला; कल्याणदेवने देवराज वच्छराज चउपई; मालदेवने भोजप्रबन्ध, पुरन्दरकुमार चउपई; पाण्डे जिनदासने जम्बूचरित्र, ज्ञानसूर्योदय; पाण्डे हेमराजने प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका और भाषा भक्तामर; विद्याकमलने भगवती गीता; मुनिलावण्यने रावण-मन्दोदरी संवाद; गुणसूरिने ढोला सागर; लूणसागरने अञ्जनासुन्दरी संवाद; मानशिवने भाषा कवि रस मंजरी; केशव-

दासने जन्मप्रकाशिका, जटमलने बावनी गोरा बादलकी बात, प्रेम विलास चउपई एवं हंसराजने हंसराज नामक ग्रन्थ लिखा है।

१८ वीं शताब्दीमें हेमने छन्द मालिका; केसरकीर्त्तिने नामरत्नाकर; विनयसागरने अनेकार्थनाममाला; कुँअरकुशालने लखपत जयसिन्धु; मानने संयोग द्वात्रिंशिका; कवि विनोदने फुटकर पद्य; उदयचन्द्रने अनूप-रसाल; उदयराजने वैद्य विरहणि प्रबन्ध; मानसिंह विजयगच्छने राजविलास; सुबुद्धविजयने प्रतापसिंहका गुण वर्णन; जगरूपने भावदेव सूरिरास; लक्ष्मी-वल्लभने कालज्ञान; धर्मसीने डंभ क्रिया; समरथने रसमंजरी; रामचन्द्रने रामविनोद, दीपचन्द्रने वैद्यसार बालतन्त्रकी भाषा वचनिका ; जयधर्मने शकुन प्रदीप, रामचन्द्रने सामुद्रिक भाषा; नगराजने सामुद्रिक भाषा; लालचन्द्रने स्वरोदय भाषा टीका; रत्नशेखरने रत्नपरीक्षा; लक्ष्मीचन्द्रने आगरा गजल; खेत्तलने उदयपुर गजल और चित्तौड़ गजल; मनरूप विजयने जूनागढ़ वर्णन; उदयचन्द्रने बीकानेर गजल; दुर्गादासने मरोट; किसनने कृष्णा बावनी; केशवने केशव बावनी, जिनहर्षने जसराज बावनी और लक्ष्मीवल्लभने हेमराजबावनी नामक ग्रन्थ लिखे।

इसी शताब्दीमें जिनहर्षने उपदेशछत्तीसी सवैया; भैया भगवतीदासने ब्रह्मविलास; द्यानतरायने उपदेशशतक, अक्षरी बावनी, धर्मविलास और आगमविलास ; पण्डित शिरोमणिदासने धर्मसार ; बुलाकीदासने महा-भारत और प्रश्नोत्तर श्रावकाचार; पण्डित श्यामलालने सामायिक पाठ ; विनोदीलालने श्रीपालचरित्र ; पण्डित लक्ष्मीदासने यशोधरचरित्र और धर्मप्रबोध ; पंडित शिवलालने चर्चासागर ; भूधरदासने जैनशतक, पार्श्वपुराण और पदसंग्रह ; आनन्दघनने आनन्दबहत्तरी; यशोविजयने जसविलास ; विनयविजयने विनयविलास; किसनसिंहने क्रियाकोष, भद्र-बाहुचरित्र और रात्रिभोजन कथा ; मनोहरलालने धर्मपरीक्षा; जोधराज गोदीकाने सम्यक्त्वकौमुदी; खुशालचन्द्र कालाने हरिवंशपुराण, पद्मपुराण और उत्तरपुराण; रूपचन्द्रने नाटक समयसारकी टीका; पं० दौलतरामने

हरिवंशपुराणकी वचनिका, पद्मपुराणकी वचनिका, आदिपुराणकी वचनिका, परमात्मप्रकाशकी वचनिका और श्रीपालचरित्रकी रचना की है।

खड्गसेनने तिलोकदर्पण; जगतरामने आगमविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, पद्मनन्दपच्चीसी आदि अनेक ग्रन्थ; देवीसिंहने उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला, जीवराजने परमात्माप्रकाशकी वचनिका; ताराचन्दने ज्ञानार्णव, विश्वभूषण भट्टारकने जिनदत्तचरित्र, हरखचन्दने श्रीपालचरित्र, जिनरंगसूर्यने सौभाग्यपच्चीसी, धर्ममन्दिरगणिने प्रबोधचिन्तामणि, हंसविजययतिने कल्पसूत्रकी टीका, ज्ञानविजय यतिने मलयचरित्र एवं लाभवर्द्धनने उपपदी ग्रन्थोंकी रचना की है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें टोडरमलने गोम्मटसारकी वचनिका, त्रिलोकसारकी वचनिका, लब्धिसारकी वचनिका, क्षपणसारकी वचनिका और आत्मानुशासनकी वचनिका; जयचन्द्रने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिका, द्रव्यसंग्रहकी वचनिका, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी वचनिका; आत्मख्यातिसारकी वचनिका, परीक्षामुख वचनिका, देवागम वचनिका, अष्टपाहुडकी वचनिका, ज्ञानार्णवकी वचनिका और भक्तामरकी वचनिका; वृन्दावनलालने वृन्दावनविलास, चतुर्विंशति जिनपूजापाठ और तीसचौबीसी पूजापाठ ; भूधरमिश्रने पुरुषार्थसिद्धयुपाय वचनिका और चर्चासमाधान; बुधजनने तत्त्वार्थबोध, बुधजनसतसई, पञ्चास्तिकाय भाषा और बुधजनविलास ; दीपचन्दने ज्ञानदर्पण, अनुभवप्रकाश (गद्य), अनुभवविलास, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्मपुराण, स्वरूपानन्द और अध्यात्मपच्चीसी; ज्ञानसार या ज्ञानानन्दने ज्ञानविलास और समयतरङ्ग; रङ्गविजयने गजल; कर्पूरविजय या चिदानन्दने स्वरोदय; टेकचन्दने तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका ; नथमल विलालाने जिनगुणविलास, नागकुमारचरित, जीवन्धर चरित और जम्बूस्वामी चरित ; डालूरामने गुरूपदेशश्रावकाचार, सम्यक्त्वप्रकाश और अनेक पूजाएँ ; सेवारामने हनुमच्चरित्र, शान्तिनाथ पुराण और भविष्यदत्त चरित्र; देवीदासने

परमानन्दविलास, प्रवचनसार, चिद्विलास वचनिका और चौवीसी पाठ ; भारामल्लने चारुदत्तचरित्र , सतव्यसन चरित्र, दानकथा, शीलकथा, और रात्रिभोजनकथा; गुलाबरायने शिखिरविलास ; थानसिंहने सुबुद्धि-प्रकाश ; नन्दलाल छावड़ाने मूलाचारकी वचनिका ; मन्नालाल सांगाकर ने चरित्रसारकी वचनिका; मनरङ्गलालने चौबीसी पूजापाठ, नेमिचन्द्रिका, सतव्यसन चरित्र, सतऋषिपूजा, षट्कर्मोपदेश रत्नमाला, वरांगचरित्र, विमलनाथपुराण, शिखिरविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, आगमशतक और अनेक पूजा ग्रन्थ; चेतनविजयने लघुपिंगल, आत्मबोध और नाममाला; मेघराजने छन्दप्रकाश; उदयचन्दने छन्द प्रबन्ध; उत्तमचन्दने अलंकार आशय भंडारी; क्षमाकल्याणने अंबड चरित्र और जम्बूकथा; ज्ञानसागरने माला पिंगल, कामोद्दीपन, पूरबदेश वर्णन, चन्द चौपाई समालोचना और निहाल बावनी; मूलकचन्दने वैद्य-हुलास ; मेघने मेघविनोद और मेघमाला; गंगारामने लोलिंब राजभाषा, सूरतप्रकाश और भावनिदान; चैनसुखदासने शतश्लोकीकी भाषा टीका; रामचन्द्रने अवपदिशा शकुनावली; तत्त्वकुमारने रत्न परीक्षा; गुरुविजयने कापरड़ा; कल्याणने गिरनार सिद्धाचल गजल; भक्ति विजयने भावनगर वर्णन गजल; मनरूपने मेड़ता वर्णन, पोरबन्दर और सोजात वर्णन; रघुपतिने जैनसार बावनी; निहालने ब्रह्मबावनी; चेतनने अध्यात्म बारांखड़ी; सेवाराम शाहने चौबीसी पूजा-पाठ; यति कुशलचन्द्र गणिने जिनवाणी सार; हरजसरायने साधु गुणमाला और देवाधिदेवस्तवन; क्षमाकल्याण पाठकने साधु प्रतिक्रमण विधि और श्रावकप्रतिक्रमण विधि एवं विजयकीर्त्तिने श्रेणिकचरित्रकी रचना की है।

विक्रमकी २० वीं शतीके आरम्भमें एवं ई० सन् की १९वीं शती-के अन्तमें पं० सदासुखने रत्नकरण्डश्रावकाचारकी टीका, अर्थप्रकाशिका, समयसारकी टीका, नित्य पूजाकी टीका और अकलंकाष्टककी टीका; भागचन्दने ज्ञानसूर्योदय, उपदेश सिद्धान्तरत्नमाला, अमितगतिश्रावका-चार टीका, प्रमाण परीक्षा टीका और नेमिनाथ पुराण; दौलतरामने

छहढाला; मुनि आत्मारामने जैन तत्त्वादर्श, तत्त्वनिर्णय प्रसार और अज्ञानतिमिर भास्कर; यति श्रीपालचन्द्रने सम्प्रदाय शिक्षा; चम्पारामने गौतम परीक्षा, वसुनन्दी श्रावकाचार टीका, चर्चासागर और योगसार; छत्रपतिने द्वादशानुप्रेक्षा, मनमोदन पंचासिका, उद्यमप्रकाश और शिक्षा प्रधान; जौहरीलालने पद्मनन्दिपंचविंशतिकाकी टीका; नन्दरामने योग-सार वचनिका, यशोधरचरित्र और त्रिलोकसारपूजा; नाथूराम दोशीने सुकुमाल चरित्र, सिद्धिप्रिय स्तोत्र, महीपाल चरित्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका, समाधितन्त्र टीका, दर्शनसार और परमात्मप्रकाश टीका; पन्ना-लालने विद्वज्जनबोधक और उत्तर पुराण वचनिका; पारसदासने ज्ञानसूर्यो-दय और सार चतुर्विंशतिकाकी वचनिका; फतेहलालने विवाह पद्धति, दशावतार नाटक, राजवार्त्तिकालंकार टीका, रत्नकरण्ड टीका, तत्त्वार्थ-सूत्र टीका और न्यायदीपिका वचनिका; बख्तावरमल रतनलालने जिन-दत्त चरित्र, नेमिनाथ पुराण, चन्द्रप्रभ पुराण, भविष्यदत्त चरित्र, प्रीतिं-कर चरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, व्रतकथाकोश और अनेक पूजाएँ; चिदानन्दने सवैया बावनी और स्वरोदय; मन्नालाल बैनाड़ाने प्रद्युम्न चरित्र वच-निका; महाचन्द्रने महापुराण और सामायिक पाठ; मिहिरचन्दने सज्जन-चित्तवल्लभ पद्यानुवाद; हीराचन्द अमोलकने पंचपूजा; शिवचन्दने नीति-वाक्यामृत टीका, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार और तत्त्वार्थकी वचनिका; शिवजी-लालने रत्नकरण्डवचनिका, चर्चासंग्रह, बोधसार, अध्यात्मतरंगिणी एवं स्वरूपचन्दने मदनपराजय वचनिका और त्रिलोकसार टीका आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

ईस्वी सन् की २०वीं शतीमें गुरु गोपालदास बरैया, बा० जैनेन्द्र-किशोर, जवाहरलाल वैद्य, महात्मा भगवानदीन, बा० सूरजभानु वकील, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, पं० नाथूराम प्रेमी, पं० जुगलकिशोर मुख्तार, सत्यभक्त पं० दरबारीलाल, अर्जुनलाल सेठी, लाला मुंशीलालजी, बाबू दयाचन्द गोयलीय, मि० वाडीलाल मोतीलाल शाह, ब्र० शीतलप्रसाद,

मुनि जिनविजय, बाबू माणिकचन्द, बाबू कन्हैयालाल, पं० दरयावसिंह सोधिया, खूबचन्द सोधिया, निहालकरण सेठी, पं० खूबचन्द शास्त्री, पं० मनोहरलाल शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं० फूलचन्द्र शास्त्री, पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, मुनि शान्तिविजय, मुनि कल्याणविजय, लाला न्यामतसिंह, स्व० भगवत्स्वरूप भगवत, कवि गुणभद्र आगास, कवि कल्याणकुमार 'शशि', कृष्णचन्द्राचार्य, मुनि कन्तिसागर, अगरचन्द्र नाहटा, वीरेन्द्रकुमार एम०ए०, पं० लालाराम शास्त्री, पं० मक्खनलाल शास्त्री, कविवर चैनसुखदास न्यायतीर्थ, पं० अजितकुमार शास्त्री, पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, प्रो० हीरालाल, एम० ए०, पी०एच०डी०, पं० के० भुजबली शास्त्री, प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य, पं० सुखलाल संघवी, पं० अयोध्याप्रसाद गोयलीय, बा० लक्ष्मीचन्दजी, पं० चन्दाबाई, पं० बालचन्द्र एम० ए०, प्रो० गो० खुशालचन्द्र जैन एम०ए०, पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य, प्रो० देवेन्द्रकुमार, कवि पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रो० दलसुख मालवणिया, पं० बालचन्द्र शास्त्री, बा० छोटेलाल एम० आर० ए० एस, पं० परमानन्द शास्त्री, श्री महेन्द्र राजा एम० ए०, पृथ्वीराज एम० ए०, पं० बलभद्र न्यायतीर्थ, डा० नथमल टांटिया, श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, कवि तन्मय बुखारिया, कवि हरिप्रसाद 'हरि', भँवरलाल नाहटा, कवि 'सुधेश' आदि साहित्यकार उल्लेख योग्य हैं। इस प्रकार हिन्दी जैन साहित्य निरन्तर समृद्धिशाली होता जा रहा है।

परिशिष्ट

कतिपय ग्रन्थरचयिताओंका संक्षिप्त परिचय

धर्मसूरि—इनके गुरुका नाम महेन्द्रसूरि था। इन्होंने संवत् १२६६ में जम्बूस्वामी-रासाकी रचना की है। इस ग्रन्थकी भाषा गुजरातीसे प्रभावित हिन्दी है। प्रबन्धकाव्यके लिखनेकी शक्ति कविमें विद्यमान है। जम्बूस्वामीरासाकी भाषाका नमूना निम्न प्रकार है।

> जिण चउविस पय नमेवि गुरुचरण नमेवि।
> जम्बूस्वामिहिं तणूं चरिय भविउ निसुणेवि॥
> करि सानिध सरसत्ति देवि जीयरयं कहाणउ।
> जंबू स्वामिहिं (सु) गुणगहण संखेवि वखाणउ॥
> जंबुदीवि सिरि भरहखित्ति तिहिं नयर पहाणउ।
> राजगृह नामेण नयर पहुवी वक्खाणउ॥

विजयसेन सूरि—इनके शिष्य वस्तुपालमन्त्री थे। वस्तुपालने संवत् १२८८ के लगभग गिरनारका संघ निकाला था। विजयसेन सूरिने रेवन्त गिरिरासाकी रचना इस यात्रा तथा इस यात्रामें गिरिनार पर किये गये जीर्णोद्धारका लेखाजोखा प्रस्तुत करनेके लिए की है। इस ग्रन्थकी भाषा पुरानी हिन्दी है, पर गुजरातीका प्रभाव स्पष्ट है। नमूना निम्न प्रकार है—

> परमेसर तित्थेसरह पयपंकज पणमेवि।
> भणिसु रास रेवंतगिरि-अंबिकदिवि सुमरेवि॥
> गामागर-पुर-वय गहण सरि-सरवरि-सुपएसु।
> देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु॥

विनयचन्द्र सूरि—संस्कृत और प्राकृत भाषाके मर्मज्ञ विद्वान्

कवि विनयचन्द्रसूरि हैं। इनका समय विक्रम संवत्की तेरहवीं शती है। इनके गुरु रत्नसिंह थे। कवि विनयचन्द्र संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी इन तीनों ही भाषाओंमें कविता करते थे। आपके द्वारा हिन्दी भाषामें 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' नामक ४० पद्योंका एक छोटा-सा ग्रन्थ तथा उपदेश-माला कथानक छप्पय ८१ पद्योंका ग्रन्थ उपलब्ध है। नेमिनाथ चउपईमें प्रारम्भकी कुछ चौपाइयाँ निम्न प्रकार हैं—

सोहग सुंदरु घण लावन्नु, सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।
सखिपति राजल चढ़ि उत्तरिय, वार मास सुणि जिम वज्जरिय ॥१॥
नेमिकुमर सुमरवि गिरनार, सिद्धी राजल कन्न कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु, गज्जइ विरहि रिझिज्जहु देहु॥
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहि विणु सहि सहियइ केव।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि, दुज्जण तणा मनवंछित पूरि॥
गयेउ नेमि तउ विनठउ काइ, अछइ अनेरा वरह सयाइ।

अम्बदेव—यह नगेन्द्रगच्छके आचार्य पासड सूरिके शिष्य थे। इन्होंने संवत् १३७१ में संघपति-समरारास नामक ग्रन्थ लिखा है। अणहिल्लपुर पट्टनके ओसवाल शाह समरासंघपतिने संवत् १३७१ में शत्रुञ्जयतीर्थका उद्धार अपार धन व्यय करके कराया था। कविने इसी इतिवृत्तको लेकर इस रास ग्रन्थकी रचना की है। भाषा राजस्थानीका परिष्कृतरूप है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

वाजिय संख असंख नादि काहल दुडुदुडिया।
घोड़े चडइ सल्लारसार राउत्त सींगड़िया॥
तउ देवालउ जोत्रिवेगि घाघरि वु झमकइ।
समविसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ॥

जिनपद्मसूरि—इनके पिताका नाम आंबाशाह और पितामहका नाम लक्ष्मीधर था। यह खीमड कुलमें उत्पन्न हुए थे। संवत् १३८९ में

ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी सोमवारको ध्वजा, पताका, तोरण, वन्दन मालादिसे अलंकृत आदीश्वर जिनालयमें नान्दिस्थापन विधि सहित श्री सरस्वती-कण्ठाभरण तरुण प्रभाचार्यने खरतरगच्छीय जिनकुशल सूरिके पदपर इन्हें प्रतिष्ठित किया था। शाह हरिपालने संघभक्ति और गुरुभक्तिके साथ इन्हें युगप्रधानपद बड़े उत्सवके साथ प्रदान किया था। इन्हीं आचार्यने थूलिभद्रफागु चैत्रमहीनेमें फाग खेलनेके लिए रचा है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

ऊह सोहग सुन्दर रूपवंतु गुणमणि भंडारो।
कंचण जिम झलकंत कंति संजम सिरिहारो॥
थूलिभद्र मुणिराउ जाम महियली बोहंतउ।
नयरराय पाडलियमाँहि पहूतउ विहरंतउ॥

विजयभद्र—इनका अपर नाम उदयवन्त भी मिलता है। इन्होंने संवत् १४१२ में गौतमरास नामक ग्रन्थ रचा है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

जंवूदीवि सिरभरइखित्ति खोणीतलमंडणु।
मगधदेस सेविय नरेस रिउ-दल-वल खंडणु॥
धणवर गुव्वर नाम गामु जहिं गुणगण सज्जा।
णिप्पु वसे वसुभूइ तत्थ जसु पुहवी भज्जा॥

ईश्वरसूरि—ईश्वरसूरिके गुरुका नाम शान्तिसूरि था। इन्होंने मांडलगढ़के बादशाह गयासुद्दीनके पुत्र नासिरुद्दीनके समय—वि० सं० १५५५—१५६९ में पुंज मन्त्रीकी प्रार्थनासे सं० १५६१ में ललितांगचरित्रकी रचना की है। इनकी भाषा प्राकृत और अपभ्रंश मिश्रित है। कविताका नमूना निम्न है—

महिमहति मालवदेस, धण कणयलच्छि निवेस।
तिहँ नयर मँडवदुग्ग, महिनवउ जाण कि सग्ग॥

तिहँ अतुलवल गुणवंत, श्रीग्यासमुत जयवंत।
समरत्थ साहसधीर, श्रीपातसाह निसीर॥

संवेगसुन्दर उपाध्याय—इनके गुरुका नाम जयसुन्दर था तथा यह बड़तपगच्छके अनुयायी थे। इन्होंने संवत् १५४८ में 'साराविलावनरासा' नामक उपदेशात्मक ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आचारात्मक विषय निरूपित हैं।

महाकवि रइधू—इनके पितामहका नाम देवराय और पिताका नाम हरिसिंह तथा माताका नाम विजयश्री था। यह पद्मावती पुरवाल जातिके थे। ये गृहस्थ विद्वान् थे। कविकुल तिलक, सुकवि इत्यादि इनके विशेषण हैं। ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इन्होंने अपने जीवनकालमें अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाएँ कराई थीं। इनके दो भाई थे—बाहोल और माहणसिंह। इनके दो गुरु थे—ब्रह्मश्रीपाल और भट्टारक यशःकीर्ति। भट्टारकजीके आशीर्वादसे इनमें कवित्व शक्तिका स्फुरण हुआ था तथा ब्रह्मश्रीपालसे विद्याध्ययन किया था। कविवर रइधू ग्वालियरके निवासी थे। इनके समकालीन राजा डूँगरसिंह, कीर्त्तिसिंह, भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक यशःकीर्ति, भट्टारक मलयकीर्ति और भट्टारक गुणभद्र थे।

इनका समय १५ वीं शतीका उत्तरार्द्ध और १६ वीं शतीका पूर्वार्ध है। इन्होंने अपनी समस्त रचनाएँ ग्वालियरके तोमरवंशी नरेश डूँगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके शासनकालमें लिखी हैं। इन दोनों नरेशोंका शासनकाल वि० सं० १४८१ से वि० सं० १५३६ तक माना जाता है। कविने 'सम्यक्त्वगुणनिधान'का समाप्तिकाल वि० सं० १४९२ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा मंगलवार दिया है। इस ग्रन्थको कविने तीन महीनोंमें लिखा था। सुकौशलचरितका समाप्तिकाल वि० सं० १४९६ माघ कृष्ण दशमी बताया गया है।

महाकवि रइधू अपभ्रंश भाषाके रससिद्ध कवि हैं। आपकी रचनाओंमें कविताके सभी सिद्धान्त सन्निहित हैं। आपकी कृतियोंकी एक

विशेषता यह भी है कि इनमें काव्यके साथ प्रशस्तियोंमें इतिहास भी अंकित किया गया है। आपने अपनी रचनाएँ प्रायः ग्वालियर, दिल्ली और हिसारके आस-पासमें लिखी हैं। अतः उत्तर भारतकी जैन जनताका तत्कालीन इतिवृत्त इनमें पूर्णरूपसे विद्यमान है। हरिवंश पुराणकी आद्य प्रशस्तिमें बताया गया है कि उस समय सोनागिरिमें भट्टारक शुभचन्द्र पदारूढ़ हुए थे। इससे अनुमान किया जाता है कि ग्वालियर भट्टारकीय गद्दीका एक पट्ट सोनागिरिमें भी था। 'सम्मइजिनचरिउ'की प्रशस्तिमें आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी विशालमूर्तिके निर्माण किये जानेका उल्लेख है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं :—

तातम्मि खणि वंभवय भार भारेण
सिरि अयरवालंक वंसम्मि सारेण।
संसारतणु-भोय-णिव्विण चित्तेण
वर धम्म झाणामएणेव तित्तेण।
खेल्हाहिहाणेण णमिऊण गुरुतेण
जसकित्ति विणयत्तु मंडिय गुणोहेण।
भो सयण दावग्गि उल्हवण णणदाण
संसारजलरासि उत्तार वर जाण।
तुम्हहं पसाएण भव दुह-कयंतस्स
ससिपह जिणेंदस्स पडिमा विसुद्धस्स।
काराविया मइंजि गोपायले तुगं
उडुवावि णामेण तिथम्मि सुइ संग।

यशोधरचरित और पुण्यास्रव कथाकोशकी प्रशस्तिमें भी अनेक ऐतिहासिक उल्लेख हैं। कविने अपनी रचनाओंमें तत्कालीन जैन समाजका मानचित्र दिखलानेका आयास किया है। इनकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं :—

सम्यक्त्वजिनचरित, मेघेश्वरचरित, त्रिषष्टिमहापुराण, सिद्धचक्रविधि,

बलभद्रचरित, सुदर्शनशीलकथा, धन्यकुमारचरित, हरिवंशपुराण, सुकौशलचरित, करकण्डुचरित, सिद्धान्ततर्कसार, उपदेशरत्नमाला, आत्मसम्बोधकाव्य, पुण्यास्रवकथा, सम्यक्त्वकौमुदी तथा पूजनोंकी जयमालाएँ। इन्होंने इतना अधिक साहित्य रचा है, कि उसके प्रकाशनमात्रसे अपभ्रंश साहित्यका भाण्डार भरा-पूरा दिखलायी पड़ेगा।

रूपचन्द—कवि रूपचन्दजी आगराके निवासी थे। ये महाकवि बनारसीदासके समकालीन हैं। यह रससिद्ध कवि हैं। इनकी रचनाएँ परमार्थ दोहा शतक, परमार्थ गीत, पदसंग्रह, गीतपरमार्थी, पंचमंगल एवं नेमिनाथरासो उपलब्ध हैं। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

अपनो पद न विचारके, अहो जगतके राय।
भववन छायक हो रहे, शिवपुर सुधि विसराय॥
भववन भरमत ही तुम्हें, बीतो काल अनादि।
अब किन घरहिं सँवारई, कत दुख देखत बादि॥
परम अतीन्द्रिय सुख सुनो, तुमहि गयो सुलझाय।
किञ्चित इन्द्रिय सुख लगे, विषयन रहे लुभाय॥
विषयन सेवते भये, तृष्णा तें न बुझाय।
ज्यों जल खारा पीवतें, बाढ़े तृषाधिकाय॥

पाण्डे रूपचन्द—इन्होंने सोनगिरिमें जगन्नाथ श्रावकके अध्ययनके लिए कवि बनारसीदासके नाटक समयसारपर हिन्दीटीका संवत् १७२१में लिखी है। ग्रन्थकी भाषा सुन्दर और प्रौढ़ है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत है कि यह अच्छे कवि थे। इनकी कविताका नमूना निम्न है—

पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हें,
सत्रह सैं बीते परिठांनु आप रसमैं।

आसू मास आदि धौंसु संपूरन ग्रन्थ कीन्हौं,
वारतिक करिकै उदार ससि मैं।
जो पै यहु भाषा ग्रन्थ सब्द सुबोध या कौं,
ठौह बिनु सम्प्रदाय नवै तत्व बस मैं।
यातैं ग्यानलाभ जाँति संबनिको वैन मानि,
वात रूप ग्रन्थ लिखे महाशान्त रस मैं ॥१॥

राजमल्ल—हिन्दी जैन गद्य लेखकोंमेंसे सबसे प्राचीन गद्य-लेखक राजमल्ल हैं। इन्होंने संवत् १६००के आसपास समयसारकी हिन्दी टीका लिखी थी। इनकी इस टीकासे ही समयसार अध्ययन-अध्यापनका विषय बना था। महाकवि बनारसीदासको इन्हींकी टीकाके आधारपर नाटक समयसार लिखनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

पाण्डे जिनदास—इन्होंने ब्रह्म शान्तिदासके पास शिक्षा प्राप्त की थी। यह मथुराके निवासी थे। इन्होंने संवत् १६४२ में जम्बूस्वामी चरित्रको समाप्त किया था। इनकी एक अन्य रचना जोगीरासो भी उपलब्ध है। कविताका नमूना निम्न है—

अकबर पातसाह कै राज, कीनी कथा धर्मके काज।
भूल्यो बिछूहो अच्छर जहाँ, पंडित गुनी सवारो तहाँ॥
करै धर्म सो टीका साह, टोडर सुत आगरै सनाहु॥

कुँवरपाल—महाकवि बनारसीदासके घनिष्ठ मित्रोंमें इनका स्थान था। युक्ति-प्रबोधमें बताया गया है कि बनारसीदासने अपनी शैलीका उत्तराधिकार इन्हींको सौंपा था। पांडे हेमराजकी प्रवचनसार टीकामें इनको अच्छा ज्ञाता बतलाया गया है। बनारसीदासकी सूक्तिमुक्तावलीमें जो इनके पद्य दिये गये हैं, उनके आधारपर इन्हें अच्छा कवि कहा जा सकता है।

परम धरम वन दहै, दुरित अंबर गति धारहि।
कुयश धूम उदगरै, भूरिभय भस्म विथारहि॥

दुखफुलिंग फुंकरै, तरल तृष्णा कल काढ़हि।
धन ईंधन आगम संजोग, दिन-दिन अति बाढ़हिं॥
लहलहै लोभ पावक प्रबल, पवन मोह उद्धत बहै।
दज्झहि उदारता आदि बहु, गुणपतंग कुँवरा कहै॥

पाण्डे हेमराज—वचनिकाकारोंमें पाण्डे हेमराजका नाम आदरके साथ लिया जाता है। इनका समय सत्रहवीं शतीका अन्तभाग और अठारहवीं शतीका आरम्भिक भाग है। यह पण्डित रूपचन्दजीके शिष्य थे। इनकी पाँच वचनिकाएँ और एक छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध है। वचनिकाओंमें प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकायटीका, भाषाभक्तामर, नयचक्रकी वचनिका और गोम्मटसार वचनिका हैं। 'चौरासीबोल' छन्दोबद्ध काव्य है। पाण्डे हेमराज श्रेष्ठ कवि थे। इन्होंने शार्दूल-विक्रीडित, छप्पय और सवैया छन्दोंमें सुन्दर भावोंको अभिव्यक्त किया है। इनके गद्यका उदाहरण निम्न है—

"ऐसे नाहीं कि कोइ कालद्रव्य परिणाम विना होहि जातैं परिणाम विना द्रव्य गदहेके सींग समान है, जैसे गोरसके परिणाम दूध, दही, घृत, तक्र इत्यादि अनेक हैं, इनि अपने परिणामनि विना गोरस जुदा न पाइए जहाँजु परिणाम नाहीं तहाँ गोरसकी सत्ता नाहीं तैसे ही परिणाम विना द्रव्यकी सत्ता नाहीं"।

कविताका उदाहरण—

प्रलय पवन करि उठी आगि जो तास पटंतर।
वमै फुलिंग शिखा उतंग पर जलै निरन्तर॥
जगत समस्त निगल्ल भस्म कर हैगी मानो।
तड़तड़ात दव अनल ,जोर चहुँदिशा उठानो॥
सो इक छिनमें उपशमें, नामनीर सुन लेत।
होइ सरोवर परिनमें, विकसित कमल समेत॥

बुलाकीदास—इनका जन्म आगरामें हुआ था। आप गोयलगोत्री अग्रवाल थे। इनका व्येंक 'कसावर' था। इनके पूर्वज बयाने (भरत-पुर) में रहते थे। साहु अमरसी, प्रेमचन्द्र, श्रमणदास, नन्दलाल और बुलाकीदास यह इनकी वंशपरम्परा है। श्रमणदास बयाना छोड़कर आगरामें आकर बस गये थे। इनके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पण्डित हेमराजने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ किया था। इसका नाम जैनी या जैनुलदे था। इसी जैनीके गर्भसे बुलाकीदासका जन्म हुआ था। अपनी माताके आदेशसे कवि बुलाकीदासने संवत् १७५४ में अपने ग्रन्थकी समाप्ति की थी। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

सुगुनकी खानि कीधौं सुकृतकी वानि सुभ,
कीरतिकी दानि अपकीरति कृपानि है।
स्वारथ विधानि परस्वारथकी राजधानी,
रमाहूकी रानि कीधौं जैनी जिनवानि है॥
धरमधरनि भव भरम हरनि कीधौं
असरन-सरनि कीधौं जननि जहानि है।
हेम सो······पन सीलसागर······मनि,
दुरित दरनि सुरसरिता समानि है॥

किशनसिंह—यह रामपुरके निवासी संगही कल्याणके पौत्र तथा आनन्दसिंहके पुत्र थे। इनकी खण्डेलवाल जैन जाति थी और पाटनी गोत्र था। यह रामपुर छोड़कर सांगानेर आकर रहने लगे थे। इन्होंने संवत् १७८४ में क्रियाकोश नामक छन्दोबद्ध ग्रन्थ रचा था, जिसकी श्लोकसंख्या २९०० है। इसके अलावा भद्रबाहुचरित संवत् १७८५ और रात्रिभोजनकथा संवत् १७७३ में छन्दोबद्ध लिखे हैं। इनकी कविता साधारण कोटि की है। नमूना निम्न है—

माथुर वसंतराय वोहरांको परधान,
संगही कल्याणदास पाटणी बखानिये।

रामपुर वास जाकौं सुत सुखदेव सुधी,
ताकौ सुत किस्नसिंह कविनाम जानिये ॥
तिहिं निसिभोजन त्यजन व्रत कथा सुनी,
ताकी कीनीं चौपई सुआगम प्रमाणिये ।
भूलि चूकि अक्षरधर जौं वाकौं बुधजन,
सोधि पढ़ि वीनती हमारी मनि आनिये ॥

खड्गसेन—यह लाहौरके निवासी थे। इनके पिताका नाम लूणराज था। कविके पूर्वज पहले नारनोलमें रहा करते थे। वहाँसे आकर लाहोरमें रहने लगे थे। इन्होंने नारनोलमें भी चतुर्भुज वैरागीके पास अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। इन्होंने संवत् १७१३ में त्रिलोकदर्पणकी रचना सम्पूर्ण की थी। कविता साधारण ही है। उदाहरण—

वागड देश महा विसतार, नारनोल तहाँ नगर निवास।
तहाँ कौम छत्तीसौं वसैं, अपणें करम तणां रस लसैं ॥
श्रावक वसै परम गुणवन्त, नाम पापडीवाल वसन्त।
सव भाई में परमित लियें, मानू साह परमगण किये।
जिसके दो पुत्र गुणश्वास, लूणराज ठाकुरीदास।
ठाकुरसीके सुत है तीन, तिनकौ जाणौं परम प्रवीन।
वड़ो पुत्र धनपाल प्रमाण, सोहिलदास महासुख जाण।

रामचन्द्र—इन्होंने 'सीताचरित' नामक एक विशालकाय छन्दोबद्ध चरित ग्रन्थ लिखा है, इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या ३६०० है। यह रविषेणके पद्मपुराणके आधारपर रचा गया है। इसके रचनेका समय १७१३ है। कविता साधारण है। कविका उपनाम 'चन्द्र' आया है।

शिरोमणिदास—यह कवि पण्डित गंगादासके शिष्य थे। भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे संवत् १७३२ में धर्मसार नामक दोहा-चौपाईबद्ध ग्रन्थ सिहरोन नगरमें रचा है। इस नगरके शासक उस समय राजा

देवीसिंह थे। इस ग्रन्थमें कुल ७५५ दोहा चौपाई हैं। रचना स्वतन्त्र है, किसीका अनुवाद नहीं है। इनका एक अन्य ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि भी बतलाया जाता है।

मनोहरलाल या मनोहरदास—यह कवि धामपुरके निवासी थे। आसू साहके यहाँ इनका आश्रम था। सेठके सम्बन्धमें इन्होंने मनोरंजक घटना लिखी है। सेठकी दरिद्रताके कारण वह बनारससे अयोध्या चले गये, किन्तु वहाँके सेठने सम्मान और प्रचुर सम्पत्तिके साथ वापस लौटा दिया। कविने हीरामणिके उपदेश एवं आगरा निवासी सालिवाहण, हिसारके जगदत्त मिश्र तथा उसी नगरके रहनेवाले गंगराज-के अनुरोधसे 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थकी रचना संवत् १७०५ में की है। कहीं-कहीं बहुत सुन्दर है। इस ग्रन्थका परिमाण ३००० पद्य है। कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

कविता मनोहर खंडेलवाल सोनी जाति,
मूलसंघी मूल जाकौ सागानेर वास है।
कर्मके उदयतैं धामपुरमैं वसन भयौ,
सबसौं मिलाप पुनि सज्जनकौ दास है।

व्याकरण छंद अलंकार कछु पढ्यौ नाहिं,
भाषा में निपुन तुच्छ बुद्धि का प्रकास है।
बाईं दाहिनी कछू समझै संतोष लीयैं,
जिनकी दुहाई जाकैं जिनही की आस है।

जयसागर—यह भट्टारक महीचन्द्रके शिष्य थे। गांधारनगरके भट्टारक श्री मल्लिभूषणकी शिष्यपरम्परासे इनका सम्बन्ध था। इन्होंने हूँबड़ जातिमें श्रीरामा तथा उसके पुत्रके अध्ययनार्थ 'सीताहरण' काव्यकी रचना संवत् १७३२ में की है। कविता साधारण कोटिकी है। भाषा राजस्थानी है।

खुशालचन्द काला—यह कवि देहलीके निवासी थे। कभी-कभी यह सांगानेर भी आकर रहा करते थे। इनके पिताका नाम सुन्दर और माताका नाम अभिधा था। इन्होंने भट्टारक लक्ष्मीदासके पास विद्याध्ययन किया था। इन्होंने हरिवंशपुराण संवत् १७८० में, पद्मपुराण संवत् १७८३ में, धन्यकुमार चरित्र, जम्बूचरित्र और व्रतकथाकोशकी रचना की है।

जोधराज गोदीका—यह सांगानेरके निवासी हैं। इनके पिताका नाम अमरराज था। हरिनाम मिश्रके पास रहकर इन्होंने प्रीतिंकर चरित्र, कथाकोष, धर्मसरोवर, सम्यक्त्व कौमुदी, प्रवचनसार, भावदीपिका आदि रचनाएँ लिखी हैं। कविता इनकी साधारण कोटि की है; नमूना निम्न प्रकार है—

> श्री सुखराम सकल गुण खांन, वीजामत सुगछ नभ भांन।
> वसवा नाम नगर सुखधाम, मूलवास जानौं अभिराम॥
> अन्नोदकके जोग वसाय, वसुवा तजैं भरतपुर आय।
> जिन मन्दिरमें कियो निवास, मूलवास जानौं अभिराम॥

लब्धरुचि—पुरानी हिन्दीकी शैलीमें रचना करनेवाले कवि लब्धरुचि हैं। इन्होंने संवत् १७१३ में चन्दननृपरास नामक ग्रन्थ लिखा है। इनकी भाषापर गुजरातीका भी पर्याप्त प्रभाव है।

लोहट—कवि लोहटके पिताका नाम धर्म था। यह बघेरवाल थे। यह सबसे छोटे थे। हींग और सुन्दर इनके बड़े भाई थे। पहले यह सांभर-में रहते थे और फिर बून्दीमें आकर रहने लगे थे। कविके समयमें राव भावसिंहका राज्य था। इन्होंने बून्दी नगर एवं वहाँके राजवंशका वर्णन किया है। इन्होंने यशोधर चरितका पद्यानुवाद संवत् १७२१ में समाप्त किया है।

ब्रह्मरायमल—यह मुनि अनन्तकीर्त्तिके शिष्य थे। जयपुर राज्यके निवासी थे। इन्होंने शसोरगढ़, रणथम्भोर एवं सांगानेर आदि

स्थानोंपर अपनी रचनाएँ लिखी हैं। इनकी नेमीश्वररास, हनुमन्तकथा, प्रद्युम्नचरित्र, सुदर्शनरास, श्रीपालरास और भविष्यदत्तकथा आदि रचनाएँ प्रधान हैं।

पं० दौलतराम—बसवा निवासी प्रसिद्ध वचनिकाकार पं० दौलतरामजीने हिन्दी जैन गद्य साहित्यका ही नहीं, अपितु समस्त हिन्दी गद्य साहित्यका भाषा क्षेत्रमें महान् उपकार किया है। जयपुरके महाराजसे इनका स्नेह था। बताया जाता है कि उदयपुर राज्यमें किसी बड़े पदपर यह आसीन थे। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। इन्होंने पुण्यास्रवकथा कोश, क्रियाकोश, अध्यात्मबाराखड़ी आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। आदिपुराण (सं० १८२४), हरिवंश पुराण (सं० १८२९), पद्मपुराण (सं० १८२३) परमात्मप्रकाश और श्रीपालचरित्रकी वचनिकाएँ इन्हींके द्वारा लिखी गयी हैं।

पं० टोडरमल—आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी अपने समयके विचारक और प्रतिभाशाली विद्वान् थे। पण्डितजी जयपुरके निवासी थे। इनके पिताका नाम जोगीदास और माताका नाम रमा या लक्ष्मी था। ये बचपनसे ही होनहार थे। गूढ़से गूढ़ शंकाओंका समाधान इनके पास ही मिलता था। इनकी योग्यता एवं प्रतिभाका ज्ञान, तत्कालीन साधर्मी भाई रायमल्लने इन्द्रध्वज पूजाके निमन्त्रणपत्रमें जो उद्गार प्रकट किये हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है। इन उद्गारोंको ज्योंका त्यों दिया जा रहा है।

"यहाँ घणां भायां और घणीं वायां के व्याकरण व गोम्मटसारजीकी चर्चाका ज्ञान पाइए हैं। सारा ही विषैं भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है, जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका वणाई, और पाँच सात ग्रन्थाकी टीका वणायवेका उपाय है। न्याय, व्याकरण, गणित, छन्द, अलंकारका यदि ज्ञान पाइये है।

ऐसे पुरुष महन्त बुद्धिका धारक ईकाल विषैं होना दुर्लभ है ताते यासू मिलें सर्व सन्देह दूरि होय है। घणी लिखवा करि कहा आपणां हेतका वांछीक पुरुष शीघ्र आप यांसू मिलाप करो"।

पण्डितजी जैसे महान् विद्वान् थे, वैसे स्वभावके बड़े नम्र थे। अहंकार उन्हें छू तक नहीं गया था। इन्हें एक दार्शनिकका मस्तिष्क, दयालु का हृदय, साधुका जीवन और सैनिककी दृढ़ता मिली थी। इनकी वाणीमें इतना आकर्षण था कि नित्य सहस्रों व्यक्ति इनका शास्त्रप्रवचन सुननेके लिए एकत्रित होते थे। गृहस्थ होकर भी गृहस्थीमें अनुरक्त नहीं रहे। अपनी साधारण आजीविका कर लेनेके बाद आप शास्त्रचिन्तनमें रत रहते थे। इनकी प्रतिभा विलक्षण थी, इसका एक प्रमाण यही है कि आपने किसीसे बिना पढ़े ही कन्नड़ लिपिका अभ्यास कर लिया था।

इनके जन्म संवत्में विवाद है। पं० देवीदास गोधाने इनका जन्म संवत् १७९७ दिया है, पर विचार करने पर यह ठीक नहीं उतरता है। मृत्यु निश्चित रूपसे संवत् १८२४ में हुई थी। इन्हें आततायियोंका शिकार होना पड़ा था। इनकी विद्वत्ता, वक्तृता एवं ज्ञानकी महत्ताके कारण जयपुर राज्यके कतिपय ईर्ष्यालुओंने इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था। फलतः राजाने सभी जैनोंको क़ैद करवाया और षड्यन्त्रकारियोंके निर्देशानुसार इनके क़तल करनेका आदेश दिया। इस घटनाका निरूपण कवि बखतरामने अपने बुद्धिविलासमें निम्न प्रकार किया है—

तब ब्राह्मणनु मतो यह कियो, शिव उठान को टोना दियो।
तामें सबे श्रावगी कैद, करिके दंड किए नृप फंद।
गुर तेरह पंथिनु कौ भ्रमी, टोडरमल नाम साहिमी।
ताहि भूप मार्‌यौ पलमाहिं, गाड्यो मद्धि गंदिगी ताहि॥

पण्डितजीकी कुल ११ रचनाएँ हैं, इनमें सात टीकाग्रन्थ, एक स्वतन्त्रग्रन्थ, एक आध्यात्मिकपत्र, एक अर्थसंदृष्टि और एक भाषा पूजा।

निम्न ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं। ये इस युगके सबसे बड़े टीकाकार, सिद्धान्तमर्मज्ञ और अलौकिक विद्वान् थे।

गोम्मटसार [जीवकाण्ड]—सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका। यह संवत् १८१५ में पूर्ण हुई।

गोम्मटसार [कर्मकाण्ड] ,,

लब्धिसार— ,, यह टीका संवत् १८१८ में पूर्ण हुई।

क्षपणासार—वचनिका सरस है।

त्रिलोकसार—इस टीकामें गणितकी अनेक उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण चर्चाएँ की गयी हैं।

आत्मानुशासन—यह आध्यात्मिक सरस संस्कृत ग्रन्थ है, इसकी वचनिका संस्कृत टीकाके आधार पर है।

पुरुषार्थसिद्‍ध्युपाय—इस ग्रन्थकी टीका अधूरी ही रह गयी।

अर्थसंदृष्टि—इसे पंडितजीने बड़े परिश्रम और साधनासे लिखा है। गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन कितना विशाल था, यह इससे स्पष्ट होता है।

आध्यात्मिकपत्र—यह रचना रहस्य पूर्ण चिट्ठीके नामसे प्रसिद्ध है और वि० सं० १८११ में लिखी गयी है। यह एक आध्यात्मिक रचना है।

गोम्मटसारपूजा—गोम्मटसारकी टीकाके उपरान्त इस पूजाकी रचना की गयी है।

मोक्षमार्गप्रकाश—यह एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक और आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमें नौ अध्याय हैं। जैनागमका सार रूप है। एक ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

टीकाकारके अतिरिक्त पंडितजी कवि भी थे। ग्रन्थोंके अन्तमें जो प्रशस्तियाँ दी हैं, उनसे इनके कविहृदयका भी पता लग जाता है। लब्धिसारकी टीकाके अन्तमें अपना परिचय देते हुए लिखते हैं—

मैं हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो;
लग्यो है अनादि तें कलंक कर्म मल को।
वाही को निमित्त पाय रागादिक भाव भए,
भयो है शरीरको मिलाप जैसें खलको॥
रागादिक भावनको पायकें निमित्त पुनि,
होत कर्मबन्ध ऐसो है वनाव कलको।
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग,
बने तो बने यहाँ उपाय निज थलको॥

पं० जयचन्द—श्री पं० टोडरमलजीके समकालीन विद्वानोंमें पं० जयचन्दजी छावड़ाका नाम भी आदरके साथ लिया जाता है। आप भी जयपुरके निवासी थे। प्रमेयरत्नमालाकी वचनिकामें लिखा है—

देश ढुढांहर जयपुर जहाँ, सुवस बसै नहिं दुःखी तहाँ।
नृप जगतेश नीति बलवान, ताके बड़े-बड़े परधान॥
प्रजा सुखी तिनके परताप, काहूकें न वृथा संताप।
अपने अपने मत सब चलैं, जैन धर्महू अधिको भलैं॥
तामें तेरह पंथ सुपंथ, शैली बड़ी गुनी गुन ग्रन्थ।
तामें मैं जयचन्द्र सुनाम, वैश्य छावड़ा कहैं सुगाम॥

पं० जयचन्द्रजी बड़े ही निरभिमानी, विद्वान् और कवि थे। इनकी सं० १८७० की लिखी हुई एक पद्यात्मक चिट्ठी वृन्दावनविलासमें प्रकाशित है। इससे इनकी प्रतिभाका सहज ही परिज्ञान किया जा सकता है। यह भी टोडरमलजीके समान संस्कृत और प्राकृत भाषाके विद्वान् थे। न्याय, अध्यात्म और साहित्य विषयपर इनका अपूर्व अधिकार था। इनकी निम्न १३ वचनिकाएँ उपलब्ध हैं—

१ सर्वार्थसिद्धि वि० सं० १८६१
२ प्रमेयरत्नमाला ,, १८६३

३ द्रव्यसंग्रहवचनिका ,, १८६३
४ आत्मख्यातिसमयसार ,, १८६४
५ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ,, १८६६
६ अष्टपाहुड ,, १८६७
७ ज्ञानार्णव ,, १८६५
८ भक्तामरस्तोत्र ,, १८७०
९ आप्तमीमांसा ,, १८८६
१० सामायिक पाठ
११ पत्रपरीक्षा
१२ मतसमुच्चय
१३ चन्द्रप्रभ द्वितीय सर्ग मात्र

भूधरमिश्र—यह कवि आगरेके निकट शाहगञ्जमें रहते थे। जातिके ब्राह्मण थे। इनके गुरुका नाम पण्डित रंगनाथ था। पुरुषार्थसिद्ध्युपायके अध्ययनसे आपको जैनधर्मकी रुचि उत्पन्न हुई थी। रंगनाथसे अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। पुरुषार्थसिद्ध्युपायपर इनकी एक विशद टीका है। इसमें अनेक जैन ग्रन्थोंके प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। यह टीका संवत् १८७१ की भाद्रकृष्णा दशमीको समाप्त हुई थी। चर्चासमाधान नामक एक अन्य ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखा हुआ मिलता है। इनकी कविताका नमूना निम्न है—

नमों आदि करता पुरुष, आदिनाथ अरहंत।
द्विविध धर्मदातार धुर, महिमा अतुल अनन्त॥
स्वर्ग-भूमि-पातालपति, जपत निरन्तर नाम।
जा प्रभुके जस हंसकौ, जग पिंजर विश्राम॥

दीपचन्द काशलीवाल—यह सांगानेरके निवासी थे, पर पीछे आमेर आकर रहने लगे थे। इनका समय अनुमानतः १८वीं शतीका

उत्तरार्ध है। इनका अध्यात्मज्ञान एवं कवित्वशक्ति उच्चकोटिकी थी। यद्यपि इनकी भाषा ढूँढ़ारी है पर टोडरमल, जयचन्द्र आदि विद्वानोंकी भाषाकी अपेक्षा सरस और सरल है। अनेक स्थलोंपर भाषाकी तोड़-मरोड़ भी पायी जाती है। चिद्विलास, आत्मावलोकन, गुणस्थानभेद, अनुभवप्रकाश, भावदीपिका एवं परमात्मपुराण आदि गद्यमें तथा अध्यात्मपच्चीसी, द्वादशानुप्रेक्षा, ज्ञानदर्पण, स्वरूपानन्द, उपदेशसिद्धान्त आदि पद्यमें हैं। परमात्मपुराण मौलिक है, इसमें ग्रन्थकारकी कल्पना और प्रतिभाका सर्वत्र प्रयोग दिखलाई पड़ता है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजीने इनके आत्मावलोकनका उद्धरण अपनी रहस्यपूर्ण चिट्ठी में दिया है।

"ज्ञान अनन्तशक्ति स्वसंवेदरूप धरे लोकालोकका जाननहार अनन्त गुणकौं जानैं। सतपर जाय सत्वीर्य, सत् प्रमेय, सत् अनन्तगुणके अनन्त सत् जामे अनन्त महिमा निधि ज्ञानरूप ज्ञानपरणति ज्ञाननारी ज्ञानसों मिलि परणति ज्ञानका अंग-अंग मिलते हैं ज्ञानका रसास्वाद परणति ज्ञानको ले ज्ञान परणतिका विलास करे। जाननरूप उपयोग चेतना ज्ञानकी परणति प्रकट करे। जो परणति नारीका विलास न होता तो ज्ञान अपने जानन लक्षणकों यथारथ न राखि सकता"।

—परमात्मपुराण

कविताका उदाहरण—

करम कलोलन की उठत झकोर भारी,
यातैं अविकारीको न करत उपाव है।
कहुँ क्रोध करै कहुँ महा अभिमान करैं,
कहुँ माया पगि लग्यो लोभ दरयाव है॥
कहुँ कामवशि चाहि करैं अति कामनोंकी,
कहुँ मोह धारणा तैं होत निम्दाभाव है।

ऐसे तो अनादि लीनो स्वपर पिछानि अब,
सहज समाधि में स्वरूप दरसाव है ॥
—उपदेशसिद्धान्तरत्न

पं० डालूराम—यह माधवराजपुर निवासी अग्रवाल थे। इन्होंने संवत् १८६७ में गुरूपदेश श्रावकाचार छन्दोवद्ध, संवत् १८७१ में सम्यक्त्वप्रकाश और अनेक पूजा ग्रन्थोंकी रचना की है। यह अच्छे कवि थे। दोहा, चौपाई, सवैया, पद्धरि, सोरठा, अडिल्ल, कुण्डलिया आदि विविध छन्दोंके प्रयोगमें यह कुशल हैं। एक नमूना देखिए—

जिनके सुमति जागी, भोग सों भयो विरागी;
परसङ्ग त्यागी, जो पुरुष त्रिभुवन में।
रागादि भावन सों जिनकी रहन न्यारी,
कबहूँ न भजन रहें धाम धन में ॥
जो सदैव आपको विचारैं सब सुधा,
तिनके विकलता न कापें कहू मनमें।
तेई मोखमारगके साधक कहावें जीव,
भावे रहो मन्दिरमें भावे रहो वन में ॥

भारामल—कवि भारामल फर्रुखावादके निवासी सिंगई परशुराम के पुत्र थे और इनकी जाति खरौआ थी। इन्होंने भिण्ड नगरमें रहकर संवत् १८१३ में चारुचरित्रकी रचना की थी। सप्तव्यसनचरित्र, दानकथा, शीलकथा और रात्रिभोजनकथा भी इनकी छन्दोवद्ध रचनाएँ हैं। कविता साधारण कोटिकी है।

वखतराम—कवि वखतराम जयपुर लश्करके निवासी थे। इनके चार पुत्र थे—जीवनराम, सेवाराम, खुशालचन्द्र और गुमानीराम। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दीका द्वितीय पाद है। इन्होंने मिथ्यात्व-खण्डन और बुद्धिविलास नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। बुद्धिविलासके

आरम्भमें कविने जयपुरके राजवंशका इतिहास लिखा है। संवत् ११९१ में मुसलमानोंने जयपुरमें राज्य किया है। इसके पूर्वके कई हिन्दू राजवंशोंकी नामावली दी है। इस ग्रन्थका वर्ण्य विषय विविध धार्मिक विषय, संघ, दिगम्बर पट्टावली, भट्टारकों तथा खण्डेलवाल जातिकी उत्पत्ति आदि हैं। इस ग्रन्थकी समाप्ति कविवरने मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी संवत् १८२७ में की है। कविताका नमूना निम्न है—कवि राजमहलका वर्णन करता हुआ कहता है —

अंगन फरि केल परवात, मनु रचे विरंचि जु करि समान।
है आब सलिल सा तिंह बनाय, तहँ प्रगट परस प्रतिबिंब आय॥
कबहूँ मणि मन्दिर माँझि जाय, तिय दूजी लखि प्यारी रिसाय।
तब मानवती लखि प्रिय हसाय, कर जोरि जोर लेहे बनाय॥

चिदानन्द—यह निःस्पृहयोगी और आध्यात्मिक सन्त थे। स्वर-शास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। स्वरोदय नामक एक रचना इनकी स्वरज्ञान पर उपलब्ध है। यह संवत् १९०५ तक जीवित रहे थे। इनकी कविता सरस और अनुभव पूर्ण है। इनकी कविताका नमूना निम्न है।

जो लों तत्त्व न सूझ पड़े रे
तो लों मूढ भरमवश भूल्यो, मत ममता गहि जगसों लड़े रे॥
आकर रोग शुभ कंप अशुभ लख, भवसागर इण भाँति नड़े रे।
धान काज जिम मूरख खितहड़, ऊखर भूमि को खेत खड़े रे॥
उचित रीत ओ लख विन चेतन, निश दिन खोटो घाट घड़े रे।
मस्तक मुकुट उचित मणि अनुपम, पग भूषण अज्ञान जड़े रे॥
कुमतावश मन वक्र तुरग जिम, गहि विकल्प मग माहिं अड़े रे।
'चिदानन्द' निजरूप मगन भया, तब कुतर्क तोहि नाहिं नड़े रे॥

रंगविजय—यह कवि तपागच्छके थे। इनके गुरुका नाम अमृत-विजय था। आप आध्यात्मिक और स्तुतिपरक पदरचनामें प्रवीण हैं।

नेमिनाथ और राजमतिको लक्ष्यकर सरस शृंगारिक पद रचे हैं। कविता चुभती हुई है। निम्नपद पठनीय है—

आवन देरी या होरी।
चन्द्रमुखी राजुल सौं जंपत, ल्याउँ मनाय पकर वरजोरी ॥
फागुन के दिन दूर नहीं अब, कहा सोचत तू जियमें भोरी ॥
बाँह पकर राहा जो कहावूँ, छाँडूँ ना मुख माडूँ रोरी ॥
सज शृंगार सकल जदुवनिता, अबीर गुलाल लेइ भर झोरी ॥
नेमीसर संग खेलौं खिलौना, चंग मृदंग डफ ताल टकोरी ॥
हैं प्रभु समुद्रविजै के छोना, तू है उग्रसेन की छोरी ॥
'रंग' कहे अमृत पद दायक, चिरजीवहु या जुग जुग जोरी ॥

टेकचन्द—हिन्दीके वचनिकाकारोंमें इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। टीकाकार होनेके साथ यह कवि भी हैं। कथाकोश छन्दोबद्ध, बुधप्रकाश छन्दोबद्ध तथा कई पूजाएँ पद्यबद्ध हैं। वचनिकाओंमें तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका संवत् १८३७ में और सुदृष्टितरंगिणीकी वचनिका संवत् १८३८ में लिखी गयी है। षट्पाहुडकी वचनिका भी इनकी है। कविता इनकी साधारण ही है। गद्यका रूप भी ढूंढिहारी है।

नथमल बिलाला—यह कवि मूलतः आगराके निवासी थे, पर बादमें भरतपुर और अन्तमें हीरापुर आकर रहने लगे थे। इनके पिताका नाम शोभाचन्द था। इन्होंने भरतपुरमें सुखरामकी सहायतासे सिद्धान्तसारदीपकका पद्यानुवाद संवत् १८२४ में लिखा है। यह ग्रन्थ विशालकाय है, श्लोक संख्या ७५०० है। भक्तामरकी भाषा हीरापुरमें पण्डित लालचन्दजीकी सहायतासे की थी। इनके अतिरिक्त जिनगुणविलास, नागकुमारचरित, जीवन्धर चरित और जम्बूस्वामी चरित भी इन्हींकी रचनाएँ हैं। इनका गद्य पं० टेकचन्दजीके गद्यकी अपेक्षा कुछ परिष्कृत है। कविताके क्षेत्रमें साधारण है।

पण्डित सदासुखदास—विक्रमकी बीसवीं शतीके विद्वानोंमें पण्डित सदासुखदासका नाम प्रसिद्ध है। यह जयपुरके निवासी थे। इनके पिताका नाम दुलीचन्द और गोत्रका नाम काशलीवाल था। यह डेडराज वंशमें उत्पन्न हुए थे। अर्थप्रकाशिकाकी वचनिकामें अपना परिचय देते हुए लिखा है—

> डेडराज के वंश माँहि इक किंचित् ज्ञाता।
> दुलीचंदका पुत्र काशलीवाल विख्याता॥
> नाम सदासुख कहें आत्मसुखका बहु इच्छुक।
> सो जिनवाणी प्रसाद विषयतें भये निरिच्छुक॥

पण्डित सदासुखदासजी बड़े ही अध्ययनशील थे। आप सदाचारी, आत्मनिर्भय, अध्यात्मरसिक और धार्मिक लगनके व्यक्ति थे। सन्तोष आपमें कूट-कूटकर भरा था। आजीविकाके लिए थोड़ा-सा कार्य कर लेनेके उपरान्त आप अध्ययन और चिन्तनमें रत रहते थे। पण्डितजीके गुरु पं० मन्नालालजी और प्रगुरु पण्डित जयचन्दजी छावड़ा थे। आपका ज्ञान भी अनुभवके साथ-साथ वृद्धिंगत होता गया। यद्यपि आप बीस-पन्थी आम्नायके अनुयायी थे, पर तेरहपन्थी गुरुओंके प्रभावके कारण आप तेरहपन्थको भी पुष्ट करते थे। वस्तुतः आप समभावी थे, किसी पन्थविशेषका मोह आपमें नहीं था। आपके शिष्योंमें पण्डित पन्नालाल संघी, नाथूराम दोशी और पण्डित पारसदास निगोत्या प्रधान हैं। पारस-दासने 'ज्ञानसूर्योदय नाटक' की टीकामें आपका परिचय देते हुए आपके स्वभाव और गुणोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

> लौकिक प्रवीना तेरापंथ माँहि लीना,
> मिथ्याबुद्धि करि छीना जिन आतमगुण चीना है।
> पढ़ें औ पढ़ावें मिथ्या अलटकूँ कढ़ावें,
> ज्ञानदान देय जिन मारग चढ़ावें हैं॥

दीसैं घरवासी रहैं वरहूतैं उदासी,
जिन मारग प्रकाशी जग कीरत जगमासी है।
कहाँ लौ कहीजे गुणसागर सुखदास जूके,
ज्ञानामृत पीय वहु मिथ्याबुद्धि नासी है॥

श्री पण्डित सदासुखदासके गार्हस्थ्य जीवनके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि पण्डितजीको एक ही पुत्र था, जिसका नाम गणेशीलाल था। यह पुत्र भी पिताके अनुरूप होनहार और विद्वान् था। पर दुर्भाग्यवश बीस वर्षकी अवस्थामें ही इकलौते पुत्रका वियोग हो जानेसे पण्डितजी पर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। संसारी होनेके कारण पण्डितजी भी इस आघातसे विचलित-से हो गये। फलतः अजमेर निवासी स्वनामधन्य सेठ मूलचन्दजी सोनीने इन्हें जयपुरसे अजमेर बुला लिया। यहाँ आने पर इनके दुःखका उफान कुछ शान्त हुआ।

पण्डित सदासुखजीकी भाषा ढूँढारी होने पर भी पण्डित टोडरमलजी और पण्डित जयचन्दजीकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत और खड़ी बोलीके निकट है। भगवती आराधनाकी प्रशस्तिकी निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय हैं।

मेरा हित होने को और, दीखै नाहिं जगत में ठौर।
यातैं भगवति शरण जु गही, मरण आराधन पाऊँ सही॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद।
पंच परमगुरु पद करि ढोक, संयम सहित लहू परलोक॥

इनका समाधिमरण संवत् १९२३ में हुआ था।

पं० भागचन्द—बीसवीं शताब्दीके गण्यमान्य विद्वानोंमें पं० भागचन्दजीका स्थान है। आप संस्कृत और प्राकृत भाषाके साथ हिन्दी भाषाके भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। ग्वालियरके अन्तर्गत ईसागढ़के निवासी थे। संस्कृतमें आपने महावीराष्टक स्तोत्र रचा है। अमितगति-श्रावकाचार,

उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला, प्रमाणपरीक्षा, नेमिनाथपुराण और ज्ञानसूर्योदयनाटककी वचनिकाएँ लिखी हैं। आप ओसवाल जातिके दिगम्बर मतानुयायी थे। इन्होंने पद भी रचे हैं। हिन्दी कविता इनकी उत्तम है। पदोंमें रस और अनुभूति छलछलाती है।

कवि दौलतराम—कवि दौलतराम हिन्दीके उन लब्धप्रतिष्ठ कवियोंमें परिगणित हैं, जिनके कारण माँ भारतीका मस्तक उन्नत हुआ है। यह हाथरसके रहनेवाले थे और पल्लीवाल जातिके थे। इनका गोत्र गंगीटीवाल था, पर प्रायः लोग इन्हें फतेहपुरी कहा करते थे। इनके पिताका नाम टोडरमल था। इनका जन्म विक्रम संवत् १८५५ या १८५६ के बीचमें हुआ है।

कविके पिता दो भाई थे, छोटे भाईका नाम चुन्नीलाल था। हाथरसमें ही दोनों भाई कपड़ेका व्यापार करते थे। कवि दौलतरामके श्वसुरका नाम चिन्तामणि था, यह अलीगढ़के निवासी थे। कविके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह छींटें छापनेका काम करते थे। जिस समय छींटका थान छापनेके लिए बैठते थे, उस समय चौकीपर गोम्मटसार, त्रिलोकसार और आत्मानुशासन ग्रन्थोंको विराजमान कर लेते थे और छापनेके कामके साथ-साथ ७०-८० श्लोक या गाथाएँ भी कण्ठाग्र कर लेते थे।

संवत् १८८२ में मथुरानिवासी सेठ मनीरामजी पं० चम्पालालजीके साथ हाथरस आये और वहाँ उक्त पंडितजीको गोम्मटसारका स्वाध्याय करते देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा अपने साथ मथुरा लिवा ले गये। वहाँ कुछ दिन तक रहनेके उपरान्त आप सासनी या लश्करमें आकर रहने लगे। कविके दो पुत्र हुए; बड़े पुत्रका नाम लाला टीकाराम है, इनके वंशज आजकल भी लश्करमें निवास करते हैं।

इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—छहढाला और पदसंग्रह। छहढालाने तो कविको अमर बना दिया है। भाव, भाषा और अनुभूतिकी दृष्टिसे यह रचना बेजोड़ है।

कविको अपनी मृत्युका परिज्ञान अपने स्वर्गवासके छः दिन पहले ही हो गया था। अतः उन्होंने अपने समस्त कुटुम्बियोंको एकत्रित कर कहा— "आजसे छठे दिन मध्याह्नके पश्चात् मैं इस शरीरसे निकलकर अन्य शरीर धारण करूँगा"। सबसे क्षमा याचना कर संवत् १९२३ मार्गशीर्ष कृष्ण अमावास्याको मध्याह्नमें देहलीमें इन्होंने प्राण त्याग किया था।

कविवरके समकालीन विद्वानोंमें रत्नकरण्डके वचनिकाके कर्त्ता पं० सदासुख, बुधजनविलासके कर्त्ता बुधजन, तीस-चौबीसीके कर्त्ता वृन्दावन, चन्द्रप्रभ काव्यकी वचनिकाके कर्त्ता तनसुखदास, प्रसिद्ध भजन-रचयिता भागचन्द और पं० बखतावरमल आदि प्रमुख हैं।

पं० जगमोहनदास और पं० परमेष्ठी सहाय—यह निस्संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी जैनसाहित्यकी श्रीवृद्धिमें खण्डेलवाल और अग्रवाल जातिके विद्वानोंका प्रमुख भाग रहा है। जयपुर, आगरा, दिल्ली और ग्वालियर हिन्दी साहित्यके रचे जानेके प्रमुख स्थान हैं। आगरा सदासे अग्रवालोंका गढ़ रहा है। यहाँपर भी समय-समयपर विद्वान् होते रहे, जिन्होंने हिन्दी जैन साहित्यकी श्रीवृद्धिमें योग दिया। आरा निवासी पं० परमेष्ठी सहाय और पं० जगमोहनदासको हिन्दी जैन साहित्यके इतिहाससे पृथक् नहीं किया जा सकता है। श्री पं० परमेष्ठीसहायने 'अर्थप्रकाशिका' नामकी एक टीका जगमोहनदासकी तत्त्वार्थ विषयक जिज्ञासाकी शान्तिके लिए लिखी है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें बताया गया है—

पूरव इक गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम।
तामैं जिन चैत्यालय लसैं, अग्रवाल जैनी बहु बसैं॥
बहु ज्ञाता तिन में जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठीसहाय।
जैनग्रन्थ रुचि बहु केरे, मिथ्या धरम न चित्त में घेरे।
सो तत्त्वार्थसूत्र की, रची वचनिका सार।
नाम जु अर्थ प्रकाशिका, गिणती पाँच हजार॥

सो भेजी जयपुर विषैं, नाम सदासुख जास।
सो पूरण ग्यारह सहस, करि भेजी तिन पास॥
अग्रवाल कुल श्रावक कीरतचन्द्र जु आरे माँहि सुवास।
परमेष्ठीसहाय तिनके सुत, पिता निकट करि शास्त्राभ्यास॥
कियो ग्रन्थ निज परहित कारण, लखि बहु रुचि जगमोहनदास।
तत्त्वारथ अधिगमसु सदासुख, दास चहूँ दिश अर्थप्रकाश॥

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि पं० परमेष्ठीसहायके पिताका नाम कीर्तिचन्द्र था। उन्हींके पास जैनागमका अध्ययन किया था तथा अपनी कृति अर्थप्रकाशिकाको जयपुरनिवासी प्रसिद्ध वचनिकाकार पं० सदासुखजीके पास संशोधनार्थ भेजा था।

पं० जगमोहनदास अच्छे कवि थे। इनकी कविताओंका एक संग्रह 'धर्मरत्नोद्योत' नामसे स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवालके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो चुका है। हमारा अनुमान है कि इनका जन्म संवत् १८६५–७० होना चाहिए; क्योंकि पं० सदासुखजी इनके समकालीन हैं। और सदासुखजीका जन्म संवत् १८५२ में हुआ था। अतएव सदासुखजीसे कुछ छोटे होनेके कारण पं० जगमोहनदासका जन्म संवत् १८६५ और मृत्यु १९३५ में हुई है। परमेष्ठीसहायने अर्थप्रकाशिकाको संवत् १९१४ में पूर्ण किया है। धर्मरत्नोद्योतकी अन्तिम प्रशस्ति निम्न है—

"मिती कार्त्तिक कृष्ण १० संवत् १९४५ पोथी दान किया बाबू परमेष्ठीसहाय भार्या जानकी बीबी आरेके पंचायती मन्दिरजीमें पोथी धर्मरत्न ग्रन्थ"।

कविताकी दृष्टिसे पं० जगमोहनदासकी रचनामें शैथिल्य है। छन्दो-भंगके साथ प्रवाहका भी अभाव है; पर जैनागमका सार भाषामें अवश्य इनकी रचनामें उपलब्ध होगा। छप्पय, सवैया, दोहा, चौपाई, गीतिका आदि छन्दोंका प्रयोग किया है।

जैनेन्द्रकिशोर—नाटककार और कविके रूपमें आरानिवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोर प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी संवत् १९२८ में हुआ था। इनके पिताका नाम बाबू नन्दकिशोर और माताका नाम किसमिसदेवी था। यह अग्रवाल थे। आरा नागरी प्रचारिणी सभाके संस्थापक और काशी नागरी प्रचारिणी सभाके सदस्य थे। इन्होंने अंग्रेजी और उर्दूकी शिक्षा प्राप्त की थी। इनमें कविताकी शक्ति जन्मजात थी। नौ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने सम्मेदशिखरकी वर्णनात्मक स्तुति लिखी थी। इन्होंने अपने साहित्यगुरु श्री किशोरीलाल गोस्वामीकी प्रेरणासे ही 'भारतवर्ष' पत्रिकामें सर्वप्रथम 'वेश्याविहार' नामक नाटक प्रकाशित कराया। उपन्यास और नाटक रचनेकी योग्यता एवं उर्दू शायरीकी प्रतिभा इन दोनोंका मणिकाञ्चन संयोग हिन्दी कविताके साथ इनके व्यक्तित्वमें निहित था। इनके उर्दू शायरीके गुरु मौलवी 'फजल' थे। मुशायरोंमें इनकी उर्दू शायरीकी धूम मच जाती थी। इन्होंने लेखक और कविके अतिरिक्त भी अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके कारण 'जैन गजट' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सुयोग्य संपादक, स्याद्वाद विद्यालय काशीके मन्त्री; 'हिन्दी सिद्धान्त-प्रकाश'में उर्दूका इतिहास लिखनेके पूर्ण सहयोगी एवं 'जैन यंग एसोशियेशन'के प्रान्तिक मन्त्री आदिके कार्यभारका वहन बड़ी सफलताके साथ किया था।

इन कार्योंके अतिरिक्त आपने सन् १८९७ में 'जैन नाटकमण्डली'की स्थापना की थी। कलिकौतुक, मनोरमा, अंजना, श्रीपाल, प्रद्युम्न आदि आपके द्वारा रचित नाटक तथा सोमासती, द्रौपदी और कृपणदास आदि आपके द्वारा लिखित प्रहसनोंका सुन्दर अभिनय कई बार हुआ था। उपन्यासोंमें इनकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

१. मनोरमा २. कमलिनी ३. सुकुमाल ४. गुलेनार ५. दुर्जन ६. मनोवती।

ब्र० शीतलप्रसाद—ब्रह्मचारीजीका जन्म सन् १८७९ ई० में

लखनऊमें हुआ था। इनके पिताका नाम मक्खनलाल और माताका नाम नारायणीदेवी था। इन्होंने मैट्रिक्यूलेशनकी परीक्षा उत्तीर्ण कर एकाउण्टेण्टशिपकी परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप अच्छी सरकारी नौकरीके पदपर प्रतिष्ठित थे। सन् १९०४ की प्लेगमें इनकी विदुषी पत्नी और छोटे भाईका स्वर्गवास हो गया। इस अन्तःवेदनाको आपने जैन ग्रन्थोंके स्वाध्याय द्वारा शमन किया। समाज सेवाकी लगन तो पहलेसे ही थी, किन्तु अब निमित्त मिलते ही यह भावना और बलवती हो गयी। फलतः सन् १९०५ में आपने सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया और सन् १९११ में सोलापुरमें ब्रह्मचर्य दीक्षा धारण की। जैनमित्र और वीरके संपादक वर्षोंतक रहे। आपके द्वारा विरचित और अनूदित ७७ ग्रन्थ हैं; जिनका विभाजन विषयोंके अनुसार निम्न प्रकार है

अध्यात्मविषयक २६, जैन दार्शनिक और धार्मिक १८, नैतिक ७, अहिंसाविषयक २, जीवनचरित्र ५, अन्वेषणात्मक और ऐतिहासिक ६, काव्य २, कोष १, प्रतिष्ठापाठ १ एवं तारण साहित्य ९। ब्रह्मचारीजीकी विशेषताएँ श्री गोयलीयजीके निम्न उद्धरणसे अवगत की जा सकती हैं—

"जैनधर्मके प्रति इतनी गहरी श्रद्धा, उसके प्रसार और प्रभावनाके लिए इतना दृढ़प्रतिज्ञ, समाजकी स्थितिसे व्यथित होकर भारतके इस सिरेसे उस सिरेतक भूख और प्यासकी असह्य वेदनाको वश किये रातदिन जिसने इतना सुभ्रमण किया हो, भारतमें क्या कोई दूसरा व्यक्ति मिलेगा"

इनकी मृत्यु लखनऊमें ही १० फरवरी १९४२ में हुई।

अनुक्रमणिका

लेखक एवं कवि

ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिका